

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182307

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

H

82

172A

गोपीन-द्वय

अशोक

G. H

Accession No. 522

book should be returned on or before the date last
'ow.

आत्मदर्शन



पूज्यपाद श्री नारायण स्वामीजी महाराज

परिचय * ।



1

ग्रन्थ-परिचय

१९ वीं और २० वीं शताब्दीके सन्धिकाल (१९००) में जिस समय जर्मनीके प्रसिद्ध जीव विद्याशास्त्री अर्नेस्ट हेकलने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “संसारकी पहेली” (The Riddle of the universe) प्रकाशित की । योरपमें ईसाईमतका विशाल भवन जो कि गत शताब्दीके वैज्ञानिक आन्दोलनसे हिल रहा था, एक प्रकारसे लड़खड़ाकर गिर पड़ा । १९ वीं सदीके प्रकृतिवाद, जड़वाद अथवा नास्तिकवादका, जो “विकासवादके” अनेक रूपमें प्रकट हुआ, इस पुस्तकमें दार्शनिक विवेचन किया गया था । विज्ञानके शब्दोंमें इस पुस्तकमें अन्तिम घोषणा की गई कि प्रकृति और प्राकृतिक नियम अपनेमें पर्याप्त, परिपूर्ण

* पाठकोंके लिए यह उक्तम होगा कि वे पुस्तकको पढ़नेसे पहले इस ‘परिचय’ को पढ़ लें, इससे न केवल उन्हें ग्रन्थकर्ताके विषयमें कुछ परिचय प्राप्त होगा प्रत्युत ग्रन्थके गम्भीर विषयके प्रवेशमें भी बहुत कुछ सहायता मिलेगी ।

और अन्तिम (Self-sufficient & Self-contained) हैं। उनके लिए किसी अप्राकृतिक अत्मशक्तिकी कल्पना करना अनावश्यक ही नहीं प्रत्युत अयुक्त भी है। इस पुस्तकके छपते ही ५ लाख प्रतियां पढ़ी गईं। योरपकी लगभग सभी भाषाओंमें इसका अनुवाद हो गया। परंतु यह एक विचित्र दैवी घटना है कि २० वीं शताब्दीके प्रारम्भ होते ही योरपमें 'अध्यात्मवाद' का प्रारम्भ हुआ। योरपकी प्रवृत्ति अध्यात्मवादकी ओर हो गई। यह दूसरा प्रश्न है कि उन्हें कितना बोध है और वे किस रास्तेपर चल रहे हैं। पाठकोंके सामने जो ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है उसमें इसी प्रकृतिवाद और आत्मवादकी तुलनात्मक विवेचना है। इसलिए यह आवश्यक है कि पुस्तकके प्रारम्भमें संक्षेपसे विषयकी ओर संकेत कर दिया जाय।

साधारणतया मोटे शब्दोंमें प्रकृतिवादका निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है कि "इस सारे विश्वकी चेतन-अचेतन सारी रचना प्रकृति और उसमें काम करनेवाले प्राकृतिक नियमों (Natural Laws) का परिणाम है। उसके लिए किसी आत्मा या परमात्माकी आवश्यकता नहीं है", इसे वैज्ञानिक रीतिपर समझनेके लिए कुछ व्याख्या अपेक्षित है।

इस विश्वके विकाशमें क्रमशः ३ पद (दर्जे) हैं जिन्हें इस प्रकार कहा जा सकता है:—

- १—प्राकृतिक-विकास (Cosmic Evolution)
- २—जीवन-विकास (Biological Evolution)
- ३—ज्ञान-विकास (Intellectual Evolution)

देखना यह है कि इन तीनों विकासोंमें किसप्रकार प्रकृति स्वयं पूर्ण और कार्यक्षम बनती है और उसके लिए किसी आत्मशक्तिकी अपेक्षा नहीं होती ।

प्राकृतिकविकास ।

इस विकासके अन्तर्गत हम प्रकृतिकी प्रारम्भिक अवस्था (जो जगत्की मूल कारण थी) से लेकर सृष्ट्युत्पत्ति अर्थात् सारे लोकलोकान्तर्गोकी रचनापर और उन लोकोंकी प्रारम्भिक अवस्थापर जिसे 'भूगर्भ सम्बन्धी युग' (Geological Period) कहा जाता है, विचार करते हैं । आत्मवादी कहते हैं कि प्रकृतिमें परमात्माने सृष्टिको बनाया । प्रकृतिवादी वैज्ञानिकका विचार है कि प्राकृतकद्रव्य (Matter) में लगातार परिवर्तन होते-होते यह जगत् अपने आप बना है । इस जगत्के बननेमें प्राकृतकद्रव्य और उममें होनेवाली गतिके अतिरिक्त किसी आत्मशक्तिका हाथ दिखाई नहीं देता । फ्रांसके तत्वज्ञ 'लाल्पास' ने यह कल्पना की थी कि जगत्के मूलद्रव्य, जिसका नाम नेबुला (Nebula) रक्खा गया है, उसमें लगातार गति हो रही थी । लगातार गति होते-होते ही उस प्राकृतकद्रव्यसे क्रमशः तारा, ग्रह, उपग्रह अर्थात् सूर्य, पृथ्वी और चन्द्र बन गए । जब लाल्पासने अपनी पुस्तक सम्राट नैपोलियनको भेंटकी, तब सम्राटने उससे कहा कि 'तुमने अपनी पुस्तकमें ईश्वरका वर्णन कहीं नहीं किया' । लाल्पासने उत्तर दिया कि 'महाराज मुझे सृष्टि, रचनाकी सागी प्राक्रियामें वही 'ईश्वरकी जरूरत नहीं पड़ी' । इसप्रकार प्राकृतिक विकासमें ईश्वरकी अपेक्षा

नहीं, यह घोषणा लाल्पासने करदी इसपर कुछ विचार हम आगे चलकर करेंगे । इसप्रकार प्रकृतिवादके अनुसार सृष्टि रचना—जिससे ईश्वरकी भावना होती है—के लिए ईश्वरकी आवश्यकता न रही ।

जीवन-विकास ।

लोकों अर्थात् सूर्य, ग्रह, उपग्रह आदिके बनने और प्राणियों के रहने योग्य हो जानेके पश्चात् दूसरी समस्या (१) उनमें जीवनके विकास को है : इस पृथ्वीपर जीवन कहाँसे आया ? उसका प्रारम्भ कैसे हुआ ? (२) और, फिर उसकी प्रारम्भिक अवस्थासे मनुष्यतक किसप्रकार विकास हुआ ? यह प्रश्न है । अनेक वैज्ञानिकोंने इस पर विचार किया, अनेक रूपोंमें इसके उत्तर दिये, परन्तु जीवन-विकासके सम्बन्धमें 'चार्ल्स डार्विन' का नाम शिरोभूत है । उसने अपने प्रसिद्ध 'प्राकृतिक चुनावके नियम' * [Law of Nature Selection] के आधारपर

* 'प्राकृतिक चुनाव का नियम' डार्विन के शब्दों में

'Struggle for Existence.

And Survival of the Fittest.

है, जिसका अर्थ यह है कि जीव जगत्में अपनी हस्ती जारी रखनेके लिये घोर संग्राम 'जड़ोजहद' हो रहा है, इसमें जो प्राणी योग्य हैं वे ही बचते हैं और कमजोर, निकम्मे और अयोग्य नष्ट हो जाते हैं । इसप्रकार प्रकृति क्रमशः योग्य, अधिक योग्य और उनसे अधिक योग्योंको चुनती

विकासवाद (Doctrine of Evolution) की स्थापना की, जिस के अनुसार उसने बतलाया कि संसारका सारा जीवित जगत् एक प्रारम्भिक अवस्थासे क्रमशः मनुष्यतक विकसित हुआ है। यह विकास भी जीव-जगत् सम्बन्धी अटल नियमों (Biological Laws) के अनुसार हो रहा है। इसप्रकार भिन्न-भिन्न प्राणियोंको उत्पन्न करनेके लिये भी किसी आत्मशक्तिकी अपेक्षा नहीं। परन्तु प्रथम प्रश्न यह है कि 'जीवन' आया कहाँ से ? इस पर टेण्डल, हक्सले, हेकल आदिने अनेक कल्पनाएँ कर डालीं। उनके अनुसार प्राणी-शरीरमें जीवनका आधार मौलिक तत्व 'प्राटोप्लाज्म' (Protoplasm) है इसीका हिदी अनुवाद कई प्रकारसे किया जाता है, इस ग्रंथके लेखकने कललरस ! शब्दका प्रयोग किया है। यह प्राटोप्लाज्म या कललरस कतिपय प्राकृत तत्वों (Elements) के मिश्रणसे बना हुआ है, परन्तु वे प्राकृततत्व किस प्रकार और किस मात्रामें मिलते हैं जबकि उनमें जीवनका प्रादुर्भाव होता है, यह वैज्ञानिक नहीं बतला सके।

मानसिक विकास ।

डार्विनने 'जीवन-विकास' की ही बात कही थी। हर्बर्ट स्पेंसर आदि कतिपय तत्वज्ञोंने एक पग और आगे बढ़ाया। प्रारम्भिक अवस्थासे पशु आदि रूपोंमें होते हुए मनुष्य रहती है अर्थात् केवल उन्हें ही जीवित रखती है और इस रीति पर जीव-जगत्में लगातार विकास होता आया है और होता जा रहा है।

जीवनका विकास होता है। इसके पश्चात् मनुष्यमें जंगली अवस्थासे लेकर वर्तमान सभ्यतापूर्ण अवस्था तक बुद्धिका विकास कैसे हुआ यह मानसिक विकासकी समस्या है। स्पेंसरने उत्तर दिया जिस प्रकार जीवनका विकास होता है उसी प्रकार मनुष्यके भीतर क्रमशः बुद्धिका भी विकास होता है, और यहाँ भी इस बुद्धि-विकासके लिये किसी आत्मशक्तिकी अपेक्षा नहीं।

इस प्रकार क्रमशः तीनों प्रकारके विकासोंकी प्रणालीमें संसारका सारा खेल जड़ प्राकृतिक नियमोंके प्रभाव (Energy) से बन गया। उसके लिये किसी चेतन आत्माकी आवश्यकता नहीं। प्रकृति और उसमें गति (matter and energy) यह दो भौतिकतत्व हैं। यह दोनों ही नियम हैं, इन दोनों के नित्यताके सिद्धान्तको मिलाकर हेंकलने अपने जड़वाद का मौलिक सिद्धान्त निकाला जिसका अर्थ यही है कि

प्राकृतद्रव्य-नियम ।

LAW OF SUBSTANCE.

प्रकृति और उसकी गति दोनों सदा स्थिर रहनेवाली नित्य हैं * इस मौलिक नियमसे सृष्टिका सारा काम चल जाता है, अर्थात् 'नेबुला' [Nebula] जगत्का उपादान कारण (मौलिकतत्व) की अवस्थासे अत्युच्च सभ्यतापूर्ण मनुष्यके मस्तिष्कके विकास

* Conservation of Energy and Matter.

के होनेके लिये इस मौलिक नियमके सिवाय किसी चेतन आत्मशक्तिकी आवश्यकता नहीं ।

समीक्षात्मक दृष्टि ।

प्रकृतिवादके अनुसार तीनों प्रकारके विकासपर पूर्ण समीक्षा इस मंक्षिप्त लेखमें नहीं हो सकती, फिर भी प्रस्तुत पुस्तककी भूमिकाके रूपमें कुछ शब्द लिखने आवश्यक हैं । ऊपर कहा जा चुका है कि २० वीं शताब्दीके प्रारम्भमें ही योरपमें अध्यात्मवादकी लहर उठी । आधुनिक वैज्ञानिकोंके कतिपय अग्रगन्ता वैज्ञानिक दूसरी ओर जा रहे हैं । वे तीनों प्रकारके विकासमें आत्मशक्तिकी आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं ।

प्राकृतिक विकासपर समीक्षा ।

प्रारम्भिक मूल अवस्थामें लगातार गति होनेसे यह जगत लोकान्तर बनते हैं यह ठीक है, परन्तु आल्फ्रेड, रसेल, वैंलेस, आलिवर, लाज-सदृश वैज्ञानिक कहते हैं कि (१) इस विकास का प्रथम “प्रेरणा” (First Impulse) देनेके लिये किसी चेतनशक्ति की आवश्यकता है । (२) इसी प्रकार इस विकास विधिको अथवा उसके आधार रूप प्राकृतिक नियमोंको नियमित करने, धारण करने, और जाननेवाले चेतन आत्माकी सत्ता होनी चाहिए । (३) जो आत्मा लगातार होनेवाले विकास को, अन्तिम उद्देश्य (Final Purpose) तक पहुँच

सके*। इसका अर्थ यह है कि प्रकृति जगत्में यद्यपि प्राकृतिक नियम काम कर रहे हैं। परन्तु उनके साथ ही एक ऐसी चेतन शक्ति आवश्यक है जो प्राकृतिक नियमोंको नियंत्रित करनेवाली और धारण करनेवाली (Controller and Sustainer of the Laws of Nature) है। इस 'चेतनशक्ति' के बिना प्राकृत विकास अथवा सृष्टि कर्तृत्वके लिये चेतन आत्मा ईश्वरकी आवश्यकता है।

*सृष्टि विकासमें 'ईश्वर रूप' चेतन आत्माका इन तीनों प्रकारोंसे आवश्यकता रसेल वैंलेसने अपनी प्रसिद्ध और अन्तिम पुस्तक जो १९१२ में प्रकाशित हुई थी—“The world of life” में दिखलाई है। यह विचार वेदान्तके इस विचारमें कि ईश्वर वह है जिससे जगत्की [१] उत्पत्ति [२] स्थिति [३] प्रलय हां. मिलता जुलता है:— इसप्रकार वैंलेसने आत्म-शक्ति ईश्वर को स्वीकार किया है। यहाँ भी याद रखना आवश्यक है कि वैज्ञानिक जगत्में वैंलेसका पद बहुत ऊँचा है। उसने 'प्राकृतिक चुनावके नियम' की खोज ठीक उसी समयकी थी जिस समय कि एक दूसरे स्थानपर बैटे हुए डार्विनने की। परन्तु वह नियम इस समय केवल डार्विनके नामसे ही प्रसिद्ध हैं वैंलेस 'विकासवाद' के मुख्य प्रवर्तकोंमें से एक है।

†वेदमें इन प्राकृतिक नियमोंको 'ऋत' (Cosmic Laws) कहते हैं और ईश्वरको 'ऋतम्भर' (upholder of the cosmic Laws) कहा गया है, ऋग्वेद (१।१।८) में ईश्वर

जीवन—विकासकी समीक्षा ।

प्रारम्भिक प्रथम अवस्थासे मनुष्यतक जीवनका विकास अभी तक निश्चित सिद्धान्त (Established Doctrine) नहीं हो सकता है किन्तु वह अभी केवल एक 'वाद' (Theory) ही है । विकासके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न हैं, जिनका अभी तक उत्तर नहीं दिया जा सका है और अभी तो बन्दर और मनुष्यके बीच विकास शृङ्खलाकी कई कड़ियाँ नहीं मिलती । परन्तु जीवन इस भूमण्डलपर कहाँसे आया इसका तो कोई संतोषजनक उत्तर दिया ही नहीं जा सका । 'जड़' से 'चेतन' बननेकी समस्यापर योग्यके वैज्ञानिक बहुत दिन तक लगे रहे परन्तु कोई सफलता नहीं हुई । जीवनके अस्तित्वके लिए 'आत्मा' को स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है अन्यथा जीवनकी संसारमें हस्ती ही सिद्ध नहीं होती । प्राकृतिक विकाससे जड़ प्रकृतिके अतिरिक्त ईश्वरकी अपेक्षा होती है इस विषयमें इस ग्रंथमें संक्षेपसे लिखा गया है क्योंकि वह पुस्तकका विषय नहीं परन्तु 'जीवन' की उत्पत्ति 'जड़' से नहीं हो सकती । इस विषयको इस ग्रन्थमें विस्तारपूर्वक व्यक्तियोंके साथ दिखाया गया है और आत्मा को न माननेके कारण जीवनके विषयमें हेकलको जों-जों

को 'ऋतस्य गोपा' कहा है जिसका अनुवाद ग्रीफ़िथने 'Guard of the Laws Eternal' किया है अर्थात् वह नित्य प्राकृतिक नियमोंका रक्षक

कल्पनाएँ करनी पड़ीं उनका भी दिग्दर्शन कराया गया है । साथ ही जगत्में भिन्न-भन्न प्राणियोंका अस्तित्व, ईश्वरकी रचनाका बोधक है, यह भी सिद्ध किया गया है । संक्षेपसे यह कहा जा सकता है कि बिना आत्मा और परमात्माको स्वीकार किए केवल जड़ प्रकृति, जीवनकी समस्याको, हल करनेमें सर्वथा असमर्थ है ।

मानसिक विकास की समीक्षा

मानसिक विकासकी मीढ़ करनेके लिए अभी तक उतना आधार भी नहीं है जितना कि प्राणि जगत्के विकासकी कल्पना के लिए । मानसिक विकास आधाररहित कल्पनामात्र है । प्राचीन समयमें अब तक क्रमशः ज्ञानका विकास नहीं हुआ है । प्राचीनकाल, कतिपय बातोंमें, अर्वाचीनकालमें बढ़ कर था । इस विषयमें भी इस ग्रन्थमें बहुत कुछ लिखा गया है । परन्तु मुख्य समस्या यह है कि मनुष्योंमें यदि ज्ञानका विकास भी माना जावे तो उस ज्ञानका स्रोत क्या है ? मनुष्य और पशु जगत्के बीच 'ज्ञान' अथवा ज्ञान को धारण करनेवाली 'व्यक्त भाषा' एक भेदक रेखा (Line of Demarcation) है । मनुष्योंमें वह ज्ञान कहाँसे आया ? पशु अवस्थामें उसका विकास वैज्ञानिक रीति पर सिद्ध नहीं हो सकता । उस ज्ञानका स्रोत 'ईश्वरीय ज्ञान' ही हो सकता है जो कि वेदके रूपमें है । इस विषयमें भी इस ग्रन्थमें बहुत प्रकाश डाला है ।

यहाँ हमने जड़वाद और आत्मवादकी वास्तविक स्थिति और उनके सिद्धान्तोंका संक्षिप्त विवेचन दिया है । इस विषय पर इस ग्रन्थमें विस्तारमें विचार किया गया है । साथ ही इस

ग्रन्थकी एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें आत्म-सम्बन्धी लगभग सारे विचार और सिद्धान्त, चाहे वह नवीन हों या प्राचीन चाहे इस देश (पूर्व) के हों अथवा विदेश (पश्चिम) के, चाहे वे वैदिक-धर्मके हों या अन्य धर्मोंके, एकत्रित किए गए हैं जो कि इस विषयकी ज्ञान वृद्धिमें बहुत सहायक होंगे । यह स्पष्ट है कि विषय अति गम्भीर है, विशेषकर इस कारण कि आर्य-भाषामें अभीतक ऐसे गहन विषयों पर कुछ भी नहीं लिखा गया है । ऐसी दशामें यदि कहींपर इस ग्रंथके विषयके समझने में कुछ कठिनता उपस्थित हो तो कोई आश्रय नहीं परन्तु यह आशाकी जाती है कि द्वितीय या तृतीय बार पढ़नेमें यह विषय अधिक रोचक रीतिमें समझा जा सकेगा ।

हर्षकी बात है कि इस समय हिन्दी साहित्योद्यानमें नए-नए पुष्पोंका विकास हो रहा है । हमें आशा है कि इस ग्रन्थमें हिन्दी साहित्यकी शोभा बढ़ेगी, न केवल धर्मकी दृष्टिमें किन्तु एतद्विषयक विज्ञानकी दृष्टिमें भी । यह हिन्दी साहित्यमें सर्वथा अनूठा और नया ग्रन्थ है ।

II

ग्रन्थकार-परिचय

श्री नारायण स्वामीजी (भूतपूर्व महात्मा नारायणप्रसादजी आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन) इस ग्रन्थके रचयिता हैं । इन पंक्तियोंके लेखकका महात्माजीसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । उसने उन्हींके चरणोंकी छायामें (गुरुकुल वृन्दावनमें) दीक्षा और शिक्षा पाई है । आर्यजगत्के लिए

महात्माजीका परिचय देना आवश्यक है । उनका नाम आर्य समाजके क्षेत्रमें इस किनारेसे उस किनारेतक विदित है । परन्तु दूसरे पाठकोंके लिए कुछ परिचय ग्रन्थकारके विषयमें देना आवश्यक है* ।

युक्तप्रान्तमें सामाजिक कार्य ।

युक्तप्रान्तमें इस समय जो कुछ आर्यसमाजका वृत्त फूला-फला दीख रहा है उसको मीचनेमें श्री नारायण स्वामीजी का बहुत बड़ा हाथ है । ऋषि दयानन्दके पश्चान् युक्तप्रान्तमें ऋषिके मिशन की पूर्तिके लिए जिन कतिपय सच्चे भक्तोंने अपने जीवनकी आहुति दी, महात्माजी (स्वामीजी) उनमेंसे एक हैं । आपने पिछली शताब्दीके पूरे समयमें (२५ वर्ष तक) आर्यसमाजकी सेवा की है । युक्तप्रान्तकी आर्यप्रतिनिधिसभाके सबसे बड़े संचालकोंमें आप रहे हैं । सभामें अन्तरङ्ग सभासद, उपमन्त्री, मन्त्री, गुरुकुलके मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य आदि अनेक पदोंको सुशोभित करते हुए आपने कार्य किया है । जिस समय आप मन्त्री थे आर्यप्रतिनिधिसभाकी बहुत उन्नति हुई । आप प्रायः समाजोंके उन्मेषोंपर भी जानें थे

*यह ग्रन्थकारका परिचय श्री स्वामीजीकी विना आज्ञा लिए लिखा गया है, वे इसमें पसन्द भी न करेंगे परन्तु पुस्तक के प्रकाशक इसे आवश्यक समझते हैं कि पुस्तकके साथ उसके रचयिताका कुछ परिचय प्रस्तुत किया जाय ।

और प्रचारकी वास्तविक अवस्थाका निर्गच्छण करते थे। उनका मन्त्रित्व केवल 'दफ्तर' और 'कलम, कागज़' का ही न था।

वेदप्रचार, गुरुकुल और कॉलेजका प्रश्न।

युक्तप्रान्तमें जिस समय यह प्रश्न उठा कि पंजाबकी तरह यहां भी डी० ए० बी० कॉलेज खोला जाए। आर्यसामाजिक नेताओंके दो दल हो गए। एक कॉलेजके पक्षमें था दूसरा वेद प्रचार और गुरुकुलके पक्षमें। महात्माजीने सबसे पहले प्रतिनिधि सभामें गुरुकुल खोलनेका प्रस्ताव उपस्थित किया। लोग अपनी अशक्तिको देखते हुए गुरुकुल खोलनेमें कुछ संकोच करते थे। परन्तु जिस समय वृद्धधिवेशनमें गुरुकुल पक्षमें आपने अपनी आज्ञास्वनी वक्तृता दी प्रस्तावको सभने स्वीकार किया। प्रश्न केवल धनका रह गया। उसके लिए भी महात्माजी ने सारे प्रान्तमें दौरा लगाकर स्वयं धन एकत्रित किया और उनके उद्योगका फल यह हुआ कि उस समय तो नहीं किंतु उसके पश्चात् १९०६ ई० में यू० पी० की आर्यप्रतिनिधि सभाने मिकंदराबादका गुरुकुल अपने हाथमें लिया। १९०७ ई० में गुरुकुल फर्रुखाबाद चलाया गया जहां वह चार साल तक अर्थात् १९११ ई० तक रहा।

वृन्दावन-गुरुकुलके आचार्य।

१९११ ई० में कतिपय कारणोंसे, सभाने गुरुकुलको फर्रुखाबादसे उठाकर वृन्दावन लाना निश्चय किया। स्वनामधन्य श्रीयुत राजामहेन्द्र प्रतापने उसके लिए भूमि (एक बाग सहित)

बिना किसी शर्तके दे दी। सभाने अक्टूबर १९११ ई० में गुरुकुल उठानेका निश्चय किया था और साथ ही यह भी निश्चय हुआ था कि दो मासके पश्चान् होनेवाला गु० कु० का अगला उत्सव भी वृन्दावन किया जाय। इतने थोड़े समयमें सारी इमारतों का बन जाना और नई गुरुकुल भूमिमें उत्सवका होना केवल इसीलिए सम्भव हो सका कि महात्माजी तीन मासकी छुट्टी लेकर वहाँ पहुँच गए और रात-दिन परिश्रम करके उस कार्यका पूरा किया। परन्तु गुरुकुल आनेके पश्चान् मुख्याधिष्ठाता पदका बोझ भी आपके कंधोंपर ही रक्खा गया क्योंकि स्वर्गीय पं० भगवानदीनजी जो उस समय मुख्याधिष्ठाता थे, बीमार होनेके कारण चले गए। आपने सरकारी नौकरीसे छुट्टी ले ली, परन्तु छुट्टी समाप्त होने पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि आप नौकरी पर जाएँ या गुरुकुलका काम करें। आपकी पेंशन होनेमें केवल एक वर्षकी कमी थी। लोगोंने बड़ा जोर देकर आपको सलाह दी कि डाक्टरसे सर्टीफिकेट (Invalid Certificate) दिलाकर पेंशनका अधिकार प्राप्त कर लीजिए। परन्तु आपने झूठा सर्टीफिकेट प्राप्त करनेमें इन्कार किया, और ऐसे समयमें जब कि आपकी पेंशनके लिए केवल एक वर्ष की कमी थी, आपने नौकरीसे इस्तीफा दे दिया। यह घटना है जो आपके 'स्वार्थ त्याग' और 'सत्य निष्ठा' का परिचय देती है और बतलाती है कि उसके अन्दर कितना चारित्र्यबल है।

गुरुकुल वृन्दावन जो इस समय इतनी उन्नत अवस्थामें है यह आपके ही पुरुषार्थका फल है। जिस समय आपने गुरुकुल का चार्ज लिया बड़ी शोचनीय दशा थी किन्तु आपने रात-दिन

आंसुओंके साथ अभिनन्दनपत्र प्रस्तुत किया। वह एक विचित्र दृश्य था। उससे पता चलता था कि गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंके लिए उनका पुत्रमे बढ़कर प्रेम था और ब्रह्मचारी पिताके समान उनमें श्रद्धा रग्वने थे।

श्रीनारायणाश्रम, (एकान्तवास)

महात्माजीने गुरुकुलसे विदा होकर नैनीतालके समीप पहाड़के उच्च शिखरपर सुरम्य-सुन्दर भूमिमें अपनी कुटी—‘श्री नारायणाश्रम’—बनाई। कुटी भी एक दर्शनीय स्थान है। वह पहाड़के घने जङ्गलके भीतर एक सुरम्य शान्त स्थानमें पहाड़ी नदीके पास बनी हुई है। वहां रह कर महात्माजीने सन्यासाश्रमकी तैयारी की और आध्यात्मिक चिन्तन तथा स्वाध्यायमें एकान्त-जीवन व्यतीत किया। वहीं रहते हुए इस ग्रन्थका निर्माण किया जो अब पाठकोंके आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। यह ग्रन्थ जैसा कि पाठकोंको पता चल जायगा दीर्घकालीन स्वाध्याय का फल है।

सन्यासाश्रम और पूर्णाहुति।

इस वर्ष (१९२२) गत जूनमें महात्माजीने सन्यासाश्रममें प्रवेश किया। सन्यासमें प्रवेश करते समय आपने अपनी कुटी और सब धन जो कुछ आपके पास था युक्तप्रान्तकी आर्यप्रतिनिधि सभाको वैदिकधर्म सम्बन्धी साहित्यकी उन्नतिमें लगानेके लिए अर्पण कर दिया। सन्यासमें प्रवेश करनेके पश्चात्से वे आर्यसमाजोंमें प्रचारार्थ जाने लगे हैं। इस समय आर्यसमाज

को आपसे बड़ी आशाएँ हैं। जहाँ आपकी कथाएँ होती हैं वहाँके आर्य-पुरुषोंमें नए जीवन और आस्तिक भावोंका सञ्चार हो जाता है। आपकी कथाएँ यद्यपि आध्यात्मिक विषयोंपर होती हैं परन्तु लोग बड़ी प्रीतिसे सुनते हैं।

उपसंहार

यह कैठिन है कि यहां हम संक्षेपसे भी उनके अद्वितीय चारित्र्यको बनानेवाले गुणोंपर दृष्टि डाल सकें, परन्तु इतना कहना आवश्यक है कि उनमें तप, स्वाध्याय, नियम, दृढ़ अध्यवसाय सत्यनिष्ठा, गम्भीरता आदि गुण जिसप्रकार पाए जाते हैं उसका उदाहरण बहुत कम जगह मिल सकता है। वे एक आदर्श सन्यासी हैं, आर्यसमाजका उनमें गौरव है। आर्यसमाज अपनेको धन्य समझ सकता है जिसमें ऐसे सन्यासी विद्यमान हैं।

गुरुदत्त भवन, लाहौर।
मार्गशीर्ष पूर्णिमा १९७९ विक्रमी

धर्मेन्द्रनाथ ।



प्रारम्भिक वक्तव्य

पुस्तकके तय्यार करनेमें सबसे अधिक कठिनता, आंगल भाषाके वैज्ञानिक और दार्शनिक (परिभाषिक) शब्दोंके स्थानमें हिन्दी भाषाके शब्दोंके खोजमें हुई है । नागरी-प्रचारिणी-सभाका प्रकाशित वैज्ञानिक कोष अभी बहुत अधूरा है, फिर भी उससे कहीं-कहीं सहायता ली ही गई है । अनेक शब्द ऐसे हैं जिनके स्थानमें हिन्दीके भिन्न-भिन्न लेखकोंने भिन्न-भिन्न ही शब्दोंका प्रयोग किया है । उदाहरणके लिए 'प्रोटो'नाम् शब्द ही को ले लीजिए; इसके लिए हिन्दीमें प्रथमकेन, जीवबीज जीवकेन, जीवधातु, आदिपंक, नारा, जीवनमूल, जीवन तत्त्वादि शब्द प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु मुझको सबसे अधिक उपयोगी शब्द, पं० रामचन्द्र शुक्ला प्रयोग किया हुआ, 'कललरस' प्रतीत हुआ और इसलिए इसीका प्रयोग इस पुस्तकमें जहाँ-तहाँ किया गया है । इसप्रकारके और भी अनेक शब्द हैं, जिनके स्थान पर उपयोगी शब्दोंका प्रयोग किया गया है । उनमें मतभेद होना स्वाभाविक है, परन्तु यदि उनके प्रयोग करनेमें मुझसे कुछ भूल हुई है तो ज्ञात होने पर दूसरे संस्करणमें शुद्ध करनेका यत्न किया जायगा ।

पुस्तकके प्रकारकी दृष्टिसे यह आवश्यक ही था कि उसकी रचनामें अनेक पुस्तकोंसे सहायता ली जाती; तदनुकूल सहायता ली गई है । मैं उन पुस्तकके रचयिताओंका कृतज्ञ हूँ जिनके रचे पुस्तकोंसे सहायता ली गई है ।

पुस्तकका विषय गहन होनेपर भी उसको अधिक-से-अधिक सुगम बनानेका यत्न किया गया है जिससे पुस्तक सर्व-साधारणके हाथोंमें जानेके भी योग्य हो सके । पुस्तकके अन्तमें असाधारण परिभाषिक शब्दोंकी एक सूची भी लगा दी गई है जिसमें अंग्रेजी भाषाभिज्ञ पाठक जान सकें कि पुस्तक में प्रयुक्त हिन्दीके शब्द किन-किन अंग्रेजी शब्दों के स्थानमें काममें आए हैं । यदि पुस्तकके पाठसे देशवासियोंमेंसे कुछका भी ध्यान आत्म-विषयकी ओर हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा ।

ग्रन्थकर्ता



दूसरे संस्करणकी भूमिका ।

मुझे आशा नहीं थी कि आत्मदर्शिका जनता इतना मान करेगी कि न केवल आर्यभाषामें उसके एकसे अधिक संस्करणों की जरूरत पड़ेगी किन्तु अन्य भाषाओंमें भी उसका अनुवाद किया जायगा—बंगला और उर्दू भाषाओंमें उसके अनुवाद करने की अनुमति मुझमें ली जा चुकी है । आर्य-भाषाका यह दूसरा संस्करण जनताके सन्मुख है । इस संस्करणमें अनेक स्थानोंपर वृद्धि और उचित संशोधन किया गया है जिससे किसी-न-किसी अंशमें पुस्तककी उपयोगिता, विश्राम है कि, बढ़ी होगी । अनेक विद्वान सज्जनोंने पुस्तकको पढ़ा, और अपनी मूल्यवान् सस्मृति भेजनेकी कृपा की है । मैं इन सबका कृतज्ञ हूँ—जिन सज्जनोंने पुस्तकमें कुछ घटाने-बढ़ानेकी राय दी थी । उनपर कृतज्ञतामें ध्यान दिया गया है और इस संस्करणमें उससे पूरा-पूरा लाभ उठानेका यत्न किया गया है । आशा है कि इस संस्करण का भी उचित आदर होगा ।

नारायण-आश्रम
रामगढ़ (नैनीताल)
श्रावण क० ३ स० १९८१ वि०

नारायण स्वामी

तीसरे संस्करणकी भूमिका ।

आत्मदर्शनका तीसरा संस्करण स्वाध्यायप्रिय पाठकोंके सम्मुख रखवा जाता है—जनताने इस ग्रन्थका जितना अधिक मान किया है उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ—इस संस्करणमें भी आवश्यक संशोधन किया गया है आशा है कि यह संस्करण भी लोकप्रिय होगा ।

रामगढ़ } नारायण स्वामी
आपाढ़ क० ८ सं० १९८६ वि०

चौथे संस्करणकी भूमिका ।

आत्मदर्शन जैसे गहन विषयके पुस्तकका चौथा संस्करण स्वाध्यायशील पाठकोंके सम्मुख रखते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है—पुस्तकमें अनेक संशोधन और परिवर्तन किए गए हैं जो आशा है कि पाठकोंका रुचिकर होंगे ।

बलिदान-भवन } नारायण स्वामी
देहली
कार्तिक क० चतुर्थी सं० १९८९ वि०

पुस्तकोंकी सूची ।



जिनसे इस ग्रन्थ की तय्यारी में
सहायता ली गई है ।

1. ऋग्वेद
2. सूर्य्य सिद्धान्त
3. १० उपनिषद्
4. ६ दर्शन
5. Last Essays of Prof. Max Muller. Vol. 1 and II,
6. सासान 1—5 के पत्र (फारसी भाषाकी दसातीरमें)
7. The Doctrine of immortality in Ancient Egypt by Dr. Wiedemann.
8. The Confucianism by Robert K. Douglas.
9. The Taonism by Do.
10. The Idea of Soul by A. E. Crawley.
11. Tylor's Primitive culture Vol. I and II.

12. Reincarnation by E. D. Walker.
13. The Belief in personal immortality by E. S. P. Hynes.
14. Republic by Plato.
15. The Trial and death of Socrates.
16. Greek Thinkers by Dr. Gomperdz. Vol. IV. (English Translation.)
17. History of Ethics by H. Sidgwick.
18. अखलाके दिलपिजीर कलंदर अली रचित (फारसी)
19. रोज़तुल अस्फिया (फारसी)
20. मिफताहुल तवारीख़
21. History of Philosophy by Erdmann Vol. 1 to III.
22. Spinoza. His belief and Philosophy by Sir Frederick Pollack Bart (2nd Edition).
23. La Manadologies par Emile Boatroux.
24. Myths and Dreams by Clodd.
25. System de-la Nature by Barond Halbach.
26. A Pluralistic Universe by W. James.
27. Varieties of Religious Experiences by W. James.
28. Jaimes-Book on Human Immortality.

29. Mechanism in Thought and Morals by O. W. Halmes.
30. Some Dogmas of Religion by Dr. M. E. Taggart.
31. Religion Immortality by G. L. Dickinson.
32. Psychology by Michael mehr.
33. Problems of Philosophy by B. Russal.
34. Prof. Clifford's Lectures and Essay & Vol. I
35. Psychology and Physiology by Prof. Munsterberg.
36. Romano, Mind, Motion and Monism.
37. First Principles (2nd Edition) by H. Spencer.
38. Evolution of mind by Joseph Tyndall.
39. Lectures and Essays by John Tyndall.
40. Do. by T. H. Huxley.
41. Classification of animals by T. H. Huxley.
42. Origin of Species by Darwin.
43. The Voyage by Do.
44. The Riddle of the Universe, by E. Haeckel.
45. Materialism by Darab Dinsha Kanga.
46. Theoretical Organic Chemistry by Prof. Cohen.

47. The Human Personality by Mayers Vol. I and II.
48. Psychical Research by Prof. Barret.
49. Survival of Man by Sir Oliver Lodge.
50. Sermons on Immortality by Dr. Momerie.
51. Christian Doctrine of Immortality by Dr. Salmond.
52. An Outline of Christian Theology by Dr. W. N. Clarke.
53. Christian Truth in an age of Science by Prof. Rice.
54. Through Science to faith by Newman Smith.
55. Know Thyself by H. Solly.
56. The Drama of Life and death by Edward Carpenter.
57. Man's place in the Universe by Dr. Wallace.
58. Early History of Mankind by Z. B. Tlyor.
59. Science and Religion by Seven men of Science.
60. Life and Matter by Sir Oliver Lodge.
61. पाणिनि-कृत अष्टाध्यायी ।
62. सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानन्द सरस्वती-कृत ।

63. सर्वार्थ सिद्धि [तत्त्वार्थ वृत्ति]
64. माण्डूक्यकारिका [गौड़पादाचार्य-कृत]
65. सर्वदर्शनसंग्रह [श्रीमाधवाचार्य संगृहीत]
66. The Terminology of the Vedas by P. Guru
Dutt M. A.
67. Problems of the Future by S. Laing.
68. Cant's Critique of Pure Reason.
69. योरुपीयदर्शन पं० रामावतार पाण्डे-कृत ।
70. पश्चिमी तर्क प्रो० दीवानचन्द्र-कृत ।
71. गीता रहस्य हिन्दी पं० बालगङ्गाधर तिलक-कृत ।
72. Religion of Sir Oliver Lodge by J. Mecabe.
73. Evolution of Matter by Gustave Le Bon.
74. Beyond the atom by Prof. Cox.
75. Reason and Belief by Sir Oliver Lodge.
76. The World of life by Dr. Wallace.
77. What is life by F. J. Allen.
78. सुश्रुत ।
79. The Vedic Magazine for September 1921.
80. चित्रमय जगत् मास जनवरी सन् १९१८
81. Social environment and Moral progress
by Dr. Wallace.

82. The Historian's History of the World
Article written by Prof. Adolf Erman.
83. The Theism, by R. Flint.
84. Phillip's Teaching of the Vedas.
85. आईन अकबरी फ़ैज़ीकृत (अंग्रेज़ी अनुवाद)
86. Encyclopedia (some articles.)
87. Light of Asia.
88. The Life and Teachings of Buddha.
89. गीता में ईश्वरवाद, पं० ज्वालादत्त जी अनुवादित ।
90. विश्व प्रपंच पं० रामचन्द्र शुक्ल अनुवादित ।
91. कर्मयोग स्वामी विवेकानन्द-कृत ।
92. सबूते तनासुख पं० लेखराम-कृत ।
93. The Sacred Books of the East Vols. I to III.



विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ संख्या
१—परिचय	३
२—भूमिका	१९
३—पुस्तकोंकी नामावलि जिनसे इस ग्रंथके तैय्यार करने में सहायता ली गई	२१
४—विषय सूची	२६

उपोद्घातकी विषय सूची ।

पहला अध्याय

पहला परिच्छेद

विषय	पृष्ठ संख्या
प्रारम्भ	१
...	...
दूसरा परिच्छेद	
१—ज्ञेय मीमांसा	२
२—वेदोंके ३३ देवता ज्ञेय पदार्थोंके रूपान्तर हैं	३
३—क्या ज्ञेय अज्ञेय है ?	७

दूसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

(ईश्वर सम्बन्धी विचार)	८
१—नास्तिकवाद	८
२—नास्तिकवादके समर्थनमें तर्क	९
३—नास्तिकवादके समर्थक तर्कोंपर विचार	११

दूसरा परिच्छेद

१—आक्षेपके पहले भागपर विचार, ईश्वरका विभुत्व गुण	१२
२—ईश्वरका सर्वज्ञता-गुण	१४
३—ईश्वरका ज्ञानदातृत्व गुण	१५

विषय	पृष्ठ संख्या
४—ईश्वरका कर्मफलदातृत्व गुण	१६
५—ईश्वरका सर्वशक्तिमत्त्व	१८
६—ईश्वरका नियन्त्रित्व...	१९
७—ईश्वरका करुणामयत्व	१९
८—ईश्वरका सृष्टिकर्तृत्व	२०

तीसरा परिच्छेद

१—प्रश्नके दूसरे भागपर विचार	२१
२—तीसरे आक्षेपपर विचार	२२
३—चौथे आक्षेपपर विचार	२३
४—पाँचवें आक्षेपपर विचार	२४
५—छठे आक्षेपपर विचार	२४
६—सातवें आक्षेपपर विचार	२६

चौथा परिच्छेद

अज्ञेयवादपर विचार	२६

पाँचवाँ परिच्छेद

आस्तिकवादपर विचार	२९

तीसरा अध्याय

पहिला परिच्छेद

(प्रकृति और जीवात्मा)

१—प्रकृति जगत्का कारण	३१

विषय

पृष्ठ संख्या

दूसरा परिच्छेद

१—जीवात्मा	...	...	
२—क्या जीव ब्रह्म एक हैं चेतनाद्वैतवादपर विचार			३३
३—माया क्या है ?			३४
४—निर्गुण ब्रह्मसे जीव किस प्रकार बने			३४
५—मायावादका उत्तर	...	...	३५

तीसरा परिच्छेद

१—क्या जीव प्राकृतिक है ?		४१
२—डिमोक्रैटसके मतपर विचार		४२
३—इम्पीडाक्लेसके मतपर विचार		४३
४—इपीक्यूरस और ल्यूक्रेटियसके मतपर विचार		४४
५—हक्सलेके मतपर विचार		४६

चौथा परिच्छेद

१—हैकलके मतपर विस्तृत विचार		४९
२—शरीर-निर्माण		४९
३—गर्भ		४९
४—मनोव्यापार		५१
५—इन्द्रिय और अन्तःकरण		५३
६—स्वतः प्रवृत्ति गति		५६
७—प्रतिक्रिया		५७

विषय	पृष्ठ संख्या
८—अन्तः संस्कार (अन्तः करण)	६१
९—ध्यटकगत अन्तःसंस्कार	६१
१०—तन्तुजालगत अन्तःसंस्कार	६३
११—सम्बेदनसूत्र ग्रन्थिगत अचेतन अन्तःसंस्कार	६४
१२—मस्तिष्कघटकगत अचेतन अन्तःसंस्कार	६४
१३—स्मृति	६५
१४—घटकगत स्मृति	६५
१५—तन्तुगत स्मृति	६५
१६—उन्नत जीवोंकी चेतनारहित स्मृति	६६
१७—चेतन स्मृति	६६
१८—अन्तःसंस्कारोंकी शृंखला या भावयोजना	६७
१९—भाषा	६७
२०—अन्तःकरणके व्यापार	६८
२१—संकल्प	६९
२२—मनोव्यापार	७१
२३—चेतना	७२

पाँचवा परिच्छेद

१—आत्माके सम्बन्धमें कुल्लेक तर्क	७५



चौथा अध्याय

पहला परिच्छेद

(आत्मा-सम्बन्धी विविध विषय)

विषय	पृष्ठ संख्या
१—अणुवाद	८१
१—अणुवादकी समीक्षा	८२
३—प्रकृति स्थिति	८२
४—गतिशक्ति स्थिति	८४
५—प्रकृति और शक्तिसे आत्मा पृथक् है	८५
६—विज्ञानकी सीमा	८७
७—हैकलका द्रव्यवाद विज्ञानकी सीमासे बाहर है	८८
८—दर्शन और विज्ञान में क्या अन्तर है ?	९१

दूसरा परिच्छेद

१—कारणके गुण कार्यमें होते हैं	९२
२—घड़ीका उदाहरण	९२
३—सूर्यका उदाहरण	९३

तीसरा परिच्छेद

१—मस्तिष्क और आत्मा	९४
२—आन्तरिक व्यापार दर्शन व उपनिषद्	९४
३—शरीरके ३ भेद	९४
४—सूक्ष्म शरीरकी कार्यप्रणाली	९५
५—इन्द्रियोंके व्यापार	९६

चौथा परिच्छेद

विषय	पृष्ठ संख्य
१—अनेक वैज्ञानिक भी जीवके प्राकृतिक आधार होने के समर्थक नहीं	९८
२—न्यूटनका मत	९९
३—सर आलिवरलाजका मत	९९
४—जॉन स्टुअर्टमिल	१००
५—प्रोफेसर टेट	१००

पाँचवाँ परिच्छेद

१—डाक्टर वालेस	१००
२—जीवन क्या है ?	१०१
३—हैकलका एकाणुवाद और डाक्टर वालेस	१०१
४—हैकलका अणुवाद नास्तिकताका रूपान्तर है	१०१
५—चेतन और अचेतनमें अन्तर	१०६

छठा परिच्छेद

१—विल हेम वुंटका मत परिवर्तन	१०५
२—विरचो और रिमौंड	१०८
३—काण्टका	१०८
४—वेयर	१०९

सातवाँ परिच्छेद

विषय	पृष्ठ संख्या
१—गर्भमें समस्त शरीर बीजवन् रहता है	११०
२—क्या अंकुर घटकमें माता-पिताके गुण आ जाते हैं	११४
३—माता-पितासे सन्तानका आकृति-भेद	११६

आठवाँ परिच्छेद

१—स्थिर योनिका प्रश्न	११७
२—विकासवादमें योनि परिवर्तनका क्रम	११८
३—योनिविकासके साथ ज्ञानवृद्धिकी कल्पना, कल्पना मात्र है	१२२
४—लॉज भी इससे सहमत नहीं	१२२
५—प्रोफेसर इरमैन भी ,, ,,	१२३

नवाँ परिच्छेद

१—मेसोपोटेमियाँकी सभ्यता भी भारत और मिश्रके सदृश थी	१२७
२—यदि क्रमशः ज्ञानवृद्धि स्वाभाविक रीतिसे होती तो इस समय भी अनेक जातियां अज्ञानी क्यों हैं ?	१२८
३—परिच्छिन्नोसे स्वाभाविक ज्ञानवृद्धि प्रमाशित नहीं	१२८
४—ज्ञानवृद्धिके लिए निमित्त अपेक्षित हैं	१२९
५—इलहाम अथवा ईश्वरीय ज्ञान	१२९
६—फिलिटिका मत इसके समर्थनमें	१३०

विषय	पृष्ठ संख्या
७—फिलिपकी सम्मति भी इसके अनुकूल है	१३०
८—डाक्टर लफीमिगका मत इसकी पुष्टिमें	१३०
९—हैकलका अंतिम मत	१३१

दसवाँ परिच्छेद

१—क्या विकासवाद नास्तिकवाद है ?	१३३
२—डर्विन ईश्वरवादी था	१३३
३—सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त	१३६
फैज़ीका मत चन्द्रकान्तकी पुष्टिमें	१३७

ग्यारहवाँ परिच्छेद

जीवान्मा और पश्चिमी अध्यात्मवाद मंघ	१३८
इति ।	



पुस्तककी विषय सूची ।

पहला अध्याय

पहला परिच्छेद

(कतिपय प्राचीन पूर्व जातियोंमें प्रचलित आत्मविचार)

विषय	पृष्ठ संख्या
प्रारम्भ	१४३

दूसरा परिच्छेद

असीरियन और वैवलोनियनके आत्मसम्बन्धी विचार
जो उनकी प्रार्थनाओंमें प्रकट होते हैं

१४५

तीसरा परिच्छेद

पारसीमत और आत्मविचार

१४६

चौथा परिच्छेद

मिश्रके प्राचीन विचार

१४८

पांचवाँ परिच्छेद

१—कन्फ्युशसका मत

१५१

२—लाउजी (ताउमतके प्रवर्तक) का मत

१५३

दूसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

(कतिपयप्राचीन पश्चिमी जातियोंमें प्रचलित विचार)

१५८

दूसरा परिच्छेद
सर्व जीवात्ववाद

विषय	पृष्ठ संख्या
प्राचीन अन्य देशी जातियोंमें आवागमन	१६१

तीसरा अध्याय

पहला परिच्छेद

(यूनान-देशके दार्शनिक और आत्मविचार)

१—यूनानका प्राचीन मत	१६७
२—आर्फियसका मत	१६८
३—मिलिटसका सम्प्रदाय	१६९
४—इलियाका सम्प्रदाय	१७०
५—हिरैक्लिरस का मत	१७०
६—पाईथागोरस	१७०
७—एनैक्सा गोरस	१७१
८—डीमोक्रिटस	१७१
९—इम्पीडॉक्लिज	१७२

दूसरा परिच्छेद

१—सुकरातका	१७३
२—अफलानूनका मत	१७६
३—अरस्तू	१७७
४—एपीक्यूरोस	१७८

विषय	पृष्ठ संख्या
५—जैनो	१७९
६—इपिकटेटस	१८०
७—पिरहो	१८०

चौथा अध्याय

पहला परिच्छेद

(कतिपय अन्य मत)

रोमके प्राचीन मत १८२

दूसरा परिच्छेद

इस्लाम और आत्मविचार १८३

पाँचवाँ अध्याय

पहला परिच्छेद

(यूरोपकं मत)

१—ईसाई यूरोप	१८६
२—फिलौका मत	१९०
३—डंस स्कोटस	१९१
४—पीटरो पोम्पोनेजी	१९२
५—पैरेसेल सैस	१९२
६—अयार्डनो ब्रनो	१९३

दूसरा परिच्छेद

(यूरोप के वर्तमान युग का प्रारम्भ काल)

विषय	पृष्ठ संख्या
१—डेकार्टका मत	१९५
२—हेनरी मोर-रेल्फकडवर्थका मत	१९७
३—मालब्रांश	१९७
४—स्पीनोज़ा	१९८
५—लीवनीज़ (लाइप निट्स)	१९९
६—वेली	२०१
७—एक अन्य विद्वान	२०१
८—स्वीडन बोग	२०१
९—वालटेर	२०२
१०—बुफन	२०३
११—डिडिरट	२०३
१२—बैरन. डी. हालवेक	२०३

तीसरा परिच्छेद

१—लाकका मत	२०३
२—वरल्के	२०४
३—ह्यूम	२०५
४—काण्ट	२०६
२—सर आइज़िक न्यूटन	२०७

छठा अध्याय

पहिला परिच्छेद

(योरप की १९ वीं शताब्दी)

विषय	पृष्ठ संख्या
१—फ्रीचटे का आत्म-सम्बन्धी मत	२०९
२—शेलिंग	२१०
३—हेगल	२१०
४—शौपनहार	२११
५—रूडोल्फ-हर्मानलोज	२१३
६—राइस	२१३
७—गुस्ताव, थियोडोर, फेकनर	२१५
८—एडवर्ड, वन हार्टमान	२१६
९—विलियम जेम्स	२१७
१०—आलिवर, वेंडल होम्स	२१९
११—ई० एस० पी० हेनस	२१९
१२—डाक्टर टैगार्ट	२२१
१३—जी० लोइस डिकिंसन	२२२
१४—पादरी मोकाइल मेहर	२२२
१५—वरट्रेण्ड रसल	२२३

दूसरा परिच्छेद

योरपकी १९वीं शताब्दीका विज्ञान और आत्मा सम्बन्धी विचार

१—डब्ल्यू० के० क्लीफोर्डका आत्मा सम्बन्धी विचार २२४

विषय	पृष्ठ संख्या
२—प्रो० मंस्टर बर्ग	२२४
३—रोमेन्स	२२५
४—हर्बर्ट स्पेंसर	२२६
५—जे० मेकेब	२२७
६—जान टिएडल	२२९
७—थोमस हेनरी हक्सले,	२३१
८—डार्विनके सिद्धान्त (विकासवाद)	२३३
९—हैकलका विखित मत	२३५
१०—एफ० डब्ल्यू० गच० माइर्सका मत	२४९
११—प्रो० शेनस्टोन	२५०
१२—रोवर्ट केनडी डेकन	२५०
१३—डाक्टर जेप	२५१
१४—प्रो० कोहेन	२५२

तीसरा परिच्छेद

१—आत्मा-सम्बन्धी खोज और आत्मवाद	२५२
२—एलेचिटके खेल	२५३
३—स्वयं चलद यन्त्रके खेल	२५४
४—उज्ज्वल स्वप्न	२५८
५—परचित्तज्ञान	२५९
६—भूतप्रेतवाद	२६५

सातवाँ अध्याय

पहिला परिच्छेद

(पश्चिमी विज्ञानकी २०वीं शताब्दी)

विषय	पृष्ठ संख्या
१—डाक्टर मोमेरीका आत्मविचार	२६९
२—डाक्टर बालमोंडका आत्म-सम्बन्धी मन	२७०
३—डब्ल्यू० एन०	२७१
४—प्रोटाइस	२७१
५—डाक्टर सायम	२७२
६—न्यूमैन स्मिथ	२७३
७—एच सोली	२७४
८—एडवर्ड कार्पेटर	२७५

दूसरा परिच्छेद

१—डाक्टर बालेस	२७८
२—सरआलिवर लॉज	२८५
३—सरविलियमकृक्स	२८८
४—डाक्टर फलीमिंग	२८९
५—प्रो० वौटमली	२९१
६—प्रो० हुल	२९१
७—प्रो० बुलहेड	२९२
८— १० थामसन	२९२

आठवाँ अध्याय

पहिला परिच्छेद

(भारतीय विद्वानोंका मत)

विषय	पृष्ठ संख्या
१—गौतमका मत	२९४
२—कणाद ,,	२९७
३—कपिल ,,	२९८
४—पातञ्जलिका मत	३००
५—जैमिनि ,,	३०५
६—व्यास ,.	३०६

दूसरा परिच्छेद

१—चारवाकका मत	३११
२—गौतमबुद्धका मत	३१२
३—जैनमत और आत्मा	३१५

तीसरा परिच्छेद

१—गौड़पादाचार्यके विचार	३१६
२—श्री शंकराचार्य	३१८
३—रामानुजाचार्य	३२०
४—माधवाचार्य	३२२
५—वल्लभाचार्य	३२३
६—निम्बार्काचार्य	३२३

चौथा परिच्छेद

१— वेद और प्राचीन ऋषियोंका मत	३२४

आरम्भ

उपोद्घात

प्रथम अध्याय

पहिला परिच्छेद

इस समय जब कि देशमें आत्मशक्ति (Soul Force) का महत्त्व प्रकट हो रहा है, और आत्मशक्तियों विकसित करने और उसमें काम लेनेके लिए देशवासियोंको उत्तेजित किया जा रहा है, आत्मसत्ता और उसकी शक्तियों का विवरण देशवासियोंके आगे प्रस्तुत करना कदाचित् असामयिक न समझा जायगा। पश्चिमीय सभ्यताके आगे चमकीले प्रकाशके साथ उसकी जड़में छिपा हुआ जड़वादरूपी अंधकार भी देशमें आया और देशवासियों को उसने अपने मायाजाल में फँसाना चाहा। उसीका परिणाम यह हुआ कि देशवासियोंका ध्यान देशकी मुख्य विद्या होते हुए भी, आत्मविद्या की ओर से हट गया; परन्तु

काठ की हांडी सदैव नहीं चढ़ा करती है, इसी उक्तिके अनुसार चेतन प्राणियोंमें जड़वाद प्रतिष्ठित न हो सका। उसकी अप्रतिष्ठा का श्रीगणेश उसकी जन्मभूमि गूरूपमें हुआ, अब गूरूपमें १९वीं शताब्दीके जड़वादका स्थान, २०वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुए आत्मवादाने लेना शुरू कर दिया है। इस परिवर्तनके प्रभावसे भारतवर्ष कैसे बच सकता था, अतएव यहां भी आत्मवादकी चर्चा फैली, देशमें उत्पन्न हुई नवीन जागृतिने उसमें अच्छा योग दिया, फल यह हुआ कि शिक्षित समाज जड़वादके मायाजालसे निकलनेको उत्सुक होने लगा और उसमें आत्मविद्याके जाननेकी रुचि बढ़ने लगी, इसलिये यह उचित समय ही जानकर मैंने इस गहन और गहन्तर विषयके स्वाध्यायमें देशवासियोंकी सहायता करना अपना कर्तव्य ठहराया। आत्मवाद गहन होने पर भी संकुचित विषय नहीं, उसका विस्तार बड़ा और विशाल है, उसके जाननेके लिए भी विशाल हृदय अपेक्षित है।

दूसरा परिच्छेद

ज्ञेय मीमांसा संसारकी सबसे पुरानी पुस्तक ऋग्वेदमें ज्ञेय मीमांसा करते हुए ईश्वर जीव और प्रकृतिको ज्ञेय बनला कर तद्विषयक ज्ञान प्राप्तिकी शिक्षा दी गई है* वैदिक

* द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋग्वेद १ । १६४ । २०

कालमें यदि ये विषय विचारणीय समझे गए थे, तो वे आज भी उसी प्रकार विचारकी कौटुम्हें हैं, संसारके उन्नत और अवनतकालमें तत्कालीन परिस्थितिके अनुसार इन पर विचार होता चला आया है: पृथ्वीय और पश्चिमीय सभी दर्शनोंमें इनकी सीमांसाकी गई है। विचारके परिणाममें अवश्य विभिन्न मत हुए और होते रहेंगे, परन्तु विचारणीय विषय सबने इन्हींको समझा। "सेमुएललेंग" ने एक बार कतिपय प्रश्न वैज्ञानिकोंमें पूछे और स्वयं भी उनके उत्तर दिए थे, : उसके प्रश्नोंमें मुख्य प्रश्न इन्हीं तीन नित्य द्रव्योंमें संबंधित थे।

वेदों के ३३ देवता जेय वेदोंके ३३ देवता संख्याकी दृष्टिसे जगत प्रसिद्ध हैं, परन्तु वे क्या हैं इस पदार्थों के रूपान्तर : बहुत थोड़े पुरुष जानते हैं। वेदोंमें अनेक मन्त्र आए हैं, जिनमें वैदिक देवताओंकी संख्या ३३ वर्णनकी गई है : देवता किसको कहते हैं ? वेदके प्रसिद्ध

अर्थ—एक साथ रहनेवाले, परस्पर मित्र दो पत्नी (ईश्वर+ जीव) समान वृत्त (प्रकृति) पर आश्रय करने हैं, उन दोनोंमेंसे एक (जीवात्मा) उस वृत्तके फलोका भोग करता है, दूसरा (ईश्वर) न भोगता हुआ साक्षीमात्र है।

(*) Problems of the Future by S. Lang
Published in R. P. A. Series.

* ऋग्वेद में निम्न स्थलों में देवताओं की संख्या ३३ वर्णन की गई है —

मण्डल	सूक्त	मन्त्र
१	३४	११
१	४१	२
१	१३९	११
३	६	९
८	२८	२
८	३०	२
८	३५	३

इसके सिवाय अथर्ववेद काण्ड १०, सूक्त ७, मन्त्र १३, में भी ३३ ही संख्या बतलाई गई है, परन्तु ऋग्वेद ३।९।९ और यजुर्वेद अध्याय ३३, मन्त्र ७ में यह संख्या ३३ की जगह ३३३९ वर्णित है। यह संख्याभेद क्यों है, इसका कारण याज्ञवल्क्यने बतलाया है और अन्तमें उन्होंने कारण बतलाते हुए वास्तविक संख्या ३३ ही ठहराई है। जनककी सभा में “शाकल्य-विदग्ध” मुनिने याज्ञवल्क्यमें पृच्छा कि देवता कितने हैं ? याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि “वैश्यदेव” (जिन वेद-मन्त्रोंमें देवताओंका विधान है, उन्हें वैश्यदेव कहते हैं) सम्बन्धी मन्त्रों की “निविदा” (देवता सम्बन्धी मन्त्रोंके उपयोगी वाक्योंके संग्रहको “निविद” अथवा “निविदा” कहते हैं) में ३०३, और ३००३ कहे गए हैं। इस उत्तरको स्वीकार करके जब शाकल्यविदग्धने उनके नाम पृछे तो याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि देवता तो वास्तवमें ३३ ही हैं, ३०३ और ३००३ उनकी

कोपकार यास्कमुनि निरुक्तमें लिखते हैं कि प्रधानतामें जिसका वर्णनहो वह देवता है * अर्थात् देवताही जेय है, उन ३३ देवताओं का विवरण इस प्रकार है:—

८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य (मास), इन्द्र (अग्नि अथवा विद्युत्) और प्रजापति [यज्ञ] । आठ वसु ये हैं—

[१] अग्नि, [२] वायु (३) पृथ्वी, (४) अन्नरिक्ष, (५) द्यौ (प्रकाशक लोक), (६) चन्द्रमा, (७) आदित्य और (८) नक्षत्र । वसु बसनेके स्थानोंको कहते हैं, इन्हीं आ प्रकारके वसुगणोंमें प्राणी बस सकते हैं, इसलिये वसु कहलाते हैं । ११ रुद्र में १० प्राण और ११ वां आत्मा । १ आदित्य वर्षके १२ मासोंको कहते हैं । * इस प्रकार ३३ देवता हैं ।

महिमा ही है । “महिमान एवैषामने” देवता और उनकी महिमा दोनोंका योग देनेसे ($३३+३०३ \times ३००३=३३३९$) यही संख्या ३३३९, जो छेदके उपर्युक्त दो स्थलोंमें आई है, निकल आती हैं । (देखो बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ३, ब्राह्मण ५ कंडिका १ का १ ख, २)

(*) प्राधान्यस्तुमिदं देवता (निरुक्त) इसीके आधार पर वेदोंमें वेदमन्त्रोंके साथ लिखे हुए वेदताओंका तात्पर्य उ मन्त्रके विषयसे है अर्थात् जिस मन्त्रका देवता अग्नि अथवा आत्मा है तो उस मन्त्रमें अग्नि या आत्मा का ही वर्णन है, ऐसी समझना चाहिये ॥

† बृहदारण्यकोपनिषद् १३/९/६।

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० ने यास्कके मतकी पुष्टि करते हुए कहा है* कि जिन विषयोंका मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है वे ही देवता कहलाते हैं। उन्होंने “वे विषय क्या हैं?” इस पर विचार करते हुए उनके छः वैज्ञानिक विभाग किए हैं:—

(१) समय, (२) स्थान, (३) शक्ति, (४) आत्मा, (५) मनके इच्छित कार्य (Deliberate activities of Mind) (६) जीवनसम्बन्धी अनिच्छित कार्य (Vital Activities of Mind) : उनका कथन है कि मनुष्य संसारमें जिन विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वे सबके सब विषय इन्हीं छः वैज्ञानिक विभागोंके अन्तर्गत होते हैं। अब इन विभागोंका ३३ देवताओंसे मिलान करना चाहिए:—

वैज्ञानिक विभाग

वैदिक देवता

१	समय	१२ आदित्य (मास)
२	स्थान	८ वसु
३	शक्ति	१० रुद्र
४	आत्मा	११ वां रुद्र
५	मनके विचारपूर्वक कार्य	१ यक्ष (प्रजापति)
६	शरीर में हुए जीवनसम्बन्धी कार्य	१ विद्युत् (इन्द्र)

योग:—६ वैज्ञानिक विभाग

३३ देवता

अब इन देवताओंका सूक्ष्म रूपमें करें तो ११ वां रुद्र आत्मा (ईश्वर+जीव) और शेष ३२ देवता प्रकृति और उसके

* “The Terminology of the vedas” by Pt. Guru Datt M. A.

गुणोंके ही स्थानापन्न हैं। इस प्रकार ज्ञेय पदार्थोंको चाहे ईश्वर जीव, प्रकृति कहें अथवा ३३ देवता अथवा ६ वैज्ञानिक विभाग, ये सब एक ही आशयको प्रकट करेंगे उनमें अंतर कुछ भी नहीं है। इस प्रकार की हुई ज्ञेयमीमांसाके बाद ज्ञेय संबंधित ज्ञान पर विचार करना होगा।

ज्ञेय सम्बन्धी ज्ञान क्या है इसका विचार क्या ज्ञेय अज्ञेय है ?

प्रारम्भ करने ही पहला उत्तर यह मिलता है कि ये सबके सब ज्ञेय अज्ञेय है। स्पेन्सरका कथन है कि प्रम के परम सिद्धान्त (ईश्वरादि) अज्ञेय हैं, और इसी प्रकार दिशा, काल, प्रकृति, शक्ति ये विज्ञान के अंतिम स्वीकृत मंतव्य भी अज्ञेय हैं, * इसका तात्पर्य यह है कि संसारकी मुख्य वस्तुओं का ज्ञान हमको हो ही नहीं सकता, परन्तु यह विचार अप्रतिष्ठित हो रहा है। स्वयं योरुमें अज्ञेयवादकी चढ़ी हुई कमान उतर रही है। समुएल लेंगकी भविष्यद्वाणी भी संसारका भावी धर्म अज्ञेयवाद हागा, † पूरी होती नहीं दिवाई देती, इस लिए हम भी अज्ञेयवादकी सीमाका उलट्टन करके ज्ञेयवाद की दुनियां में प्रविष्ट होते हैं।



“The First Principles by. Spencer”

† “Problems of the Future” by S. laing P.90-99

दूसरा अध्याय

पहिला परिच्छेद

ज्ञेय वस्तुओंमें सबसे पहला स्थान ईश्वर सम्बन्धी विचार ईश्वरको दिया गया है, इसलिए हम भी अपनी विचार शृंखला का प्रारम्भ ईश्वरसे ही करते हैं । ईश्वरवादसे सम्बन्धित तीन मत हैं—

[१] आस्तिकवाद

[२] नास्तिकवाद

[३] अज्ञेयवाद

हम इन तीनों वादों पर एक दृष्टि डालना चाहते हैं, परन्तु विषयका सिलसिला ठीक वरनेके लिए दिचारक्रममें भेद करना पड़ेगा और वह भेद इस प्रकार होगा कि प्रथम नास्तिकवाद उसके बाद अज्ञेयवाद और फिर अंतमें आस्तिकवाद पर विचार किया जायगा ।

यद्यपि नास्तिकवाद पश्चिममें उसी प्रकार नास्तिकवा

प्रतिष्ठित है, जिस प्रकार आस्तिकवाद पूर्वमें, तो भी नास्तिकवादके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि उसका जन्म पश्चिममें हुआ । इस वादका भी जन्म भारतवर्ष में

ही हुआ था। चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैनमतोंमें उस समयसे, जबकि पश्चिमीय सभ्यताका जन्म भी नहीं हुआ था, नास्तिकताके विचार पाए जाते हैं, वे विचार इस रूपमें हैं कि जो-जो स्वाभाविक गुण हैं उस-उसमें द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बन जाते हैं जगत्का करना कोई नहीं* । अवश्यही भारतवर्ष धर्मप्रधान देश था इसलिये नास्तिकवाद यहां फलीभूत नहीं हो सका, परंतु पश्चिमी देशों और वहांकी सभ्यतामें उसको उच्चस्थान मिला। कुछ समय पूर्व योरूपमें, अपनेको नास्तिक कहना फ़ैशनका एक अङ्ग होगया था, अब इस फ़ैशनका उतना मान नहीं रहा जितना १९वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें था। जर्मनी के एक विद्वान निट्शेने तो यहां तक कहनेका साहस किया था कि “इस २०वीं शताब्दी में ईश्वर की मृत्यु होगई †” अस्तु हम प्रथम यहां उन समस्त तर्क और युक्तियोंको संक्षेपके साथ अंकित करते हैं जो नास्तिकवादके समर्थनमें पेश की जाती हैं, और फिर पीछेसे क्रमपूर्वक उनपर विचार करेंगे।

नास्तिकवादके समर्थनमें तर्क (१) जगत् नित्य है, इसी प्रकारसे बना चला आता है और इसी प्रकारसे बना चला जायगा, वस्तुएँ स्वभावतः बनती और बिगड़ती रहती हैं।

* अमिरुघ्णो जलं शांतं शीतस्पर्शस्तथाऽनिलः ।

केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वाभावात्तदव्यवस्थितिः ॥ चारवाक ॥

† Nietzsche's Eternal Recurrence Vol. xvi.

P. 235—256 तिलक-कृत गीतारहस्यसे उद्धृत पृ० २६६

(२) ईश्वरके गुण विभु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकर्ता, शिक्षक, नियन्ता, जगत्का रचयिता और संहारकर्ता इत्यादि प्रकृतिमें घटते हैं अतः ईश्वर कोई नहीं और ये सब गुण प्रकृति के ही हैं, और प्रकृति ही सब कुछ है, इसके सिवाय परिमित गुणवान् कोई शक्ति अनन्त हो ही नहीं सकती * ।

(३) जगत्में कोई नियम नहीं दीखता, सब कुछ आकस्मिक घटना प्रतीत होता है, † इसलिये किसी नियन्ता की आवश्यकता नहीं ।

(४) ईश्वरकी सत्ता मानना इसलिये भी हानिकारक है कि उससे मनुष्योंकी स्वतंत्रताका नाश होता है और व्यर्थ परतंत्र होना पड़ता है ।

(५) ईश्वरको इन्द्रियातीत बताया जाता है, इसलिये उसका निश्चयात्मक ज्ञान कभी नहीं होसकता ।

(६) अध्यात्म-ग्रन्थोंमें ईश्वरको अज्ञेय कहा गया है अतः उसके जाननेका यत्न करना व्यर्थ है ।

(७) ईश्वर को सगुण भी बतलाया जाता है और अनेक

* विस्तार के लिये देखो लोकायतदर्शन ।

† “Since impartial study of the evolution of the world teaches us that there is no definite aim and no special purpose to be traced in it, there seems to be no alternative but to leave every thing to “ blind chance ” (Riddle of the Universe.)

गुण वर्णन किए जाते हैं। परन्तु प्रत्येक सगुण वस्तु नाशवान् होती है, इसलिए कोई अविनश्वर ईश्वर नहीं हो सकता।

मुख्य-मुख्य आक्षेप जो ईश्वरको सनाके सम्बन्धमें हो सकते हैं यह हैं, अब इनपर एक दृष्टि डालनी चाहिए:—

नास्तिकता के समर्थक [१] जगत् [प्राकृतिक] मिश्रित तर्क पर विचार वस्तुओंके समुदायका नाम है, सूक्ष्म-सूक्ष्म वस्तु आकाश [ईश्वर], वायु और अग्नि भी कारणरूप प्रकृति के कतिपय परिणामों [परिवर्तनों] के बाद प्रचलित रूप में आए हैं, फिर स्थूल-सं-स्थूल वस्तुओं के मिश्रित और अनेक परिणामोंका फल होनेमें तो कोई ननु नञ् कर ही नहीं सकता; जो वस्तुएँ परिणामोंका फल अथवा मिश्रित हैं वे नित्य नहीं हो सकतीं। उनके प्रचलित अवस्थामे आनेका प्रारम्भ अवश्य एक समयमें हुआ है चाहे वह समय कितना ही लम्बा क्यों न हो, जब उनका प्रारम्भ हुआ है तो उनका अन्त भी होना चाहिये, कोई सादी वस्तु अनन्त नहीं हो सकती, अनादि वस्तु ही अनन्त हो सकती है, अतः स्पष्ट है कि जगत्-नित्य नहीं हो सकता अनित्य होने पर वह रचा हुआ माना जायगा। रचना के लिए रचयिता का होना अनिवार्य है। एक ओर यदि सर लाइजक न्यूटन (Sir Isaac Newton) से लेकर लार्ड केल्विन (Lord Kelvin) तक प्रायः सभी उच्च कांटिके पश्चिमीय वैज्ञानिक स्वीकार करते आए हैं कि यह जगत्-रचयिता की बुद्धिपूर्वक रचना का परिणाम है* तो दूसरी ओर दुनिया की सबसे प्राचीन

*Science and Religion by Seven men of Science P. 32.

ऋग्वेद भी यही शिक्षा देता है†

[२] नास्तिकताका आक्षेप दो भागोंमें विभक्त है:—

[१] प्रकृतिमें ईश्वरके समस्त गुण पाए जाते हैं [२] परिमित गुण रखनेसे ईश्वर अनन्त नहीं हो सकता ।

दूसरा परिच्छेद

आक्षेप के [आक्षेप] विभुत्वसे ईश्वरकी व्यापकता पहले भाग पर विचार बनाई जाती है, व्यापकता विस्तार ईश्वरका विभुत्व गुण को कहते हैं, लम्बाई-चौड़ाई विस्तारके अङ्ग हैं । विस्तार [देश] जड़की विभृति है, देश सीमा रहित है । अतएव देश ही विभु [व्यापक सर्वान्तर्यामी] है [लोकायतदर्शन २. १. १०]

[समाधान] वस्तुका गुणगान, वस्तुके व्यवच्छेदके लिए किया जाता है, व्यवच्छेद एकसे अधिक वस्तुकी अपेक्षा रखता है । अतः सुगमतासे यह परिणाम निकल आता है कि गुण सापेक्षक होते हैं, अतः ईश्वरके गुण भी सापेक्षक हैं । सब कहते हैं कि ईश्वर विभु है तो इसका तात्पर्य यह है कि हम उसको परिच्छिन्न [एकदेशी] वस्तुओंसे व्यवच्छेद [पृथक्] करते हैं ।

† सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयन् । दिवश्च पृथ्वि-
ज्जातरिक्षमथोम्बः ॥ ऋग्वेद १०।१९०।३ (ईश्वरने सूर्य और
चन्द्र, पृथ्वी, द्यौ और अन्तरिक्षादि, पहलेकी तरह रचे हैं ।)

गुण दो प्रकारके होते हैं, एक सत्ताद्योतक दूसरे योग्यता-सूचक, सत्ताद्योतक गुण एक रस रहते हैं, परन्तु योग्यता सूचक गुण-गुणी में उस गुणकी निरन्तर योग्यता रहने की सूचना देते हुए भी तिरोभूत और प्रादुर्भूत होते रहते हैं। एक उदाहरणसे इसका स्पष्टीकरण किया जाता है, ईश्वर का विभुत्व गुण सत्ताद्योतक है, इस गुणसे यह प्रकट होता है कि सत्ता ही सर्वदेशा है, उसमें यह सर्वदेशिता, तिरोभूत और प्रादुर्भूत नहीं होती, किन्तु निरन्तर एक जैसी बना रहती है, परन्तु ईश्वर का न्यायगुण योग्यता-सूचक है, इस गुणके रखने और कार्यमें परिणित करनेको योग्यता ईश्वरमें अवश्य और निरन्तर रहती है, परन्तु गुण प्रकट उसी समय होता है, जब न्याय की अपेक्षा होती है, अन्यथा अप्रकट रहता है। देश अथवा जड़ वस्तुका विस्तार गुण संकोचकी अपेक्षामें कहा जाता है, वह उस वस्तुमें निरन्तर नहीं रह सकता। गर्मों मिलनेसे कोई वस्तु विस्तृत हो जाती है, परन्तु शीत मिलनेसे वह विस्तार जाता रहता है। कहा जा सकता है कि संकोच होनेपर भी कुछ-न-कुछ विस्तार तो रहता ही है, अतः उसमें विस्तार तो निरन्तर-ही रहा परन्तु जड़ वस्तु परिणामशील होती है, परिणाम होनेपर वस्तुका नाम और रूप विशेष हो जाता है, और उस अवस्थामें वस्तु अवस्तु [भिन्न वस्तु] हो जाती है, फिर विस्तार और संकोच गुण किस प्रकार रह सकता है ? उदाहरणके लिये पृथ्वीको लो, इसमें इस समय लम्बाई-चौड़ाई, संकोच और विस्तार सब कुछ है, परन्तु अन्तर अथवा पूर्णप्रलय होनेपर जब पृथ्वी इस रूपमें बाकी नहीं रहती, तो उसके गुण लम्बाई-चौड़ाई आदि भी

शेष नहीं रह सकते । अवश्य वे अणु अथवा परमाणु शेष रहेंगे, जिनसे पृथ्वी बनी थी; परन्तु उनका नाम न पृथ्वी होगा और न पृथ्वी के सदृश लम्बाई-चौड़ाई उनमें होगी । यही अवस्था समस्त जड़ वस्तुओं की है परन्तु ईश्वर न जड़ है, न साकार, किंतु चेतन, अनादि और अप्राकृतिक है, अतः उसका विभुत्व एक रस बना रहता है, क्योंकि वह उसकी सत्ता है, अतः ईश्वर का विभुत्व, जड़ वस्तुओंमें न है और न हो सकता है ।

ईश्वर का सर्वज्ञता गुण (आश्वेन) प्रकृतिके सत्त्वगुण को जीव कहते हैं, प्रकृतिके परिणाम महत्को बुद्धि महत्के परिणाम अहंकारको मन, और अहंकार के परिणाम पंचतन्मात्राओंको इन्द्रिय कहते हैं; और ये सब प्राकृतिक हैं । यदि जड़को चेतनके विरुद्ध माना जावे तो चेतनको जड़का ज्ञान नहीं हो सकता, अतएव सर्वज्ञता भी प्रकृतिका गुण है । ज्ञान ज्ञेयानुकूल होने के कारण वर्तमान कालसे परिमित है, अतएव सर्वज्ञतामें भविष्य-ज्ञानका समावेश नहीं हो सकता । इसके सिवाय ज्ञेयके परिवर्तनसे ज्ञानमें परिवर्तन होना अपरिहार्य है, अतएव सर्वज्ञका ज्ञान सदैव परिवर्तित होता रहता है ।
[लोकायतदर्शन २-१-७-१६]

[समाधान] सत्त्वगुण का जीव कहना कल्पनामात्र है । बुद्धि, मन आदि अवश्य प्राकृतिक है, परन्तु चेतना और ज्ञानसे शून्य हैं, जब वे चेतन और ज्ञान की जीवकी आभा से अभिन होते हैं तब जैसे गर्मीके प्रवेशसे लोहेका गोला लाल और गर्म हो जाता है, इनमें भी बोधगुण होनेकी प्रतीति होने लगती है, यह बोधगुण इनमें केवल जीवके निमित्तसे आता और निमित्तके

अभावसे नष्ट हो जाता है; अतः प्रकृति अथवा उसके कार्य, बुद्धि, मन आदि जड़ हैं, चेतना-शून्य हैं और सर्वज्ञता की तो कथाही क्या, अज्ञतासे भी रहित हैं। यह बात भी अयुक्त है कि “ज्ञान ज्ञेयानुकूल होनेके कारण वर्तमानकालसे परिमित है”—एक तक्षकने १०० फीट लम्बे शहतीर को २० फीट गन्दा करके साफ कर लिया है, २० फीटकी सफाई आज कर रहा है, बाकी ६० फीटकी सफाई आगामी तीन दिनोंमें करेगा, तो इस शहतीरकी सफाई का ज्ञान, ज्ञेयानुकूल होने से भूतका ज्ञान भी है, वर्तमान और भविष्यतका भी। यह वर्तमानकालसे परिमित कहाँ हुआ ? इसके सिवाय बालके विभाग [भूतादि] तो हमारी अपेक्षामें हैं, क्योंकि हम कालसे अवच्छिन्न हैं; परन्तु काल ईश्वरके लिए अवच्छेदक नहीं “सण्य पूर्वभामपि गुरुः कालेनानवच्छेदान् (योगसूत्र २६ समाधिरप्य) अतः सर्वज्ञ (ईश्वर) का ज्ञान तीनों कालोंसे संबंधित है, देव और काल उसके ज्ञानके बाधक नहीं और न हो सकते हैं। तीसरी बात यह कि ज्ञेयके परिवर्तनसे ज्ञान परिवर्तित होता रहेगा। इससे भी सर्वज्ञकी सर्वज्ञताको कुछ भी बाधा नहीं पहुँच सकती, जैसा भी ज्ञेय जब होगा तब तदनुकूल ही ज्ञान होना यथार्थ ज्ञान कहला सकता है।

ईश्वर का ज्ञानदातृत्वगुण (आक्षेप) जो प्रत्येक देशमें, प्रत्येक समयमें प्रत्येक प्राणीको उपदेश दे, वही परम पुरोहित (शिक्षक) है। ये गुण संसार ही में घटते हैं अतएव संसार ही परमाचार्य्य है।

(समाधान) संसार जड़ होनेसे सदैव ज्ञेयकी सीमासे बद्ध रहेगा, शिक्षा देना अथवा उस (संसार) से शिक्षा लेना सदैव

चेतन ही के आधीन रहेगा। यदि जड़ वस्तु शिक्षा देनेका कार्य कर सके तो लाखों रुपये जो प्रतिवर्ष छोटे-बड़े अध्यापक और प्रोफेसरोंको वेतन रूपमें देने पड़ते हैं, बच जावें परन्तु दुख यही है कि जड़ संसार शिक्षा देनेका कार्य कर नहीं सकता। ईश्वर के ज्ञानदातृत्वगुणका तात्पर्य केवल इतना ही है कि वह आदि शिक्षक है, अर्थात् जगत्के प्रारम्भमें ज्ञान दे देता है, उसके बाद उस शिक्षाका विस्तार मनुष्यों के अधीन हो जाता है।

(आक्षेप) ईश्वर को न्यायी (फलदाता)
ईश्वर का कर्म कहनेका अभिप्राय यह है कि प्राणियोंके
फलदातृत्वगुण शुभाशुभ कर्मोंका सुख-दुःखरूप फल देता है।

अनुकूल अथवा प्रतिकूल स्थितियोंके अनुभवोंको सुख-दुःख कहते हैं और स्थिति-परिवर्तन प्राणियोंके प्रयत्नोंका फल है, अतः प्रकृति ही साक्षान् न्यायकर्त्री है। (लो० २-१-४५)

(समाधान)—प्रकृति के न्यायकर्त्री होनेका परिणाम उसने पहले प्रश्नमें दिए हुए विवरणसे नहीं निकल सकता दर्शनकारने अनुचित परिणाम निकाला है। वास्तवमें प्राणियोंके प्रयत्नोंका ही फल स्थितिपरिवर्तन अथवा दुःख-सुख होते हैं और ये ही ईश्वरकी न्यायव्यवस्थासे उसे प्राप्त होते हैं। ईश्वर अपनी ओरसे (फलरूप) दुःख-सुख किसी को नहीं देता।

नाट—उपर्युक्त दर्शनके भाष्यकारने इस संबंधमें कुछ प्रश्न और उत्तर किए हैं, उनको हम उत्तरोंके साथ नीचे लिखते हैं:—

प्रश्न—शरीररूपी बंधनमें आनेसे पूर्व हम क्या कुकर्म करने हैं जिससे बंधनमें आते हैं ?

उत्तर—मनुष्यका योनियोंमें आना-जाना प्रवाहमें अनादि है अतएव योनियोंमें आनेसे पूर्वकी खांज व्यर्थ है ।

प्रश्न—सर्वत्र गुरुकी शिक्षा मिलनेके बाद जीव क्यों कुकर्म करता है ?

उत्तर—इसलिये कि जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र है । सन्मग और कुसंगके प्रभावसे मनुष्यकी इच्छाएँ सदैव परिवर्तित होती रहती हैं और उन्हीं इच्छाओंके अनुकूल वह कर्म करता रहता है ।

प्रश्न—क्या ईश्वरके (फल देनेके) नियमोंका प्रत्येक प्राणीको ज्ञान है ?

उत्तर—कम-से-कम इतना ज्ञान तो प्रत्येक प्राणी रखता ही है कि अच्छे कर्मोंका अच्छा और बुरे कर्मोंका बुरा फल मिलता है ।

प्रश्न—सर्वज्ञदत्त दंडसे पीड़ित प्राणियोंको सहायता क्यों दी जाती है ?

उत्तर—यह सहायता देना पृथक् कर्म है । इसका उस कर्म या फलसे कुछ सम्बन्ध नहीं है । जो पीड़ित प्राणीकी पीड़ा के हेतु हुए थे । इस प्रकार पीड़ित प्राणियोंको सहायता देना मनुष्यत्व और ईश्वरीय आज्ञाओंके अनुकूल है, इसलिए देनी चाहिए ।

प्रश्न—एक प्राणी दूसरे प्राणीको हनन करता है, हन्ता फल पावेगा, परन्तु हत प्राणी व्यर्थ क्यों मारा गया ?

उत्तर—हस्ताका कुकर्म तो यही था कि उसने व्यर्थ एक दूसरे प्राणिका वध किया इसीलिये तो वह दंड पाता है।

“ईश्वरका सर्वशक्तिमान् होना” (आक्षेप) शक्ति जड़की विभूति है। जलानेकी शक्ति, बुझानेकी शक्ति, ये सब जड़ क्रियाएँ हैं, (लो० २—१—४६) ये सब शक्तियां परिमित हैं। क्रिया और समयके संबंध-रूपी मान-दण्डसे प्रत्येक शक्ति नापी जाती है। अतएव व्यापक ईश्वरकी शक्तियां परिमित हैं। (लो० २—१—५०) क्रियाओंके होनेसे शक्तियोंकी परिवृत्ति (उलट कर) निरंतर होती रहती है, अतः शक्तिमान भी एकरस नहीं हो सकता। (भाष्यकार) (लो० २—१—५१)

(समाधान) शक्ति अवश्य जड़ है और जड़ (वस्तु) की भी वह विभूति (शक्ति) हो सकती है, परंतु इसका परिणाम उचित रीतसे यह नहीं निकाला जा सकता कि वह चेतन शक्तिमान्का गुण नहीं हो सकती, अथवा जिसका वे गुण हों उसे जड़ ही समझा जावे। इसके विरुद्ध नियम तो यह है कि जड़ शक्तियां सदैव चेतनके आधीन रहती हैं। और, रही यह बात कि शक्तियां परिमित होती हैं, क्योंकि क्रिया और समयके पैमानेसे नापी जाती हैं। किसी अंशमें तो यह कल्पना ठीक मानी जा सकती है, परन्तु सर्वांश में नहीं। क्योंकि क्रियाएँ (जलना, बुझना आदि) सदैव शक्तिके आधीन रहती हैं, अथवा क्रियाएँ [गतिशक्ति-Energy] ही शक्ति हैं, तो फिर क्रियाओंकी अपेक्षासे शक्तिको किसप्रकार परिमित कह सकते हैं। यही बात समयसे भी संबंधित है। समयकी गणना (नाप)

जिन मूर्त्यादि नक्षत्रोंसे की जाती हैं वे भी तो (ईश्वरकी सृष्टि कर्तृत्व) शक्तिसे ही उत्पन्न होते हैं, तो फिर शक्ति समयकी नापसे सीमित कहाँ हुड़े। क्रियाओंके होनेसे शक्तिकी परिवृत्ति नहीं होती किंतु शक्तिसे ही क्रियाएँ उत्पन्न होकर परिवृत्तिमें रहती हैं।

(आक्षेप) संसारमें संसरणकी दशा ईश्वरका नियन्ता होना

उद्भव और लयकी ओर होता है। संसरणके वेग तथा मार्गका आधार शक्ति है, जिसका द्रव्य प्रकृति है; अतः संसार नियमन प्रकृतिपर अवलंबित है (लो० २५—१, २६)

(समाधान) शक्तिका द्रव्य किसी अंशमें प्रकृति भी हो सकता है, परन्तु जड़ होनेसे सर्वांशमें नहीं। वास्तविक द्रव्य-शक्तिका शक्तिमान चेतन ईश्वर ही है और इमालिये वही नियन्ता भी है।

(आक्षेप) देश तथा ऋतुओंके अनुसार ईश्वरका करणामय (दयालु) होना प्रकाश, वायु, ताप, जल, फलादि देने रूप दया करनेवाला प्रकृति ही है।

(लो० २—१, ६०) ईश्वर क्षमापुञ्ज होनेसे किसप्रकार (न्यायविधानानुसार दंड) दे सकता है ? (भाष्यकार)।

(समाधान) प्रकृति जड़ है, उसका प्रकाश (अग्नि) वायु, जलादिरूपमें परिवर्तित करनेवाला जगत्का रक्षयिता ईश्वर ही है। कोई जड़ वस्तु बिना (चेतन-द्वारा) गति पहुँचाएँ, स्वयंमेव कुछ नहीं कर सकती।

भाष्यकारने “दया और न्याय दो विरोधी गुण ईश्वरमें

किस प्रकार रह सकते हैं ?" यह मनोरंजक प्रश्न उठाया है। हर्बर्ट स्पेंसरने भी अपने अज्ञेयवादकी शिक्षा देने हुये कतिपय अन्य बातोंके साथ उपर्युक्त प्रश्नको भी समाधान रहित ठहराकर, ईश्वरको अज्ञेय सिद्ध करनेका यत्न किया है। परन्तु बड़ी भूल जो भाष्यकार अथवा स्पेंसरने की, अथवा अन्य भी (इस प्रश्नके उठानेवाले) किया करते हैं। यह है कि वे दया और न्यायकी सीमा नहीं समझते। दया और न्याय परस्पर विरोधी गुण नहीं, किन्तु एक दूसरेमें सर्वथा भिन्न हैं। दया, दयालुका वह गुण है जो बिना कर्मकी अपेक्षाके दयालु अपनी आरम्भ करता है, परन्तु न्यायके लिए कर्म अपेक्षित है। बिना कर्मके न्यायकारी फलाफल नहीं दे सकता, परन्तु दयालु बिना कर्मके दया कर सकता है। इसप्रकार इनमें कोई विरोध नहीं। अपराधोंका क्षमा करना दया नहीं किन्तु अन्याय है। उसको दया समझनेमें ही लोग भ्रान्त हो जाते हैं।

(आक्षेप) ये परस्पर विरुद्ध शक्तियां
ईश्वर सृष्टिका रक्षयिता
और संहारकर्ता हैं एक ईश्वरमें कैसे रह सकती हैं ?

(भाष्यकार) (समाधान) परस्पर विरुद्ध गुण एक व्यक्तिमें नहीं रह सकते, यह कोई नियम नहीं। एक कुम्हार एक सुराही बनाता है, परन्तु ठीक न बनने पर फिर बिगाड़कर बनाना प्रारम्भ करता है। पाठशालामें हम विद्यार्थियोंको मिट्टीके ग्विलौने आदि बनाते और बिगाड़ते नित्यप्रति देखते हैं। जब मनुष्योंमें ये परस्पर विरुद्ध गुण रह सकते हैं तब ईश्वरमें क्यों नहीं रह सकते ?

तीसरा परिच्छेद

प्रश्नका दूसरा भाग परिमित गुण रखनेमें ईश्वर अनन्त नहीं हो सकता । (लो० २—१—३)

गुण परिमित क्यों है ? दर्शनकारका कहना है कि गुण-गणनामें परिमित है अतः परिच्छिन्न अंकोंका योग अनन्त नहीं हो सकता । इस सिद्धान्तमें कि "संमित अंकोंका योग असंमित नहीं होता" किसीका आशय नहीं हो सकता । परन्तु ईश्वरके गुण परिच्छिन्न अंकवत् है । यहो कल्पना विवादास्पद है । ईश्वरकी सत्ता माननेवाले इसे स्वीकार नहीं कर सकते । उदाहरणके लिये ईश्वरके "विभुत्व" को ही लीजिये ! ईश्वरके विभुत्वका तात्पर्य यह है कि वह समस्त ब्रह्माण्डमें परिपूर्ण है, अथवा आकाशवत् ब्रह्माण्डमें परिपूर्णत्वके साथही ब्रह्माण्डका आधार भा है । अब "विभुत्व" गुणको परिच्छिन्न सिद्ध करनेके लिए ब्रह्माण्डकी सीमा खोजना पड़ेगा । परन्तु संसारके उपातिपी ब्रह्माण्डका सीमा पानेमें असमर्थ है । हमारे मर्याद सृष्टि संसारमें असंख्य सूर्य है । एक उपातिविद्का कथन है कि अपने इस लोक (सूर्यमण्डल Solar System) में कमसेकम दो हजार छः सौ शत ७४ पञ्च और ८० नौल मीलके भीतर कोई दूसरा लोक सूर्यमण्डल नहीं है * और लोक असंख्य है, तो किस

* (१) देखो "चित्रमयजगत्" मासिक पत्र पृ०, मास जनवरी १९१८ ई० ।

प्रकार ब्रह्माण्डकी सीमा खाजा जा सकती है । और अब ब्रह्माण्ड ही मानवों गणनाकी सीमासे बाहर है, तो फिर विभुत्व गुणको परिलिख किसप्रकार टहराया जा सकता है । अतएव न गुण-गणनामें परिमित है, और न गुणी ईश्वर ।

(३) तीसरा आश्लेष यह है कि “जगतमें कोई नियम अथवा उद्देश्य नहीं दोखता, सब कुछ आकस्मिक घटना प्रतीत होती है” । प्रोफ़ेसर हेकलेन इस आश्लेषका समर्थन बहुत बल देकर किया है। परन्तु स्वयं उनके बाद (२०वीं शताब्दी) के वैज्ञानिक इसका विरोध करते हैं। डाक्टर फ्लेमिंग (Dr. J. A. Fleming) ने, जो इंग्लैंडके एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक है, लिखा है कि जगतमें उद्देश्य, नियम, स्थिरता, निर्देशक शक्तकी सत्ता, बांश्गम्यता आदि सब गुण पाए जाते हैं। उन्होंने नियम पाए जानेका एक उदाहरण दिया है कि सूर्यमंडलमें एक उत्कृष्ट नियम पाया जाता है—अर्थात् प्रत्येक ग्रहका अन्तर सूर्यसे एक दूसरेकी अपेक्षा बराबर लगभग द्विगुणके हाता चला गया है। यदि पृथ्वीका सूर्यसे अन्तर १०० मील कल्पना किया जावे तो सूर्यसे सम्बन्धित मुख्य ग्रहोंकी सूर्यसे दूरी इसप्रकार होगी:—

(१) बुध ३६ (२) शुक्र ७२ (३) पृथ्वी १०० (४) मंगल १५० (५) बृहस्पति ५२० (६) शनिश्चर ६५० मील (७) अरुण (यूरेनस) १६२० (८) वरुण (नेपचून) ३००० । ये अंक लगभग द्विगुण होते हैं, यह आकस्मिक घटना नहीं है किन्तु इसमें नियंताका नियम, जो सृष्टि रचनामें पाया जाता है, प्रकाशित

हो रहा है। * इसप्रकार जगत्का उद्देश्य प्राणिपोंका कल्याण करना है। उनको अन्धकारमें निकालकर प्रकाशमें लाना है, यही काम बराबर होता हुआ देवा भी जाता है।

(४) चौथा आशय यह है कि ईश्वरके माननेसे मनुष्यको परतंत्र होकर दुःखित होना पड़ता है, परन्तु बात ऐसी नहीं प्रत्युत इसके सर्वथा विरुद्ध है। मुक्ति जो आस्तिकता अन्तिम फल है वह परम स्वतंत्रता ही है। जहां स्वतंत्रताकी पराकाष्ठा होजावे और उससे अधिक स्वतंत्रताकी संभावना न रहे। उसीको मुक्ति कहते हैं। फिर स्वतंत्रता कैसी? आस्तिकोंका कहना है कि श्रद्धाके साथ ईश्वरकी भक्ति करनेसे ही प्राणिपों के हृदय-प्रेम और आह्लादसे पूरित होते हैं। उपनिषदों और योगदर्शनकी रचनाही इसी प्रेमको जागृत करनेके वास्ते हुई है। योगके अन्तिम अंग समाधिका उद्देश्य ही यह है कि प्रेमा प्रेमपात्रके प्रेमसे इसप्रकार लवलान हो कि अपनी सुधवुध विसारके प्रेमपात्रका तद्रूप हो जाय। आस्तिकोंके हृदय ही प्राणिपोंके प्रेमसे परिपूर्ण होते हैं और जहां नास्तिकताका प्रभाव पड़ता है, वहां सदैव निर्बलोंपर अध्याचार होते हैं। भारतवर्ष धर्मप्रधान और उसके विरुद्ध योरप नास्तिकता प्रधान देश है, दोनोंमें जो कुछ अन्तर है, देखा जा सकता है। भारतवासी तुच्छ-मे-तुच्छ चींटी, मछली आदिकी भी परवाह करते हैं, और उन्हें भोजन देने हुए दिखलाई देने हैं। परन्तु योरपमें

*Science and Religion by seven Men of Science P. 31—56.

पशु और पक्षियोंकी तो कथा ही क्या है, निर्बल मनुष्योंतककी परवाह नहीं की जाती । उनपर धनवान् लोग तरह-तरहके अत्याचार करते हैं। इसीलिए निर्बलोंपर अत्याचार करना वहांकी सभ्यताका एक अंग बना हुआ है । वहां एक कहावत प्रसिद्ध है कि “निर्बलोंको रसातलमें नला जाना चाहिए” (The Weakest must go down).

(५) पांचवां आक्षेप यह है कि “ईश्वरको इन्द्रियातीत बनलाया जाता है, इसलिए उसका निश्चयात्मक ज्ञान कभी नहीं हो सकता” । यह आक्षेप भी भ्रान्तिपूर्ण है । नियम यह है कि संसारका प्रत्येक द्रव्य (प्राकृतिक और अप्राकृतिक) अप्रत्यक्ष है । प्रत्यक्ष केवल गुणोंका होता है । उदाहरणके लिए एक पुस्तक हाथमें लेकर देखें तो पता चलेगा कि हम पुस्तक रंग-रूप और लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि देखते हैं, इसके सिवा और कुछ नहीं देखते । और इस प्रकार जो देखते हैं वह पुस्तक नहीं किंतु पुस्तकके गुण ही हैं; और उन्हींके देखनेमें पुस्तक प्रत्यक्ष हुआ समझा जाता है । इसी प्रकार ईश्वरके गुण सृष्टिकर्तृत्वादिका देखकर उसे भी प्रत्यक्ष हुआ समझना चाहिए । आकाश (ईश्वर), वायु, अणु, परमाणु और विद्युत्कणादि सभी इन्द्रियातीत हैं, परन्तु इनका हमें निश्चयात्मक ज्ञान हो सकता है और उसके इस ज्ञानप्राप्तिके साधन इन्द्रिय नहीं अपितु जीवात्मा हैं । अध्यात्मशास्त्रमें वर्णित विधियों (योगाभ्यासादि) आत्मा उसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया करता है ।

(६) छठा आक्षेप यह है कि “अध्यात्मग्रन्थोंमें उसे अज्ञेय कहा गया है, इसलिये उसके जाननेका यत्न वृथा है”

इसप्रकारके आश्रयोंके आधार उपनिषद्के कुछेक वाक्य समझे जाने हैं। यथा—

‘न विद्वो न विजानीमः ।’

‘नद्विदितादथाअविदितादधि’ (केनोपनिषद्)

अथवा बृहदारण्यकोपनिषद्में आए हुए “नेति-नेति” शब्द । परन्तु इन वाक्योंका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि ईश्वर अज्ञेय है । यह बात पूरा प्रकरण देखनेमें स्पष्ट होजाता है । केनोपनिषद्का पूरा वाक्य इस प्रकार हैः—

“न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो ।”

“न विद्वो न विजानीमः...तद्विदितादथा अविदितादधि”

(अर्थ)—“न वहां (ब्रह्मलोक) आंखें पहुंचती हैं, न वाणी और न मन, इसलिये (इन इन्द्रियों-द्वारा) न ही उसको जानते हैं और न जान सकते हैं । वह (इन्द्रियों-द्वारा जो कुछ जाना जा चुका है उस) जाने हुएमें परे हैं, और न जाने हुए (जो नहीं जाना गया है, परन्तु इन्द्रिय-द्वारा भविष्यत्में जाना जा सकता है) उसमें भी पृथक् है” । पूरा वाक्य पढ़ लेनेसे स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वरको न जानना अथवा न जान सकना जो उपर्युक्त वाक्यमें कहा गया है वह इन्द्रियोंकी अपेक्षासे है । इस उपनिषद्का विषयभी यही प्रकट करता है कि ईश्वर इन्द्रियोंका विषय नहीं और इसलिये इन्द्रियोंसे जाना नहीं जा सकता । इसीप्रकार “नेति-नेति” शब्दोंको प्रकरणके साथ देखें तो प्रकट होगा कि बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय २ ब्राह्मण

३) में वर्णित है कि जगत्के दो रूप हैं (१) मूर्त, (२) अमूर्त। इनमेंसे मूर्त अग्नि, जल, और पृथ्वीका कहा गया है। और (२) अमूर्त शब्द आकाश और वायुकेलिये प्रयुक्त हुआ है। इसके बाद ब्रह्मको "नेति-नेति" कहा गया है। "नेति-नेति" का शब्दार्थ है "न ऐसा न ऐसा" जिसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म न "मूर्त" (अग्नि, जल और पृथ्वी) है, और न अमूर्त (आकाश वायु) है, अर्थात् प्राकृतिक नहीं, किन्तु अप्राकृतिक है। इन वाक्योंमें अज्ञेयवादकी गंध भी नहीं।

(७) सातवां आक्षेप यह है कि "ईश्वरको सगुण भी बतलाया जाता है, और सगुण वस्तु नाशवान् होती है। अतः कोई अविनश्वर नहीं हो सकता" यह कोई नियम नहीं है, ईश्वर विधायक (न्यायकारी, दयालु आदि) गुणोंके रखनेसे सद्गुण और निषेधक (अजर, अमरादि) गुणोंके रखनेसे निगुण कहलाता है। सत्त्व, राजस् और तामसगुण रखनेवाला प्रकृति ही जब नाशवान् नहीं, तो ईश्वर सगुण होनेसे नाशवान् क्योंकर हो सकता है ?

चौथा परिच्छेद

अज्ञेयवाद १९वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें योरपमें अपनेको अज्ञेयवादी कहना फ़ैशनमें सम्मिलित था, वहांवे निवासियोंको नास्तिक कहलानेमें, संकोच होने लगा था इसलिये उसके स्थानमें अज्ञेयवादकी रचना हुई। इंग्लेण्डमें

हर्वर्ट स्पेंसर और जर्मनीमें ड्यू-बोइस रेमोंड (Du-Bois Reymond) इस मतके आचार्य्य समझे जाते थे, स्पेंसरने इतना कहनेपर ही संतोष किया था कि "हम ईश्वरको नहीं जानते" परन्तु रेमोंडने एक पग और आगे बढ़ाया और "हम (ईश्वरको) नहीं जानते" (Ignoramus - we do not know) इससे बढ़कर उसने कहा कि "हम उसको मानेंगे भी नहीं (Ignorabimus = we shall never know) कुछ लेखकोंने अज्ञेयवादका प्रारम्भ भारतवर्षमें ही होना ठहराया था, और सांख्यदर्शनके रचयिता* कपिल और उपनिषत्कारोंको इसका जन्मदाता बतलाया; परन्तु यह सर्वथा निर्मूल है, जैसा कि पहले पृष्ठोंमें कहा जा चुका है। अज्ञेयवादका आयु बहुत थोड़ी निकली और यह, वाद अब योगमें भी प्रायः ढीला पड़ गया है। इन पश्चिमीय अज्ञेयवादी वैज्ञानिकोंका स्थान या तो जड़-वादियोंने अथवा आस्तिक वैज्ञानिकोंने ले लिया। रेमोंडके स्थानापन्न हैकलने जडाहैतवाद (Materialistic Monism) की नींव रखी। इधर इङ्ग्लैंडमें स्पेंसर और टिडल आदिका स्थान क्रूक्स, लाज और वालेस आदि अध्यात्मवादी वैज्ञानिकोंने लिया। यहाँ पर टिडल और क्रूक्स दो वैज्ञानिकोंके मत उद्धृत करते हैं, उन्हींमें यह बात अच्छी तरह प्रकट होजायगी कि अब योगपका विचार-प्रवाह किधर है। सर विलियम क्रूक्स (Sir-William Crooks) ने १८६७ ई० में ब्रिटिश पेसोसिणेशन के सभापतिकी स्थितिमें अपने भाषणमें कहा:—२३ वर्ष

* देखो पुस्तकमें कपिलका मत।

हुए कि इसी पदकी स्थितिसे एक प्रमुख विज्ञानवेत्ता (प्रोफ़ेसर टिंडल) ने एक घोषणा की थी, जिसमें मानसिक आवश्यकतासे विवश हो उन्होंने परीक्षात्मक साक्ष्यकी सीमाका उल्लङ्घन करते हुए प्रकट किया था। “प्रकृतिमें ऐसी अव्यक्त शक्तियां हैं, जिनसे हम अब तक अनभिज्ञ थे, जो लौकिक जीवनमें उत्पन्न करनेकी योग्यता रखती हैं। परन्तु मैं इस कथनको उलट देना उचित समझता हूँ और मैं जीवनमें प्रकृतिकी समस्त शक्तियोंकी योग्यता पाता हूँ, कृक्सके असली शब्द इस प्रकार हैं:—

“An eminent predecessor in this chair declared that by an intellectual necessity he crossed the boundary of experimental evidence, and discovered in that matter which in our ignorance of its latent power and notwithstanding our professed reverence for its Creator, has hitherto been covered with opprobrium, the potency and promise of all terrestrial life. — should prefer to reverse the apothegm and to say that in life I see the promise and potency of all forms of matter.”

पांचवां परिच्छेद

आस्ति-वाद
दागशिकोह और शौचनहारके प्रियतम ग्रन्थ
उपनिषदोंने ईश्वरको किसप्रकार मानना

चाहिए इसपर बहुत गहरा विचार किया गया है। उन ही शिक्षा यह है कि "न तो हम यह मानते हैं कि ईश्वरको अच्छी तरह (पूर्णतया) जानते हैं और न यह कि जानते ही नहीं । ईश्वर का जानना यह है कि उसको जानते भी है और नहीं भा जानते" । इसका तात्पर्य यह है कि हम ईश्वरको उस सीमा तक जानते और जान सकते हैं कि जहांतकका ज्ञान होने से हम सांसारिक दुःखोंमें छूटकर आनन्द (मुक्तिके सुख) को प्राप्त कर सकें परन्तु इससे बढ़कर और हम ईश्वरके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते इसी शिक्षाको लक्ष्यमें रखकर उपनिषदोंमें कहा गया है कि "ईश्वर एक है, समस्त विश्व (जीव + प्रकृति) को वशमें रखनेवाला है। सम्पूर्ण प्राणा और अप्राणियोंके भीतर ओत-प्रोत हो रहा है और एक प्रकृतिको अनेक रूपोंमें परिवर्तित कर देता है। उस आत्मा स्थित (आत्मा-की-आत्मा) ईश्वरको ज्ञानो पुरुष (आत्मासे) प्रत्यक्ष करते हैं, उन्हींको वास्तविक और चिरस्थायी आनन्द प्राप्त हो सकता है, अन्योको नहीं" । उस ईश्वरको किस प्रकार प्रत्यक्ष कर सकते

† तलवकारोपनिषद् २।२

‡ कठोपनिषद् ५।१२

हैं, इसके क्रियात्मक साधन योगदर्शनमें बतलाए गए हैं जिनमेंसे कुछ यहां उदाहरणके तौरपर, अंकित किए जाते हैं: --

(१) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (मौन से भी न डरना), शौच (शारीरिक + मानसिक शुद्धता), संतोष (उद्याग करनेसे जा फल प्राप्त हो उससे अधिककी इच्छा न करना) तप, (इन्द्रियनिग्रह, शांताप्णता और भूख-प्यासको सह लेना आदि) स्वाध्याय और ईश्वरभक्तिको हृदयमें धारण करना ।

(२) प्राणायामके द्वारा शारीरिक और मानसिक उन्नति करना ।

(३) चित्तको एकाग्र करनेके अभ्यासों-द्वारा आत्मिक-बल बढ़ाना ।

(४) फलकी इच्छा छोड़कर (निष्काम) कर्म करना और ज्ञानकी उत्तरोत्तर वृद्धि करना ।

(५) इसप्रकार उन्नत किए हुए आत्माको ईश्वरके प्रेममें लगाना और जगतके समस्त प्राणियोंको आत्मवत् समझना ।

(६) प्रेमकी पराकाष्ठा प्राप्त करना जिससे प्रेमी प्रेमपात्रके तद्रूप होकर एकत्वका अनुभव करने लगे । तब वह समस्त मोह और शोकसे छूटकर ब्रह्मानन्दके विशाल पथका पथिक बन जाता है । यही अष्टांग-योगका अंतिम परिणाम है । यही कैवल्य समाधि है और इसीको असम्प्रज्ञात-योग कहते हैं ।



तीसरा अध्याय

पहिला परिच्छेद

प्रकृति और जीव

प्रकृति तीन ज्ञेय वस्तुओंमेंसे एक प्रकृति है उसका अति संक्षिप्त विवरण देनेके बाद तीसरे ज्ञेय जीवात्माका वर्णन किया जायगा जो कि ग्रन्थका मुख्य विषय है । प्रकृति-जगत्का कारण है, इसको दोनों प्रकारके जड़वादी और अध्यात्मवादी वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं । यही सिद्धान्त भारत-वर्षके प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेदमें वर्णित है । प्रकृति जब दिन-रूप "सृष्टि" अवस्था में होती है तब काम करती और जब प्रलयावस्थामें होती तब आराम करती है । प्रलयावस्थामें प्रकृतिके तीनों गुण (विभाग) साम्यावस्थामें होते हैं । जब प्रलय समाप्त होती और जगत्की रचनाका कार्य प्रारम्भ होता है, तब गति प्रथम विस्तृत परमाणुओंमें उत्पन्न होती है । यह गति जगत्के रचयिताके परिणामसे परमाणुओंमें हलचल पैदा हो जाती है और इसप्रकार प्रकृति अपनी प्रलयावस्थामें प्राप्त समताको छोड़ विषमताको प्राप्त कर विकृत अवस्थामें हाँकर, सूक्ष्मसे सूक्ष्म होना शुरू होती है:—

पहले परिणामको	महन्तत्त्व कहते हैं	}	इन्हींके समु-
दूसरे	„ अहंकार		दायसे सूक्ष्म
तीसरे	„ ५ तन्मात्रा (सूक्ष्मभूत)		शरीर बनता
चौथे	„ १० इन्द्रिय और मन		है।
पांचवें	„ स्थूल भूत। इनसे स्थूल शरीर बनता है।		

इनहीं ५ स्थूल भूतों आकाश, (ईश्वर), वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीसे समस्त जगत्, और उसके अंतर्गत वस्तु और प्राणियोंके शरीर इत्यादि बनते हैं। प्रकृति जड़ है, ज्ञानशून्य है, और जबतक चेतन-द्रव्य ईश्वर-द्वारा इसमें गति न उत्पन्न की जावे, स्वयंमेव कुछ भी करनेमें असमर्थ हैं।

दूसरा परिच्छेद

जीवात्मा जीवात्मा नित्य है। उसके स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न है। यह बात कही जा चुका है। ऋग्वेदमें इसके सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णित है:—“श्वास लेता हुआ, गतिमान्, शीघ्रगामी, जीवन (चेतना) युक्त, शरीरोंके मध्यमें स्थिरतासे निवास करता है। मृतप्राणीका वह अमर जीव अनित्य प्राकृतिक भावों (कर्म + वासना) के साथ अन्य योनियोंमें आता जाना है। *

* अनच्छये तृगातु जीवमेजद्भ्रवं मध्य आ पस्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मृत्युना मयोनिः॥

जीवके सम्बन्धमें मुख्यतया दो प्रकारके मत और भी पाए जाते हैं (१) एक पक्ष तो यह कहता है कि जीवकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, किन्तु अविद्याग्रस्त ब्रह्मही जीवहो जाता है । इस पक्षको चेतनाद्वैत अथवा मायावाद कहते हैं । इस वादके समर्थकोंमें मुख्य श्रीशंकराचार्य्य है । (२) दूसरे पक्षका कहना यह है कि जीव शरीरके मेल ही का परिणाम है । यह पक्ष जड़ानैवाद (Materialistic Monism) कहा जाता है, इसके मुख्य समर्थक टिडल, हक्सले और हैकल आदि प्रसिद्ध पश्चिमी वैज्ञानिक हैं । हम संक्षिप्त गतिमें इन पक्षोंपर एक दृष्टि डालना चाहते हैं ।

क्या जीव और ब्रह्म एक चेतनाद्वैत अथवा मायावादके समर्थक हैं ? चेतनाद्वैतवादपर कहते हैं कि ईश्वर निर्गुण और अव्यक्त विचार है । मनुष्य में वह या अज्ञानसे उसे सगुण अथवा व्यक्त मानते हैं ।

(२) प्रकृति अथवा समस्त ब्रह्मांड ईश्वरकी माया है ।

(३) और जीवात्मा, परमेश्वरके समान ही निर्गुण, और अकर्ता है अज्ञानसे उसे कर्ता मानते हैं ।

अर्थः—(अनन्) आस लेता हुआ, (एजद) गतिमान, (तुरगानु) शीघ्रगामी, (जीवम्) जीवन (चेतना) युक्त (आपस्त्यानाम्) शरीरोंके (मध्य) बीचमें (ध्रुवं) स्थिरता से (शये) निवास करता है (मृतस्य) मृतप्राणीका (अमर्त्यो जीवो) वह अमर जीव (मर्त्येनास्वधाभि) अनित्य प्रकृतिभावों (कर्म + वासना) के साथ (सयोनिः चरति) अन्य योनियों (शरीरों) के साथ विचरता है ।

माया क्या है ?

मायाके अर्थ समझनेमें इस 'वाद' के समर्थकोंमें मतभेद है । वेदान्त शास्त्र के भाष्यमें अनेक स्थानोंपर श्री शंकराचार्यने माया शब्द अविद्या, अज्ञान अथवा मोहके लिए प्रयुक्त किया है, और वे इन सब शब्दोंको समानार्थक ही मानते हैं । स्वामी विवेकानन्दने देश, काल और परिणामके समुदायको माया ठहराया है । पंचदशी (उत्तर कालान मायावादके एक ग्रन्थ) में मायाके भेद किए गए हैं । (१) माया (२) अविद्या और इन दोनोंके दो काम बतलाए हैं । पंचदशीके लेखानुसार जब परमेश्वर मायामें जिसे प्रकृतिके तीन गुणोंमेंसे केवल सत्वगुणका उत्कर्ष बतलाया गया है, प्रतिबिम्बित हाता है । तब वह सगुण और व्यक्त ईश्वर कहलाता है । परंतु जब अविद्यामें जिसे उसी सत्वगुणका अशुद्ध रूप बतलाया है, प्रतिबिम्बित होता है, तब उसकी जीवात्मा संज्ञा हो जाती है । पंचदशीकारने माया और अविद्यामें इस प्रकारका भेद किया है । परंतु अधिकांश मायावादी माया और अविद्या आदिको शंकरके मतानुसार एकार्थक ही समझते हैं । माया जो कुछ भी हो उसके ठहरनेका स्थान मायावादमें दिखाई नहीं देता । यदि कलना किया जाये कि वह ब्रह्ममें रहे तो रह नहीं सकती क्योंकि मायावादका ब्रह्म निगुण है—यदि जीवमें रहनेकी कल्पना की जाये तो जगत्में इन दोनोंमें भी नहीं रह सकती क्योंकि ये दोनों तो मायाकी ही सन्तति हैं—

निर्गुण ब्रह्मसे जगत् और अस्तु हमने देख लिया कि मायावाद में शैव किस प्रकार बने ? केवल एक तत्व जिसे निगुण औ

अव्यक्त ब्रह्म कहते हैं। माना जाता है और कहा जाता है कि दृश्य जगत् और जीव उसी एक तत्त्व निगुण ब्रह्मसे प्रादुर्भूत हुए हैं। तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि किसप्रकार निगुण ब्रह्मसे यह विस्तृत और दृश्यमान जगत् और उसके साथ ही जीव भी, उत्पन्न हो गए ? इसी प्रश्नका उत्तर मायावाद है।

यही प्रश्न मायावादका मूल प्रश्न है। प्रश्न और भी गहन हो जाता है जब हम देखते हैं कि सांख्यके सदृश मायावाद भी "कारणाभावान् कार्यभावाः" का नियम स्वीकार करता है। सब ब्रह्म निगुण है और इसलिए निराकार अप्राकृतिक है तो उससे प्राकृतिक जगत् किसप्रकार उत्पन्न हो गया। क्योंकि जगत् रूपी कार्यके लिए प्रकृतिरूपी कारणकी आवश्यकता थी, और ब्रह्ममें इस कारणका अभाव था।

मायावादका उत्तर

मायावादमें इस प्रश्नके उत्तर देनेके लिए मिट्टी और घड़ा, सोना और अलंकार (ज्वेरा) तथा समुद्र और लहरके उदाहरण दिए जाते हैं। इनमेंसे एक उदाहरणका स्पष्टीकरण किया जाता है। १५ तोले सोना है—प्रथम उसके कड़े बनाए गए, तब इसके रूप और नामको जानकर लोग उसे कड़ा कहने लगे। अब वही कड़ा गलाकर उसकी हंसली बना ली गई, तब उसके रूप और नाम का ज्ञान होनेमें वही सोना हंसली कहा जाने लगा। इसी प्रकार तीसराबार भाला कहा जाने लगा, परन्तु वास्तवमें वह १५ तोला सोना एकही तत्व था। नाम और रूपके भेदसे वह कभी कड़ा कहलाया, कभी हंसली, कभी भाला। इस उदाह-

हरणसे मायावादमें यह परिणाम निकाला जाता है कि जिस प्रकार सोना एक तत्व होनेसे नाम और रूपके भेदमें अनेक हो गया, इसीप्रकार जगत्में एक ही तत्व है, परन्तु नाम और रूपके भेदसे यह सारा दृश्यमान जगत् उसी तत्वसे प्रादुर्भूत हो रहा है। यहां एक बात हृदयपर अंकितकरलेनी चाहिए कि नाम रूपके साथ वस्तुकी तोल भी वस्तुके साथ ही रहती है। यद्यपि मायावादो कहते हैं कि वस्तुकी तोल और जड़ता आदि गुणोंका समावेश नाम और रूपमें ही हो जाता है, परन्तु कम-से-कम तोलका समावेश नाम और रूपमें नहीं हो सकता। मायावादकी परिभाषामें वह नित्य तत्व जो प्रत्येक वस्तुमें रहता है "सत्तासामान्य" कहलाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक कन्टने दृश्य जगत्का विवेचन करते हुए वस्तुके बाहरी आकारका दृश्य "एरशायनुंग (Erschaimung = Appearance) बतलाया है। और न दिखाई देनेवाले वस्तुके भीतरी भाग (तोल आदि) को "डिंगआन्सिच (Dingan.Sich=Thing in Itself) अर्थात् वस्तुतत्त्व कहा है*परन्तु मायावादमें नाम रूपात्मकद्रव्य जगत्को मिथ्या और वस्तुतत्त्वको सत्य कहते हैं। वहां वस्तु-तत्त्व जो सत्य है, मायावादियोंका निगुण ब्रह्म है; परन्तु मायावादमें इस बातका कुछ उत्तर नहीं दिया गया कि वस्तु तत्त्वमें जो तोल थी वह कहाँसे आई। इस प्रश्नको नाम रूपके ही अंतर्गत कहकर ढाल दिया जाता है। जब मायावादमें ब्रह्मके जगत्का "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" कहा जाता है तो समझ में नहीं आता कि निर्गुण और अप्राकृतिक ब्रह्म, सगुण और प्राकृ

*Kant's Critique of Pure Reason.

तिक जगत्का उपादान कारण कैसे हो सकता है ? मायावादमें समस्त द्रश्य जगत्को, जिसमें मनुष्य, हाथी, घोड़े, बैल, वृक्ष, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि सभी प्राणी और अप्राणी सम्मिलित हैं, ज्ञान जीवात्माकी ज्ञाता और वस्तुतत्त्व (ब्रह्म) को ज्ञेय बतलाया जाता है[†]। इसप्रकार समस्त जगत्को ज्ञेयसे ज्ञानकी कान्तिमें टहराना भी एक प्रकारका हेतुवाभास ही है। ज्ञाता और ज्ञेयका विवेचन करते हुए मायावाद ज्ञेय ब्रह्मके स्वरूपके सम्बन्ध में, उक्तिपदोंमें बतलाए हुए ब्रह्मके स्वरूप “प्रज्ञानस्वरूप ब्रह्म” (ऐ० ३-३), “विज्ञानस्वरूप ब्रह्म” (तै० ३-५) अथवा सच्चिदानन्द स्वरूप, अथवा ओंकारकी नाम-रूपकी ही श्रेणी में टहराकर अपना मत यह देना है कि ब्रह्मका स्वरूप सबमें श्रेष्ठ होना चाहिए। और, क्योंकि गीता अ० ३, श्लो० ४२ में आत्मा (जीवात्मा) का आशा, स्मृति, वासना, धृति (मनके धर्म), मन और बुद्धिसे श्रेष्ठ कहा गया है। अतः ब्रह्म भी आत्मस्वरूप ही है। परन्तु आत्मा क्यों नाम और रूपसे पृथक् समझा जाता है, जब “ओंकार” नाम और रूपके अन्तर्गत कहा जाता है ? जगत् तो मिथ्या है, और उसे ज्ञान की कान्ति में टहराकर उसके ज्ञेयत्वकी तो मायावाद्ने समाप्ति कर दी, अब जीव

†कैंट वस्तुतत्त्वको अज्ञेय कहता है, परन्तु उसका तात्पर्य वस्तुतत्त्व ब्रह्म नहीं किन्तु प्राकृतिक द्रव्य है, परन्तु योगाचार (बाद्धोके एक पन्थके अनुयायी) ज्ञाता और ज्ञेय दोनोंको एक प्रकारका ज्ञान बतलाकर एक ही वस्तु ज्ञानको मानते हैं। यही उनका विज्ञानवाद है।

का पर्याय आया:—जीवार विचार करते हुए, मायावाद कहता है कि जीव और ब्रह्म एक ही मेलके द्रश्य है, अर्थात् दानों अमर और अव्यय हैं, और जो तत्त्व ब्रह्मांडमें है वही पिंड (मनुष्यके शरीर) में भी है। अतएव जीव और ब्रह्म पृथक् नहीं किन्तु एक ही हैं। केवल माया अथवा अज्ञानसे जीव अपनेको ब्रह्मसे भिन्न समझता है, परन्तु जब जीव योगशास्त्रमें वर्णित उपायों अथवा अन्य अनेक उपायोंमेंसे किसी एकका अवलम्बन करके माया (अज्ञान) को दूर कर देता है तब अपनेको ब्रह्मही समझने लगता है। ब्रह्मका स्वरूप निश्चय करते हुए, तो उसे आत्मस्वरूप-उहराया था। अब, जब आत्मा भ. ब्रह्म ही उहराया गया तो फिर वही प्रश्न सन्मुख आ जाता है कि फिर ब्रह्म क्या है। इसका अन्तिम उत्तर मायावादकी ओरसे यह दिया जाता है कि परब्रह्मका अन्तिम (निरपेक्ष और नित्य) स्वरूप निर्गुणता है ही, पर अनिवार्य भी है। जगत्में एक तो तत्त्व ब्रह्मकी कल्पना मायावादने की थी, और अन्तमें उसको भी अनिवार्य उहरा दिया। जगत्में जो कुछ दिखलाई दे, वह तो इसलिए मिथ्या है कि नाम और रूपकी कोटिमें है और उनके भीतर जो सत्य-ब्रह्मतत्त्व (ब्रह्म) है वह अनिवचनीय है, फिर मायावादका सिद्धान्त कोई समझे तो किस प्रकार समझे? स्वयंमायावादके अनुयायी विद्वान भी मायावादका इस निबलताको, कि किस प्रकार निर्गुण और अव्यक्त ब्रह्ममें सगुण और व्यक्त जगत् उत्पन्न हो गया, स्वीकार करते हैं। लोकमान्य तिलकने इसी बातको इन शब्दोंमें लिखा है - "(निर्गुणमें सगुणकी उत्पत्ति) सच्चा पेच है, ऐसा-वैसा उलझन नहीं है, और तो क्या,

कुछ लोगोंकी समझमें अद्वैत (मायावाद) सिद्धान्तके माननेमें यही ऐसी अड़चन है, जो सबसे मुख्य, पेचीदा और कठिन है । इसी अड़चनसे लोडकर वे द्वैतको अंगीकार कर लेते हैं” * पुरुष (जीव + ईश्वर) के समान ही सांख्यने प्रकृति (जगत्के कारण) को नित्य मानकर, समस्त जगत्को उसी (कारण) का कार्य्य ठहराया है । यही सांख्यका “परिणाम अथवा सत्कार्यवाद” है । न्यायदर्शनमें परमाणुओंमें जगत्की उत्पत्ति मानकर कारण और कार्य्य दोनोंका सत्य ठहराया है । यही न्यायका “आगम्यवाद” है; परन्तु मायावाद इस प्रकारके किसी कारणको स्वीकार न करनेके कारण ही उलझनमें पड़ा हुआ है । मायावाद कहता है कि ब्रह्म तो निगुण है, पर मनुष्यके इन्द्रिय धर्मके कारण उसीमें सगुणत्वकी झलक उत्पन्न हो जाती है । यही मायावाद का “विवर्तवाद” है । इन्द्रियोंमें सगुणत्वकी झलक किस प्रकार उत्पन्न होती है । इसका समाधान नवीन प्रकाशमें, इस प्रकार किया जाता है, कि कानमें सुनाई देनेवाला शब्द या तो वायु (ईश्वर) की तरंग है या गति; और इसीप्रकार आंखोंमें दिखाई देनेवाले रंग भी सूर्यके प्रकाशके विकार हैं, और प्रकाश भी एक प्रकारकी गति ही है । इसप्रकार गतिके एक होनेपर भी कानमें वह शब्दका रूप ग्रहण करलेती है, और आंखमें रंगका । इस उदाहरणके आधारपर यह कहा जाता है कि अविनाशो वस्तु (निगुण ब्रह्म) पर मनुष्यकी भिन्न-भिन्न

इन्द्रियां अपनी ओरसे शब्द रूपादि अनेक नामरूपात्मक गुणोंका अध्यारोप करके नाना प्रकारके दृश्य उत्पन्न करलिया करती हैं; परन्तु इस समाधानका कितना मूल्य है, यह केवल इस बातपर ध्यान देनेसे प्रकट हो जावेगा:— कि जो शब्द सुनाई देते अथवा जो रंग दिखाई देते हैं उनका हेतु तो गति है, परन्तु निगुण ब्रह्ममें गतिस्थाना कौनसा वस्तु है, जिसमें इन्द्रियां नाना प्रकारके दृश्य उत्पन्न करलिया करती हैं ? यदि ब्रह्ममें इस प्रकारकी गतिके सदृश किसी वस्तुकी कल्पना की जावे तो उसका निगुणत्व नहीं रह सकता । यदि कोई वस्तु कल्पित न की जावे तो उदाहरण देकर जो सिद्धान्त स्थिर किया गया है उसकी संगति मायावादमें कैसे लग सकती है ? इसके सिवा इन्द्रियोंमें यह गुण कहाँसे आया कि अवस्तुमें अपनी ओरसे नाम-रूपकी कल्पना करलेवें । इस प्रकारकी अनेक उलझनें हैं, जिनका सुलझाना मायावादके लिए कठिन हो रहा है । इसीके साथ एक और उलझन भी है कि इन्द्रियोंकी अपेक्षा न करके बतलाना चाहिए कि जगत्की वास्तविक सत्ता कुछ है या नहीं । प्रश्नको और भी परिमितरूपमें कर दिया जाता है:—कल्पना करो कि पृथ्वी, जिसपर हम सब रहते हैं और जिसका व्यास ८००० मीलके लगभग बतलाया जाता है । जिस पर सभी प्राणी और अप्राणि बसते हैं, जिस पर नदियां भी हैं, समुद्र भी हैं, हिमालय जैसे बड़े पर्वत भी है, लांहे, कोइले, सोने चाँदा, आदिकी ग्याने भी हैं, इन्द्रियोंकी अपेक्षा न करके बतलाया जाय कि यह पृथ्वी वास्तवमें कुछ है या केवल भ्रम-ही-भ्रम है । मायावादका उत्तर यही हो

सकता है कि निर्गुण ब्रह्मके सिवा इसकी सत्ता और कुछ भी नहीं है, जो कुछ दिखलाई देता है, भ्रममात्र है। अच्छा भ्रम ही सही, परन्तु यदि कोई सौ-दो-सौ मनका पत्थर किसी पहाड़ में किसी पुरुषपर गिरपड़े तो वह दबकर कुचला तो न जावेगा? यदि कहो कि कुचल तो जावेगा, तो क्यों? क्या भ्रम ही बोझीला होता है?

अस्तु यहां अब अधिक कुछ कहनेकी ज़रूरत नहीं। हमने दिखलिया कि मायावाद केवल एक तत्त्व निर्गुण ब्रह्मके स्वीकार करने और जीव और जगत्के कारणकी स्वतन्त्र सत्ता न स्वीकार करनेमें कितने उलझनोंमें पड़ा हुआ है?

अस्तु, जीवकी स्वतन्त्र स्वीकार न करने और उसे ब्रह्मका ही प्रकाश बनलानेमें काम नहीं चल सकता। अच्छा तो क्या जीवात्मा शरीरके मेलका परिणाम है?

तीसरा परिच्छेद ।

यह कहा जा चुका है कि जीवके प्राकृतिक क्या जीव प्राकृतिक है? होनेकी कल्पनाका जन्म पश्चिमी सभ्यताके जन्मसे पहले हो चुका था और यह भी कि इस कल्पनाकी जन्मभूमि भी भारतवर्ष ही है। चारवाकने इस कल्पनाका प्रचार—जीव शरीरके साथ उत्पन्न होकर इसीके साथ नष्ट हो जाता है—भारतवर्षमें उस समय किया था, जब योरपकी जातियां सभ्यता रहित थीं। परन्तु योरपमें इस कल्पनाका

जन्मदाता गृनानके प्रसिद्ध दार्शनिक "डिमोक्रेटस" (Democretus) को समझना चाहिए।

यही दार्शनिक "परमाणुवाद" का भी जन्मदाता डिमोक्रेटस समझा जाता है।

डिमोक्रेटसने इस परमाणुवादके संबंधमें कुछेक नियम बनाए हैं, जिनका विवरण इसप्रकार है: -

(१) अभावसे अभाव ही निकल सकता है। भाव का अभाव नहीं हो सकता। वस्तुओंके परिवर्तनका हेतु आणुओंका संयोग और वियोग है।

(२) अचानक (बिना कारणके) कोई घटना घटित नहीं होती। प्रत्येक कार्य (घटना) का कारण होता है, और उसी कारणका आवश्यक परिणाम वह कार्य हुआ करता है।

(३) संसारमें स्थित पदार्थ केवल परमाणु और आकाश (अक्वाश) हैं। अन्य वस्तुओंकी सत्ताका प्रकटीकरण, सम्मतिमात्र है—

(४) परमाणु संख्या और रूप-विभिन्नतामें असीम हैं। उनके परस्पर संघर्षणसे गति और भ्रमण उत्पन्न होकर जगत्की उत्पत्तिका कारण होते हैं।

नोट—परन्तु वह गति जिससे परमाणुओंमें संघर्षण होने लगता है, कहाँसे आती है, यदि डिमोक्रेटस इसपर विचार करता तो उसका ध्यान जगत्कर्ताकी सत्ताकी ओर जाता, और तब वह इससे अधिक तत्वोंके माननेके लिए विवश होता !

(५) वस्तुओंकी संख्या, आकार और राशिओंकी भिन्नता

परमाणुओंकी संख्या, आकार और राशियोंकी विभिन्नतापर निर्भर है।

(६) जीवात्मा सूक्ष्म, चिकने और गोल परमाणुओंसे बनते हैं, वे अग्निके परमाणु जैसे होते हैं। ये परमाणु सब परमाणुओंसे अधिक गतिमान होते हैं और समस्त शरीरमें व्यापक होते हैं। इन्हींकी गतिमें जीवनका कार्य प्रकट होता है।

इन नियमोंमेंसे छटा नियम है जिसमें जीवके प्राकृतिक होनेकी कल्पनाका प्रादुर्भाव योग्यमें हुआ। परमाणुओंकी गतिमें चेतनाकी उत्पत्तिकी कल्पना स्वयं इन्हीं नियमोंमेंसे नियम सं० १ और २ के विरुद्ध है। परमाणुओंमें चेतनाका अभाव होता है, तो इन परमाणुओंके संयोग, वियोग और गति आदिमें भी जां दृश्य प्रकटहों उनमें भी नियम सं० १ के अनुसार चेतनाका अभाव ही रहना चाहिए। यदि चेतनाका भाव हो सकता है तो इसका तात्पर्य यह होगा कि नियम सं० १ के सर्वथा विरुद्ध (चेतनाके) अभावसे (चेतनाके) भावकी उत्पत्ति हो सकती है। इसलिए डिमोक्रैट्सका छटा नियम न तो ठीक ही था और न उसके अपने ही नियमोंके अनुकूल। अस्तु योग्यमें जीवके प्राकृतिक होनेका बाज इसप्रकार डिमोक्रैट्सने बोया था।

डिमोक्रैट्सके थोड़े ही कालके बाद ग्रनानके इम्पीडोक्लेस एक दूसरे दार्शनिक " इम्पीडोक्लेस " (Empedocles) ने उसके परमाणुवादके नियमोंमें दो और नियमोंकी वृद्धि की।

(१) परमाणुओंमें इच्छा द्वेष है । (२) परमाणुओंमें "समर्थावशेष" की योग्यता है* ।

इम्पीडोक्लेसने डिमोक्रैटसके छटे नियमकी त्रुटि पूरी करनेके लिए यह कल्पना की कि परमाणुओंमें इच्छा और द्वेषके विचार होते हैं, परन्तु यह कल्पना कल्पनामात्र रही । इम्पीडोक्लेसके पश्चात् कालीन वैज्ञानिकोंमें हक्सले और हैकल जैसे जड़द्वैतवादी वैज्ञानिक भी सम्मिलित हैं परन्तु किसीने इस कल्पनाका पुष्टि नहीं की कि परमाणुओंमें इच्छाद्वेष के विचार हैं । सभीने एक स्वरसे उन्हें जड़ और चेतनाशून्य माना है । इसलिए इम्पीडोक्लेसकी इस कल्पनामें भी, जावके प्राकृतिक होनेके वादकी स्थापना नहीं हो सकी । इम्पीडोक्लेसके वाद यूनानमें इस श्रेणीके दो और भी दार्शनिकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने डिमोक्रैटसकी पुष्टिमें बहुत उत्साह दिखलाया । वे इपीक्यूरस (Epicures) और लुक्रेटियस (Lucretius) थे ।

इपीक्यूरस और लुक्रेटियसने जगत्कर्ताकी आवश्यकता न प्रकट करने हुए अपनी सम्मति दी कि वह नास्तिक नहीं, जो देवताओंकी सत्ता अस्वीकार करता है, किन्तु नास्तिक वह है जो उनकी सत्ता स्वीकार करता है । लुक्रेटियसने अपना मत दिया कि "यदि तुम इन नियमोंको

* "इम्पीडोक्लेस" का "समर्थावशेष" (Survival of the fittest) वाला नियमही डार्विनके समर्थावशेषवाले नियम का पूरा रूप था ।

समझो और मस्तिष्कमें रखवाने तो देख सकोगे कि बिना देवताओंके माध्यमके सृष्टिनियम स्वतः ही समस्त जगत्-रचना का कार्य कितनी उत्तमता और शीघ्रतासे समाप्त करने हैं।”

इन जड़वादी दार्शनिकोंके विचार यूनानमें इनके बाद हुए दार्शनिकोंकी शिखाओंसे पुष्ट न हो सके। मुकरात, अफ्लातून, अरस्तू, पाइथागोरस आदि प्रायः सभी दार्शनिक जीवकी स्वतंत्र और नित्य सत्ता स्वीकार करते रहे।

योरपके मध्यकालीन युगमें “मज़हब” के नामसे जब वैज्ञानिकोंपर अन्याचार हुए और उन्हें जता ही भस्मीभूत तक किया गया और अन्य भी तरह-तरहसे कष्ट दिए गए * तब वैज्ञानिकोंमें मज़हबके विरोधका संकल्प जागृत हुआ। इस प्रकार इस विरोधका परिणाम यह हुआ कि वैज्ञानिकोंका ध्यान जीव और ईश्वरकी सत्तासे हटा और उन्होंने सब काम प्राकृतिक परमाणुओंसे ही चलानेका उद्योग किया। परिणाम इस संघर्षणका यह हुआ कि फिर जड़वादकी जागृति हुई और यह विचार विशेष गतिसे वैज्ञानिकोंमें बढ़नेलगा, और विज्ञानका

* जब इटलीके वैज्ञानिक ब्रूनो (Giordano Bruno) ने प्रचार करना प्रारम्भ किया कि समस्त ग्रह (Fixed Stars) हमारे सूर्यकी भांति, सूर्यही है और ग्रह-उपग्रह इनके चारों ओर घूमते हैं। क्योंकि यह शिक्षा बाइबिलके विरुद्ध थी, अतः पादरियोंने उसे कैद किया और अन्तमें १९ फरवरी १६०० ई० को त्रिन्दा जला दिया।

एक अंग समझा जाने लगा। वैज्ञानिकोंका खोज और अन्वेषणा भी जड़वादकी सहायक हुई। उदाहरणकी रीतिपर एक अन्वेषणा का उल्लेख किया जाता है।

१६ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें “यूरिया” (Urea) जो एक अत्यन्त स्वच्छ मिश्रित वस्तु है। जिसमें जीवन सम्बन्धी कुछ क्रियाओंका हाना कलियत किया जाता है। स्वस्थ प्राणियों के मूत्रमें पाई जाती है। यह प्राणियोंमें ही प्राप्त वस्तु समझी जाती थी और प्राकृतिक साधनोंमें उसका बनाया जाना असंभव समझा जाता था। परन्तु “वॉहलर” (Wohler) ने जब उसे प्राकृतिक साधनोंमें रसायनशाला में बना दिया तब यह समझा जाने लगा कि जीवन सम्बन्धी अन्य बातें भी प्राकृतिक आधार रखती हैं और कललरस आदि भी इसीप्रकार बनाए जा सकते हैं : परन्तु यह भ्रम-हो-भ्रम सिद्ध हुआ। यूरिया और चेतना दो पृथक्-पृथक् वस्तु हैं। एक दूसरेसे उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं। जो कुछ हो, उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें योरपके वैज्ञानिकोंमें यह विचार बढ़ता गया कि जीवनका आधार प्राकृतिक है। यहाँ इस प्रकारके विचार रखनेवाले वैज्ञानिकोंमेंसे हम दो का उल्लेख करेंगे जो जड़द्वैतवादी वैज्ञानिकोंके मुकुट समझे जाने हैं:—

(१) हक्सले (२) हैकल ।

हक्सलेने अपने प्रसिद्ध व्याख्यान “जीवनके प्राकृतिक आधार” में कललरसकी बनावटपर विचार करते हुए कहा था कि सब प्रकारके कललरसोंमें, जो अबतक जांचे गए हैं, चार मूल तत्त्व पाए जाते हैं। (१) कार्बन (२) हाइ-

ड्रोजन (३) ऑक्सिजन और (४) नाइट्रोजन। इनका सम्मेलन इतना गूढ़ है कि अब तक यह नहीं जाना जा सका है कि यह तत्व किस-किस मात्रा में मिलाए जाने चाहिये जिससे कललरस बन सके * । हक्सलेने इन तत्वोंको निर्जीव बतलाया है, परन्तु इनका निर्जीव होना स्वीकार करते हुए भी लिखता है कि इन चार तत्वोंमेंसे जब कार्बन और ऑक्सिजन विशेष मात्रा में और विशेष अवस्थामें मिलते हैं, तो कार्बोनिक एसिड उत्पन्न करते हैं । ऑक्सिजन और हाइड्रोजनसे जल बनता है, और नाइट्रोजन और कुछ अन्य मूल भूत (जो अबतक अज्ञात हैं) जब मिलते हैं तो “नाइट्रोजनमसाल्ट” पैदा करते हैं। हक्सलेको स्वीकार है कि यह तीनों मिलित वस्तुएँ भी निर्जीव है । परन्तु वह कहता है कि जब यहाँ तीनों मिलित वस्तुएँ किसी विशेष रीतिसे (यह रीति भी अज्ञात है) मिलते हैं तो अनेक से भी अधिक दुर्योध वस्तु कललरसको उत्पन्न कर देते हैं और इसी रसमें जीवनके दृश्य प्रकट होते हैं ।

हक्सलेका यह 'वाद' कितना अधूरा है, यह इससे ही प्रकट है कि वह यह नहीं जानता कि नाइट्रोजन साल्टके निर्माणके लिए नाइट्रोजनके साथ दूसरा मूल भूत कौनसा मिलता

* (१) वैज्ञानिक कललरसके अवयव इन चार तत्वोंको बतलाते हैं परन्तु अपने बतलाए हुए मूल भूत अवयवोंसे कललरस बना नहीं सकते । न बना सकने से एकही परिणाम निकाला जा सकता है कि इनको अभी तक पूरा-पूरा ज्ञान, चेतना की तो कथा ही क्या है, कललरसका भी नहीं है ।

है। वह यह भी नहीं जानता कि वह “विशेष गीति क्या है जिससे यह तीनों मिश्रित वस्तुएँ मिलती हैं”। यह तो प्रश्न ही अभी पृथक् है कि कललरसमें चेतना है या नहीं। हैकलेने स्वीकार किया है कि कललरस भी निर्जीव ही है, परन्तु यहां तो हक्सले तथा अन्य वैज्ञानिकोंको जिनमें हैकल भी सम्मिलित है यह भी ज्ञात नहीं कि कललरस किस प्रकार बनता है। और वे उसके बनानेमें अवतक सदैवा असमर्थ हैं। हैक्सलेको अपने इस 'वाद'की निर्बलता स्वयं भी ज्ञात होगई थी। ऐसा प्रतीत होता है, इसलिए उसने अपने एक दूसरे पुस्तककी भूमिकामें जो उपयुक्त व्याख्यानके बाद उसने लिखा था, और जो पशुओं के वर्गीकरणमें संबंधित थी, लिखा है कि “जाँव शरीर की रचना का हेतु है, परिणाम नहीं”। उसके शब्द यह हैं “Life is the cause and not the consequence of organisation” उसने इस 'वाद'को “उत्तमतया स्थापित-वाद” कह कर लिखा है और इसी सम्बन्धमें जान हंटरका भी उल्लेख करते हुए लिखा है कि उन्होंने इसका बहुधा समर्थन किया है ऐसी दशामें जब हैक्सलेको अन्तमें यह स्वीकार कर लेना पड़ा कि जीव शरीरमें स्वतन्त्र कोई वस्तु है, और यह कि शरीरके संगठनका परिणाम नहीं। किन्तु शरीरके संगठनका कारण है, तब जीवनका प्राकृतिक आधार कहाँ रहा ? इस प्रकारकी सम्मति देनेके बाद हम हैक्सलेको जड़द्रवैतवादी नहीं कह सकते।



नहीं था, इसीलिए उसने इस अद्भुतशक्तिको “अलौकिकशक्ति” बतलाया है। वे दोनों घटक एक-दूसरेकी ओर वेगसे आकर्षित होकर मिल जाते हैं। जीवात्माको स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करनेवालोंका कथन है कि बिना जीवके गर्भाशयमें प्रवेश किए गर्भ की स्थापना नहीं हो सकती। हैकलको जीवात्माकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकृत नहीं थी अतः उसे इस अद्भुतशक्तिकी कल्पना करनी पड़ी। इस शक्तिको उसने एक प्रकारकी रासायनिक प्रवृत्ति घ्राणमें मिलती-जुलती बतलाया है। यह हैकलकी पहली कल्पना है जो जड़द्वैतवादी होनेमें उसे करनी पड़ी। इसके पश्चात् हैकल कहता है कि ‘इसप्रकार पुरुष और स्त्री के “संवेदनात्मक अनुभव” द्वारा जो एक प्रकारके रासायनिक प्रेमाकर्षण (Erotical Chemical trapism) के अनुसार होता है। एक नवान “अंकुर-घटक” उत्पन्न हो जाता है, जिसमें माता पिता दोनोंके गुणोंका समावेश होता है। गर्भ की स्थापना, जिसे हैकलने अंकुर-घटकी उत्पत्तिका नाम दिया है, जीवात्माके गर्भमें आए बिना नहीं हो सकती थी। अतः हैकलको एक प्रकारके रासायनिक “प्रेमाकर्षण” और जड़घटक (अंकुरघटक) में माता-पिताके गुणोंके (जो किसी चैतन्य वस्तुमें हो आ सकते थे) आनेकी दूसरी कल्पना करना पड़ी *। फिर हैकल कहता है कि

*माता-पिताके शारीरिक गुण-दोष बालकके शरीरमें आते हैं परन्तु मांसिक गुण-दोष आत्मामें ही आसकते हैं अतः उनके अंकुर घटकमें आनेकी कल्पना, कल्पना मात्र है, क्योंकि अंकुर घटक चेतना शून्य जड़-घटकोंका समुदाय अथवा उत्तर रूप है।

“इस अंकुर (मूल) घटकके उत्तरोत्तर विभाग-द्वारा बीज कलाओंकी रचना द्विकल-घटककी उत्पत्ति तथा अन्य अंगावयवों का विधान होता है, और इसप्रकार भ्रूण-पिण्ड क्रमशः बढ़ते-बढ़ते बालकके रूपमें हो जाता है। हैकल कहता है कि अद्यतक भी बालकमें नहीं होती, और उस समय तक भी चेतना बालकमें नहीं होती, जब तक यह बोलने नहीं लगता। बहुत अच्छा तो इस हिस्सावसे गूंगा आदमी तो सदैव चेतना रहित ही रहेगा, क्योंकि न वह कभी बोलेगा और न कभी उसमें चेतनाका विकास होगा। चेतनाका विकास किस प्रकार होता है, यह कथा भी सुनने योग्य है।

“स्त्री-पुरुष-घटकांमें केवल केंद्र ही नहीं होते हैं मनोव्यापार किन्तु उनमें एक-एक घटकात्मा भी होती है। इन घटकात्माओंमें एक विशेष प्रकारकी संवेदना और गति होती है। गर्भ-विधानके समय दोनों घटकोंके कललरस और बीज (केन्द्र) ही मिलकर एक नहीं हो जाते बल्कि उनकी घटकात्माएँ भी परस्पर मिल जाती हैं। वे भी एक नवीन शक्तिकी योजनाके लिए मिलकर एक हो जाता है। अंकुरघटककी यह नवयोजित शक्ति ही बीजात्मा है”। इस कथनमें भी हैकलने कल्पनाएँ की हैं अर्थात् घटक कललरसमें बनते हैं। कललरस कतिपय मूल भूतों (ऑक्सिजन) आदिका कार्ग्य है। उपादानमें जो गुण होते हैं, वही उसमें निमित्त वस्तुमें आते हैं। ऑक्सिजन आदिमें न तो कोई विशेष प्रकारकी संवेदना और गति होती है, न कोई निहित या अव्यक्त गति शक्तियाँ। उनके जो कुछ भी

गुण और कार्य है, रसायन-शास्त्रमें वर्णित हैं । जब उनमें एक विशेष प्रकारकी संवेदना आदि नहीं है तो उनसे बने हुए पदार्थों कललरस आदिमें भी यह गुण नहीं हो सकते । यह हैकलकी तीसरी कल्पना है, जो उस जीवात्माकी सत्ता न माननेसे करना पड़ी । फिर हैकल लिखता है कि “सम्पूर्ण मनोव्यापार कललरसमें होनेवाले परिवर्तनोंके अनुसार होते हैं” । कललरसके उस अंगका नाम जो मनोव्यापारोंका आधार स्वरूप प्रतीत होता है, मनोरस है । मनोरसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । आत्मा या मनका हम कललरसमें हुए अन्तर्व्यापारोंकी समष्टिको मनोरस कहते हैं । आत्मा अथवा मनोरसकी क्रियाएँ शरीर के द्रव्य वैकृत्यधर्मसे * संबन्ध है । जीवात्माका कार्य मनोरसकी कुछेक रासायनिक योजना और कुछेक भौतिक क्रिया हुए बिना नहीं हो सकता ।

कललरसके कार्योंका नाम आत्मा रखनेमें हैकलने कतिपय कल्पनाएँ हैं:—

पहिली कल्पना —“कललरसमें एक अंशका, मनोव्यापारोंका आधार स्वरूपप्रतीत होना ।” यदि हैकलने किसी परीक्षणमें

* घटकों या तंतुओंकी वह क्रिया जिसके अनुसार वे रक्त-द्वारा प्राप्त पोषक द्रव्यको अपने अनुरूप रस या धातुमें परिवर्तित कर लेते हैं या घटकस्थ कललरस विश्लिष्ट करके द्रव्योंमें परिणत करते हैं जो पाचनरस बनाने और मल निकालनेके काम आते हैं ।

(विश्वप्रपंच)

“कललरसको मनोव्यापारोंका आधारस्वरूप होना” जाना होता तो उसका उल्लेख वह अपने पुस्तकमें करता परन्तु समस्त पुस्तक (Riddle of the Universe) के पृष्ठ लौट जानेपर भी किसी ऐसे परीक्षणके किए जानेका उल्लेख नहीं मिलता। इसके सिवा उसका “आधार-स्वरूप” शब्दोंके साथ “प्रतीत होना” (which seems) इन शब्दोंका प्रयोग स्पष्ट कर देता है कि यह किसी परीक्षणका परिणाम नहीं किन्तु कल्पनामात्र है।

दूसरी कल्पना—आत्माके कार्यके लिए “कुछेक रासायनिक योजना” और कुछेक भौतिक क्रियाका होना आवश्यक है। वे कुछेक रासायनिक योजना और क्रियायें क्या हैं? कुछेक शब्दके प्रयोगसे ही स्पष्ट है कि हैकलका ज्ञान नहीं थी, तो इसको कल्पनाके सिवा क्या कहा जा सकता है?

यह चौथी और पांचवीं कल्पनाएं हैं जो हैकलका आत्माकी स्वतंत्र सत्ता न माननेसे करनी पड़ी हैं।

हैकलका कथन है कि “समस्त जीव इंद्रिय और अन्तःकरण।

संवेदनग्राही है, और अपने चारों ओर स्थित पदार्थोंका प्रभाव ग्रहण करते हैं, और शरीरकी स्थिति के कुछ परिवर्तनों-द्वारा उन पदार्थोंपर भी प्रभाव डालते हैं। प्रकाश, ताप, आकर्षण, विद्युदाकर्षण, रासायनिक क्रियाएं और भौतिक व्यापार सब-के-सब संवेदनात्मक मनोरसमें श्लोभ या उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। मनोरसके संवेदनकी ५ अवस्थायें हैं:

(१) जीव-विधानकी प्रारम्भिक अवस्थामें समस्त मनोरस, संवेदनग्राही होता है और बाहरके पदार्थोंसे उत्तेजना ग्रहण

करके कार्य करता है। क्षुद्र कोटिके जीव और पौधे इसी अवस्थामें रहते हैं।

नोट—हैकलके मतानुसार इन क्षुद्र जन्तुओंमें चेतना नहीं होती। परन्तु देखा यह जाता है कि क्षुद्र-से क्षुद्र जन्तु भी “आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतन् पशुभिर्नराणाम्” के प्रसिद्ध नियमानुसार अपनी रक्षा और आहार आदिकी चिन्ता रखते हैं। विज्ञानरत्न सर जगदीशचन्द्र वसुके अन्वेपण और परीक्षणानुसार तां पौधोंमें भी ये गुण पाए जाते हैं तां फिर यह ज्ञान इन जन्तुओंमें आत्माकी सत्ताके बिना कहाँसे आया? क्योंकि स्वयं हैकलके मतानुसार कल्लरस अथवा उसका विशेषांश मनोरस दोनों ज्ञानशून्य हैं। इस प्रश्नका उत्तर हैकलने कुछ नहीं दिया। बात तां यह है कि उनसे इनमें इसप्रकारके ज्ञान होनेकी कल्पना ही नहीं की।

(२) दूसरी अवस्थामें शरीरपर विषय विवेकरहित, इन्द्रियोंके पूर्वरूप, कल्लरसके सुतड़ों और विदियोंके रूप (In the form of protoplasmic filaments and bigment spots) में प्रकट होते हैं। ये चक्षु और स्पर्शेन्द्रियके पूर्वरूप होते हैं। और उन्नत अणु, जीव आदिमें पाए जाते हैं।

(३) इन ही मूल विधानोंसे विभक्त होकर इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।

(४) चौथी अवस्थामें समस्त संवेदना-विधानों (इन्द्रिय-व्यापारों) का एक स्थानपर समाहार होता है। इस

समाहारमें अचेतन अतः संस्कार उत्पन्न (अर्थात् इन्द्रिय संवेदनके स्वरूप अंकित) होते हैं ।

(५) अंकित इन्द्रिय संवेदनाका प्रतिबिम्ब संवेदना सूत्रजाल के केन्द्रस्थलमें पड़ता है, जिसमें स्पर्श या स्वान्तवृत्ति बोध (Conscious Perception) पैदा होता है, जो मनुष्यों और उच्च कोटिके पशुओंमें पाया जाता है ।

नोट—उपर्युक्त कार्य, प्राणियोंके शरीरमें होते हैं । यह तो निर्विवाद है । अंतर केवल यह है कि आत्मवादी इन कार्यों का होना आत्माकी सत्ता शरीरमें होनेसे मानते हैं, परन्तु हैकल बिना किसी चेतनशक्तिकी उपस्थितिके इनका हाना मानता है, क्योंकि उसको जीवात्मा और परमात्मा दोनोंकी सत्तामें इनकार है । ज्ञान और चेतनाहीन कललरस (अथवा मनोरस) में नियमपूर्वक कार्य करनेकी शक्तिका स्वीकार करलेना कल्पनामात्र है, और "वृत्तिबोध" तो सर्वथा असम्भव है । सब से प्रथम किसी वस्तुके बोध प्राप्त करनेका विचार शरीरमें उपस्थित चेतनाशक्ति (आत्मा) में उत्पन्न होना चाहिए, तब उसकी प्रेरणामें मनोवृत्ति इन्द्रियोंके मध्यमसे उस वस्तुतक पहुँच और तद्रूप होकर मन (अथवा चित्त) में लौटती है, और "स्फुटिक" के सदृश मनको तद्रूप बना देती है । तब आत्माका उसका ज्ञान होता है, और उसी ज्ञानको वस्तु (अथवावृत्ति) बोध (Conscious Perception) कहते हैं परन्तु यहाँ हैकलने चेतना रहित शरीरमें ज्ञान शून्य अंतःकरण-द्वारा वृत्तिबोधकी कल्पना करली । यह छठी कल्पना है जो हैकलको आत्माकी सत्ता स्वीकार न करनेसे करनी पड़ी ।

गति हैकल महोदय कहते हैं कि समस्त जीवोंमें एक "स्वतः प्रवृत्तगति" की भी शक्ति होती है ।

नोट—प्रश्न यह है कि यह स्वतः प्रवृत्तगति आई कहाँसे ?

कललरस अथवा मनोरस अथवा उनके उपादान ऑक्सीजन आदिमें तो इस गतिका चिन्ह भा नहीं पाया जाता । क्या किसी जीवात्मा रहित शरीरका परीक्षण करके इस गतिका पता लगाया गया है ? यदि ऐसा है, तो क्यों नहीं उस परीक्षणका भी यहाँ उल्लेख कर दिया गया ? परन्तु बात यह है कि न तो कललरस आदिमें ज्ञान है, और न इस प्रकारकी कोई गति । अवश्य ज्ञान और गति (प्रयत्न) जीवात्माके स्वामात्रिक गुण हैं, और जीवात्माके साथ ही इनकी सत्ता शरीरमें भी रहती है । हैकल जीवात्माको नहीं मानता इसलिए चेतन शरीरमें ही उस जीवके गुण प्रयत्नकी कल्पना करनी पड़ी क्योंकि ज्ञान और प्रयत्नके बिना शरीर और अंतःकरणका कार्य चल ही नहीं सकता था । यह मातृवी कल्पना है, जो हैकलका आत्मवादी होनेसे करनी पड़ी । अच्छा और आगे चलिए 'सजीव मनोरस में कुछ ऐसे आन्तरिक कारण होते हैं । जिनमें उसके अणु अपना स्थान बदलते हैं । ये कारण अपनी सत्ता मनोरसके रासायनिक संयोगमें ही रखते हैं । मनोरसका इन स्वतः प्रवृत्त-गतियोंका कुछ तो ज्ञान पारीक्षणोंमें हुआ है (परीक्षणोंका उल्लेख नहीं किया गया न उनका संक्षिप्त विवरण ही दिया गया है) और कुछ उनके कार्योंको देखकर अनुमान किए गए हैं ।'

नोट—यहां भी "कुछ ऐसे आन्तरिक कारण होते हैं।" यह शब्द कहकर हैकलने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की है। बतलाना चाहिये था कि मनोरसका वह कौनसा और किस प्रकारका रसायनिक संयोग है जिसमें मनोरसके भीतर स्वतः प्रवृत्तगति उत्पन्न होती रहती है। अवश्य कार्य्योंको देखकर भीतरी शक्तिका अनुमान किया जा सकता है, परन्तु वह भी भीतरी शक्ति हैकलरु मनोरसमें कल्पित भीतरी कारण नहीं किन्तु जीवात्मा है, जिसके गुण प्रयत्नानुसार ये सब कार्य्य होते हैं। यह हैकलकी आठवीं कल्पना है।

प्रतिक्रिया हैकल प्रतिक्रियाको जीवनका कारण समझता है।
उसका कथन है कि जीवन, संवेदन और गतिसे पैदा होता है। संवेदन और गतिके संयोगसे जो मूल या आदिम मनोव्यापार उत्पन्न होते हैं उन्हींको प्रतिक्रिया कहते हैं। प्रतिक्रिया की (७) सात अवस्थाएँ देखी जाती हैं —

(१) श्रुद्र अणु जीवमें बाह्य जगत्को उत्तेजना (ताप, प्रकाशादि) से केवल वह गति उत्पन्न होती है, जिसे अंग वृद्धि और पोषण कहते हैं ॥

(२) डोलने-फिरनेवाले अणु जीवोंमें बाहरकी उत्तेजना शरीरगतके प्रत्येक स्थानपर गति पैदा करती है जिससे आकृति बदलती रहती है।

(३) उन्नत कोटिके अणु जीवोंमें दो अत्यन्त सादे अवयव, एक स्पर्शेन्द्रिय, दूसरी गतिकी इन्द्रिय देखी जाती हैं, यह दोनों इन्द्रिय कललरसके बाहर निकले हुए अंकुर हैं। स्पर्शेन्द्रियपर

पड़ी हुई उत्तेजना घटकस्थ मनोरस-द्वारा गतिकों इन्द्रियतक पहुँचाती हैं, और उसे आकुंचित करती है।

(४) सूँगे आदि अनेक घटक जीवोंका प्रत्येक संवेदन सूत्रात्मक और पेशीतंतु युक्त घटक प्रतिक्रियाका एक-एक कारण है। इसके ऊपर एक मर्मस्थल और भीतर एक गत्यात्मक पेशीतंतु है। मर्मस्थल छूतेही पेशीतंतु सिकुड़ जाती है।

(५) समुद्रमें तैरनेवाले काँटोंमें बाहर संवेदना ग्राहक घटक और चमड़ेके भीतर पेशीघटक होता है। इनके बीचमें एक मिलानेवाला मनोरस निर्मित सूत्र है, जो उत्तेजना एक घटकसे दूसरे घटक तक पहुँचाता है।

(६) बिना रीढ़वाले जंतुओंमें दो-दोके स्थानमें तीन-तीन घटक मिलते हैं। तीसरा स्वतन्त्र घटक सम्बन्धकारक सूत्रके स्थानमें है उसे मनोघटक या संवेदनग्रन्थिघटक कहते हैं। इसीके साथ अचेतन अन्तःसंस्कार उस घटक ही से पैदा होते हैं। उत्तेजना पहले संवेदनग्राही घटकमें मध्यस्थ मनोघटकमें पहुँचती है, जहाँसे क्रियोत्पादक पेशी घटकमें पहुँचकर गतिकों प्रेरणा करती है।

(७) रीढ़वाले जंतुओंमें तीनके स्थानमें चतुर्थ घटकात्मक कारण पाया जाता है।

संवेदनघटक और क्रियोत्पादक पेशीघटकके बीचमें दो मनोघटक मिलते हैं। बाहरी उत्तेजना पहले संवेदनग्राही मनोघटक, फिर सकलपात्मक घटक और फिर अन्तमें आकुंचनशील पेशी-घटकमें जाकर गति उत्पन्न करती है। ऐसे अनेक चतुर्थ घटात्मक करणों और नए-नए मनोघटकोंके

संयोगमें “जटिल चेतन अन्तःकरण” पैदा होता है। “प्रतिक्रियाके उपर्युक्त विवरणोंमें (हैकल कहता है) स्पष्ट होगया कि वही आदिम मनोव्यापार है। प्रतिक्रियामें चेतनका अभाव होता है। उत्तेजना पहुँचनेमें गति (वारुद्धके सदृश) उत्पन्न हो जाती है। चेतना केवल मनुष्यों और उन्नत जीवोंमें मानी जा सकती है। उद्भिदों श्रुद्रजीवोंमें नहीं। इनमें उत्तेजना पाकर जो उत्पन्न होता है वह प्रतिक्रिया (Instinct सहज ज्ञान) मात्र है, अर्थात् संकल्पित अथवा अन्तःकरणकी प्रेरित क्रिया नहीं है।”

गोटे—आत्मवादियोंका मन्तव्य है कि शरीरकी भीतरमें वृद्धि (विकास) केवल उस अवस्थामें होती है, जब उसमें जाँच होता है। इसलिए निर्जीव पदार्थ (पहाड़ आदि) भीतरमें नहीं किन्तु बाहरमें बढ़ते हैं। प्रतिक्रियाकी पहली अवस्थामें हैकलने बाह्यजगत्की उत्तेजना (ताप, प्रकाश आदि) से श्रुद्र अणु जीवोंका अंगवृद्धि करनेवाली गति का उत्पन्न होना प्रकट किया है। इसपर हमारा कहना यह है कि यदि जीवात्माके अभावमें भा ताप, प्रकाशादिसे प्राप्त उत्तेजना-द्वारा अंगवृद्धि और पोषणरूप गति उत्पन्न हो जाती है तो निर्जीव (जड़) पदार्थ पहाड़ आदिमें उसी उत्तेजनाने यह गति क्यों नहीं पैदा हो जाती? निर्जीवमें जब यह उत्तेजना अंगवृद्धिकी गति उत्पन्न नहीं कर सकती तो श्रुद्रजन्तुओंकी भी इस उत्तेजनाने (अथवा उससे उत्पन्न गतिसे) अंगवृद्धि नहीं हो सकती। हैकलकी यह कल्पनामात्र है। इसीप्रकार प्रतिक्रियाकी छठी अवस्था तक भी तो कार्य बाहरी उत्तेजनाने होना बतलाए गए हैं। वे भी

कल्पनामात्र हैं। बिना शरीरमें जीवके विद्यमान हुए यह कार्य नहीं हो सकते। यह हैकलकी नवीं कल्पना है। प्रतिक्रियाकी सातवीं अवस्थामें प्रतिक्रिया-द्वारा हुए वर्णित कार्योंके लौट-फेरमें जो चेतना (संलग्न या इच्छा) की उत्पत्ति बतलाई गई है, यह हैकलने बड़े साहसका काम किया है।

चतुर्थघटात्मक कर्ण, मनोघटक, जीवघटक, अथवा संकल्प घटक, कुछ ही नाम क्यों न रख लिए जायें ये सबके सब, अब तक के दिए हुए इनकी उत्पत्ति आदि सम्बन्धी विवरणोंमें स्पष्ट है कि अचेतन हैं। इनमें न जान है न जानपूर्वक क्रिया। "फिर इस प्रकारके अनेक घटकोंके मिलनेमें भी चेतना किस प्रकार उत्पन्न हो गई" यही मुख्य प्रश्न है जिसपर प्रकाश पड़ना चाहिए था। अनेक जडावयव मिलकर भी चेतनाशून्य हो रहेंगे। हैकल स्वयं भी इस कठिनताका अनुभव करता था, इसीलिए उसने चेतन अंतःकरणके साथ जटिल (Intricate) शब्दका विशेषण लगाया है। प्रतिक्रियाका जो अवस्थाएं ऊपर वर्णित हैं और उनमें जो कुछ कार्य प्रतिक्रियाका बाह्य उत्तेजना प्राप्त होनेपर दिखलाया गया है, यदि वह सबका सब उसी तौरसे स्वीकार कर लिया जावे तो उसका परिणाम केवल रेंगनेके सदृश एक गतिका उत्पन्न हो जाना हो सकता है। वह गति भी ज्ञानरहित होगी उसमें चेतनामय इच्छा या संकल्पका अभाव होगा। इससे बढ़कर प्रतिक्रियाका और कुछभी परिणाम नहीं स्वीकार किया जा सकता। हम आगेके पृष्ठोंमें अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंके पतोंके भी दिखलानेका यत्न करेंगे, जिससे इस विषयपर अच्छा प्रकाश पड़ेगा। अस्तु जडावयवोंसे

चेतना (इच्छा या संकल्प) की उत्पत्तिका बनलाना हैकल को यह दमवीं डवल कल्पना है ।

हैकलका कथन है कि "इन्द्रियोंकी क्रियासे प्राप्त अंतःसंस्कार बाह्य विषयका जो प्रतिरूप भीतर अंकित होता है, उसे अंतःसंस्कार या भावना कहते हैं" । अन्तःसंस्कार चार रूपमें देखा जाता है:

(१) घटक गत अन्तःसंस्कार । श्रुद्र एक घटक अणु-जीवोंमें "अन्तःसंस्कार समस्त मनोरसका सामान्य गुण" होता है । एक प्रकारके अत्यन्त सूक्ष्म गोल सामुद्र अणुजीव होते हैं, जिनके ऊपर आवरणके रूपमें एक पतली चित्र-विचित्र खोपड़ी होती है । इस खोपड़ीकी चित्रकारी सबसे एकसी नहीं होती; भिन्न-भिन्न होती है । खोपड़ीकी रचना और चित्रकारीके विचारसे इस जीवके हज़ारों उपभेद दिग्वाई पड़ते हैं । किसी एक विशेष चित्रकारीवाले जीवसे विभाग-द्वारा जो अन्य एक-घटक जीव उत्पन्न होते हैं । उनमें भी वही चित्रकारी बनी मिलती है । इसका कारण केवल यही बनलाया जा सकता है कि "निर्माणकर्ता कललरसमें अन्तःसंस्कारकी वृत्ति होती है और परत्व, अपरत्व, संस्कार और उसके पुनरुद्भावनकी शक्ति होता है ।"

नोट—हैकलमें वह बड़ी योग्यताकी बात थी कि जो प्रश्न आत्मा अथवा परमात्मसत्ताके माने बिना हल नहीं हो सकते । वह उनको केवल जड प्रकृति ही-द्वारा हल कर देता था । उसकी हल करनेकी विधि भी बड़ी सुगम थी । वह सुगम विधि केवल यह थी कि आत्मा अथवा परमात्माके उस गुणकी

जिससे वह कार्य होता है। कललरस (प्रकृति) में होनेकी कल्पना कर लेता था। यही योग्यता उसने यहां भी स्वर्च की है। उसकी योग्यता देखिए :—

हैकलने इससे पूर्व (गत पृष्ठोंमें) स्वयं बतलाया है कि एक घटक जीवोंमें इन्द्रियां और उनमें बने अन्तःसंस्कार नहीं होते। परन्तु यहां जब इन क्षुद्रजीवोंकी उत्पत्तिका प्रश्न कललरस में की हुई अब तक की कल्पनाओंमें हल न हो सका ; तो फिर नई कल्पनाएँ करलीं, जो ये है :— (पहली कल्पना) “एक घटक अणुजीवोंमें अन्तःसंस्कार समस्त मनोरसका सामान्य गुण है” ।

नोट—अन्तःसंस्कार कललरसका सामान्य गुण मान भी लें तो प्रश्न यह है कि इन क्षुद्र जन्तुओंके ही मनोरसका यह सामान्य गुण है। अथवा उन्नत जीवों मनुष्यादिके भी मनोरसों का सामान्य गुण है ? यदि कहों कि नहीं : तो क्या मनोरस भी अनेक प्रकारके होते हैं ? यदि उनका भी सामान्य गुण है : तो फिर उनमें इन्द्रियोंकी उत्पत्तिसे पहले अन्तःसंस्कार क्यों नहीं काम देते और क्यों उनमें इन्द्रियोंकी उत्पत्ति के बाद उनपर अन्तःसंस्कारोंकी उत्पत्ति बतलाई गई है ? साफ़ बात यह है कि हैकलको अनात्मवादी होनेमें इतनी कल्पनाएँ करना पड़ा है, कि उसे पूर्वापरका ज्ञान भी नहीं रहा। आगे चलिए। (दूसरी कल्पना) जब विभाग-द्वारा उत्पन्न हुए क्षुद्र जन्तुओंमें चित्रकारी होनेका कारण समझमें नहीं आया तो कितने विवशतापूर्ण शब्दोंमें कहा कि “इसका कारण यही बतलाया जा सकता है कि निर्माणकर्ता कललरसमें अन्तःसंस्कारकी वृत्ति होती है,

और परत्व, अपरत्व, संस्कार और उसके पुनरुद्भावनकी शक्ति होती है"। हैकलके असला शब्द ये है। (The construction is only intelligible when we attribute the faculty of presentation and indeed of a special reproduction of the plastic "feeling of distance" to the constructive protoplasm.) कललरस और हैकलके कल्पित मनोरसमें हैकलने एक-एक करके उन समस्त गुणोंकी कल्पनाएँ करला है, जो चेतन शक्तियों (आत्मा और परमात्मा) में होती हैं। कुछ भी हो उसको कल्पनाएँ चाहे कितनी ही करनी पड़ें परन्तु आत्मवादा होना स्वीकृत नहीं है। एक और अनोखापन उसकी कल्पनाओंमें यह है कि जहाँ जिस जन्तुका प्रश्न सामने होता है। यदि कोई बात उसकी उत्पत्ति आदिके संबंधमें नहीं समझमें आई तो उसी जन्तुके निर्माता कललरसमें वह नई-नई कल्पनाएँ कर लेता है। समस्त कललरसमें 'उन कल्पनाओंका सम्बन्ध नहीं होता। क्या इस विभाग-द्वारा उत्पत्ति करनेवाले जन्तुओंके निर्माता कललके उपादान और अन्य कललरसोंके उपादानोंमें कुछ भेद है? यदि नहीं तो उनके गुण और शक्तियोंमें भेद कैसा? अस्तु, ये ग्यारहवीं और बारहवीं कल्पनाएँ हैं, जो हैकलको अनात्मवादा होनेसे करनी पड़ें।

(२) तन्तुजालगत अन्तःसंस्कार समूह पिंड बनाकर रहनेवाले एकघटक अणुजीवों और स्पंज आदि संवेदन सूत्ररहित क्षुद्र अनेकघटक अणुजीवों तथा पौधोंके तन्तुजालमें हमें अन्तः-

संस्कारकी दूसरी श्रेणी मिलता है, इसमें बहुतसे परस्पर संबंध घटकोंका एक सामान्य मनोव्यापार देखा जाता है। इन जीवोंमें किसी एक इन्द्रियकी उत्तेजनासे प्रतिक्रियामात्र उत्पन्न होकर नहीं रह जाती, प्रत्युत तन्तुघटकोंके मनोरसमें संस्कार भा अंकित होते हैं।

(३) संवेदन सूत्रग्रन्थित अचेतन अंतःसंस्कार यह उन्नत कोटिका अंतःसंस्कार अनेक छोटे जन्तुओंमें देखा जाता है, उसका व्यापार मनोघटकमें ही होता है।

(४) मस्तिष्कघटकगत चेतन अन्न-संस्कारः उन्नत जीवोंमें अन्तर्बोध या चेतना मिलने लगती है। वह संवेदन सूत्र जालके मध्य भागके एक "विशिष्ट कारणकी एक विशेष वृत्ति" है। चेतन अंतःसंस्कारकी योजनाके लिये मस्तिष्कके विशेष-विशेष अवयव रूपांकित होते हैं। तब अंतःसंस्कार उन वृत्तियों या व्यापारोंके योग्य हो जाता है, जिन्हें विचार, चिंतन, बुद्धि और तर्क कहते हैं।

नोट—प्राणियोंके शरीर सम्बन्धी विकासमें जिसका चेतना-में सम्बन्ध नहीं है किसी अधिक विवादकी ज़रूरत नहीं। परन्तु जहां जड़में चेतनाकी उत्पत्ति बतलाई जाती है वहां स्थान विवादरूप है और उसमें हैकल भी कुछ-न-कुछ मनमानी स्वच्छन्द कल्पना किए बिना नहीं रहता। यहां भी चेतन अंतः-संस्कार (चेतना अथवा अन्तर्बोध) का वर्णन करते हुए हैकल कहता है कि "वह संवेदन सूत्रजालके मध्य-भागके एक विशिष्ट कारणकी एक विशेष वृत्ति है" (A special function of a certain central organ of the Nervous System)

आखिर वह कौनसा विशेष कारण है जिसकी विशेष वृत्ति चेतना है ? प्रत्येक शिक्षित पुरुष जानता है कि किसी वस्तुके अनाद्यत होने ही पर उसके लिए "एक खास" (A certain) शब्दका प्रयोग हुआ करता है। हैकलकी चेतनाका वास्तविक ज्ञान नहीं है कि वह किस कारणका गुण अथवा वृत्ति है। परन्तु अनात्मवादी होनेसे उसे चेतनाका पता देना चाहिए कि वह कहाँसे आई ? इसपर उसका उत्तर यह है कि वह "एक विशेष कारणका विशेष वृत्ति है" परन्तु यह कोई उत्तर नहीं है चेतनाके कारणको जो आत्मवादियोंके मतानुसार जीवात्मा है, न जाननेपर भी उसके मस्तिष्कमें होनेकी कल्पना कल्पनामात्र है। यह हैकलकी तरहही कल्पना है।

स्मृति अतःसंस्कारोंसे संबद्ध है जिसपर सारे उन्नत स्मृति मनोव्यापार अवलम्बित है। बाह्य विषयोंके इन्द्रियोपर जो प्रभाव पड़ते हैं, वे मनोस्मृति अतःसंस्कारके रूपमें जाकर उठकर जाते हैं, और स्मृति-द्वारा पुनरुद्भूत होते हैं। स्मृति की भी चार श्रेणियाँ हैं:

(१) घटकगत स्मृति:—“स्मृति सर्जीव द्रव्यका एक सामान्य गुण है” (अर्थात्) अचेतन स्मृति कललाणुकी एक सामान्य और व्यापक वृत्ति है. . . और क्रियावान कललरसके इन मूल कललाणु हा में रहती है. निजीव द्रव्यके अणुओंमें नहीं। यही सर्जीव और निजीव स्मृतिमें अन्तर है। वंशपरंपरा ही कललाणुकी धारणा या स्मृति है।

(२) तन्तुगतस्मृति:—घटकोंके सामने घटकजालमें भी अचेतन स्मृति पाई जाती है।

(३) उन्नत जीवोंकी चेतनारहित स्मृति हैं, जिनमें संवेदन सूत्रजाल रहते हैं ।

(४) चेतन स्मृतिका व्यापार मनुष्यादि उन्नत प्राणियोंके कुल मस्तिष्क घटकोंमें अन्तःसंस्कारोंके प्रतिबिम्ब पड़नेसे होता है । शूद्र प्रवृज जीवोंमें स्मृतिके जो व्यापार अचेतन रहते हैं, वे ही उन्नत अन्तःकरणवाले जीवोंमें चेतन हो जाते हैं ।

नोट—कललरस कहा जा चुका है कि एक चिपचिपा टाने-दार पदार्थ है, और बहुत-सी सूक्ष्म कणिकाओंके योगसे संघटित है । ये कणिकाएँ कई आकार-प्रकारकी होती हैं । इनमें जो विधान करनेवाली क्रियमाण मूल कणिकाएँ कही जाती हैं, उन्हीं कललाणुओंकी हैकलके मतानुसार, स्मृति एक सामान्य और व्यापक वृत्ति है । आत्मवादी आत्माके साथ ज्ञानरूपमें चित्त के आश्रय उसका रहना बतलाते हैं, और आत्माके साथ ही वह दूसरे शरीरोंमें जाती है । आत्मा चेतनता और स्वतन्त्रतामें जैसा कर्म करता है, तदनुसार उसका स्मरण भी रहता है । यही स्मृति है । परन्तु अनात्मवादी स्मृतिकी सत्ता स्थापना किस प्रकार करें ? उनके लिए एक मात्र उपाय यही था कि वे इसको भी प्राकृतिक अणुओंका गुण मान लेते । तदनुसार ही हैकलने स्मृतिको कललाणुओंकी सामान्य और अत्यन्त आवश्यक वृत्ति होनेकी कल्पना कर ली ; परन्तु प्रश्न तो यह है कि कललाणुओंमें वह गुण अथवा वृत्ति कहाँसे आई ? उन अणुओंके उपादान मौलिकोंमें तो उसका अभाव है । यह हैकलकी चौदहवीं कल्पना है ।

अंतःसंस्कारोंकी शृंगला यह (शृंगला) प्रारम्भमें अचेतन या भावयोजना रहती है, और प्रवृत्ति (Instinct) कहलाती है, फिर क्रमशः उन्नत जीवोंमें चेतन होकर बुद्धि कहलाती है, और जिसप्रकार शुद्ध बुद्धिकी विवेचनासे यह योजना व्यवस्थित होती जाती है। उसी हिसाबसे अंतःकरणकी वृत्ति पूर्णताको पहुँचती जाती है। स्वप्नमें यह विवेचना नहीं रहती।

नोट—स्वप्नमें यह विवेचना क्यों नहीं रहती? आत्मवादी तो इसका समाधान यह करने हैं कि आत्मा शरीर और इन्द्रियोंको आराम देनेकी दृष्टिसे उनसे काम लेना बंद कर देता है, इसलिए स्वप्न और सुषुप्त अवस्था प्राप्त हुआ करता है। अनात्मवादी इसका समाधान क्या कर सकते हैं? हैकल इस विषयमें चुप है। कदाचित् उसका ध्यान इस ओर न गया होगा, अन्यथा इसे भी वह मनोरमकी अत्यन्त आवश्यक और विशेष वृत्ति बतला देता।

भाषा वाणीकी योजना भी न्यूनाधिक क्रमसे जीवोंमें पाई जाती है। यह नहीं है कि एकमात्र मनुष्योंका ही प्राप्त हो। यह पूर्णरूपसे सिद्ध हो गया है कि जितनी समृद्ध भाषाएँ हैं, सबकी सार्थी-सादी कुछेक आदिम भाषाओंसे धीरे-धीरे उन्नति करते हुए बनी है।

नोट—अच्छा, तो वह आदिम भाषा या भाषाएँ कहाँसे आई? यह प्रश्न है जहाँ जड़वादियोंकी गाड़ी अटकती है। फ्रेटोने भाषाको नित्य बतलाया है। प्रो० मैक्समूलर भी इसकी पुष्टि करते हैं। महाभाष्यकार महामुनि पतञ्जलि और पूर्वमीमांसाकार

जैमिनि मुनिकों भी भाषाकी नित्यता स्वीकृत है ! अतः मानना पड़ेगा कि आदिम भाषा नित्य है, और अन्य भाषाएँ उसका रूपान्तर हैं, अर्थात् उसीके लॉट-फ़ोरमे बनी हैं ।

अंतःकरणके व्यापार

अंतःकरणके व्यापारोंके द्वारा जो उद्देश्य कहलाते हैं, मास्तिष्कके व्यापारों और शरीरके अन्य व्यापारों, (हृदयका धड़कन आदि) इन्द्रियों के ध्यान और पेशियोंकी गतिके बीचका सम्बन्ध अच्छा तरह स्पष्ट हो जाता है । समस्त उद्देश्य इन्द्रिय संवेदन और गति इन्हीं दो मूल व्यापारोंके योगसे प्रतिक्रिया और अन्तःसंस्कारों-द्वारा बने हैं । राग और द्वेषका अनुभव इन्द्रिय संवेदनके अंतर्गत और उनकी प्राप्ति और अप्राप्तिका उद्योग गतिके अन्तर्गत है । आकर्षण और विस्मर्जन इन्हीं दोनों क्रियाओंके द्वारा संकल्प की सृष्टि होती है, जो व्यक्तिका प्रधान लक्षण है । मनोवेग भी उद्देश्यका विस्तार-मात्र है ।

नोट—“रागद्वेषका अनुभव संवेदनाके अंतर्गत और उनके अनुकूल उद्योग करना यह गतिकी सामाग्री है, और यह संवेदन और गति कलत्तरसका धर्म है । इसका तात्पर्य यह है कि हैकल रागद्वेषको प्राकृतिक अणुओंके अंतर्गत मानता है, जैसा कि ग्रीसका एक प्राचीन जड़ार्थवादवादी दार्शनिक “इम्पीडोक्लेस” मानता था । अब जोसेफ मैकेवको बतलाना चाहिए कि क्या समझकर उसने यह दावा किया था कि हैकल अणुओंमें इच्छाद्वेष नहीं मानता था । (Religion of St. Oliver Lodge by J. McCabe P. 91).

परन्तु हमारा आश्रेय तो यह है कि जब कलत्तरसके उपादान

मौलिकोमे इच्छाद्वेष नहीं है, तो उनके कार्य कललरसादिमें भी कहाँसे आ सकते हैं। रागद्वेष यान्त्रिक कर्म नहीं हैं, किन्तु सुबोध प्राणाके भीतर विचारका परिणाम हैं। और इस विचारके लिए चेतनाका होना अनिवार्य है। तो जब तक परीक्षा करके यह न दिखला दिया जावे कि अमुक मौलिक अथवा कानिपय मौलिकोंके संग्राममें सदान और विचारका योग्यता है, उस समय तक रागद्वेषोंको कललरस अथवा उसके भी कार्यरूप किम्बा चमत्तुमें होनेका दावा, दावामात्र है। यह हैकलका पदहवीं कल्पना है।

संकल्प

“संकल्प, मनोरसका व्याकरण है”। जिन-जिन जीवोंमें प्रतिक्रियाका त्रिधात्मक कारण (मनोघटक) होता है उन्हींमें संकल्प नामक व्यापार देखा जाता है। शुद्धजीवोंमें यह संकल्प अचेतन रूपमें रहता है। जिन जीवोंमें चेतना होती है अर्थात् इन्द्रियोकी क्रियाओंका प्रतिविम्ब अन्तःकरणमें पड़ता है उन्हींमें संकल्प उस कोटिका देखा जाता है, जिनमें स्वतन्त्रताका आभास जान पड़ता है।

नोट—आकर्षण और विमर्जनके द्वारा संकल्पकी उत्पत्ति हैकलके मतानुसार होती है। परन्तु वह संकल्पको मनोरस का एक व्यापक गुण भी बतलाता है। उसके शब्द (हैकल की पुस्तकके अंगरेजी अनुवाद के) है:—

“It is a Universal property of living psychoplasm” जब संकल्प मनोरसका व्यापकगुण है तो “गुण गुणों से पृथक् नहीं होता” इस सिद्धान्तके अनुसार जहाँ भी मनोरस

हो, वहां उसमें संकल्प (उसका व्यापक गुण) भी होना चाहिए। और मनोरससे शून्य तो क्षुद्र एकाणु जंतु भी नहीं। इसलिए संकल्पकी सत्ता उसमें भी होनी चाहिए। इस कठिनाई से बचनेके लिए हैकलने दूसरा पैतरा बदला। उसने कहा कि क्षुद्र जन्तुओंमें संकल्प अचेतन रूपमें रहता है! प्रश्न यह है कि अचेतन रूपमें क्यों रहता है? जिस संकल्पको मनोरसका व्यापक गुण बतलाया जाता है, वह संकल्प चेतन है या अचेतन? यदि कहो कि अचेतन, तो उन्नत जीवोंमें एक तीसरे कल्पित मनोघटकके उत्पन्न होनेमें चेतन कैसे होसकता है? मनोघटक भी तो अचेतन ही है, जब यहाँ सभी अवयवों में चेतनाका अभावहै, तो अवयवोंमें चेतनाका भाव कहाँ से आसकता है? यदि कहो कि (वह व्यापक गुण रूप संकल्प) चेतन है, तो फिर क्षुद्र जन्तुओंमें अचेतन रूपमें कैसे रह सकता है?

इसप्रकारके तर्कों से सम्मुख न टहरनेवाला कल्पनाओं से एकाणुवादकी स्थापना नहीं हो सकती। कल्लरस अथवा मनोरस जड़प्रकृतिका कार्य न हुआ "मानमर्ताका पिटारा" हो गया कि जिसमेंसे सब कुछ (जड़ हो या चेतन) आवश्यकतानुसार निकल सकता है। अतः संकल्प न मनोरसका व्यापक गुण है और न आकर्षण और विसर्जनमें पैदा होता है, किन्तु जीवात्माकी सज्जन और स्वतन्त्रतापूर्ण क्रिया है, जिसको जीवात्मा विचारपूर्वक जहाँ चाहता है, काममें लाता और ला सकता है। जीवात्माकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार किए बिना संकल्प का प्रश्न एकाणुवादसे हल नहीं हो सकता। संकल्पके

मनोरसके व्यापक गुण होनेकी मालहवीं कल्पना है, जो अनात्मवादी होनेमें करनी पड़ी।

मनुष्यादि समुन्नत जीवोंके मनोव्यापार एक मनोव्यापार मानसिक यन्त्र या करण-द्वारा होते हैं। इस यंत्र के तीन मुख्य भाग हैं।

(१) बाह्यकरण—(इन्द्रियाँ) जिनसे संवेदन होता है।

(२) पेशियाँ—जिनसे गति होती है।

(४) संवेदनसूत्र—जो इन दोनोंके बीच मस्तिष्करूपी प्रधान कारणके द्वारा सम्बन्ध स्थापित करने है। मनोव्यापार के साधन, इस आन्तरिक यन्त्रकी उपमा, तारसे दी जाया करती है। संवेदनसूत्र तार है, इन्द्रियाँ छोटे स्टेशन है, मस्तिष्क सदर स्टेशन है, गतिवाहक सूत्र संकल्पके आदेशका सूत्रकेन्द्र या मस्तिष्क वहिर्मुख-द्वारा पेशियोंतक पहुँचते है, जिनके आकुंचनसे अंगोंमें गति होती है। संवेदन वाहक-सूत्र इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त संवेदनाका अन्तर्मुख गतिसे मस्तिष्कमें पहुँचते है। मस्तिष्क अन्तःकरणरूपी मनोव्यापार केन्द्र ग्रन्थिमय होता है। इन सूत्र-ग्रन्थियोंके घटक सजीव द्रव्यके सबसे समुन्नत अंग हैं। इनके द्वारा इन्द्रियों और पेशियोंके बीच व्यापार सम्बन्ध तो चलता ही है इसके अतिरिक्त भाव ग्रहण, और विवेचना आदि अनेक मनोव्यापार होते हैं।

नोट—मनोव्यापारका उपर्युक्त विवरण जहाँतक यान्त्रिक है निर्विवाद है। आत्मवादी और अनात्मवादी दोनोंको एक जैसा स्वीकृत है। परन्तु उपर्युक्त तारधर और स्टेशन बिना

स्टेशन मास्टरके ही वर्णित हुआ है। स्टेशन मास्टरका स्थान रिक्त है, जिसकी आज्ञासे यह समस्त यान्त्रिक कार्य होता है ! हैकल उत्तर दे सकता है कि संकल्पके आदेशसे ये सब काम होते हैं अतः यही स्टेशन मास्टर है। परन्तु संकल्प तो अपनी सत्ताकी दृष्टिसे स्वयं जड़ अथवा यंत्रवत् है। संकल्पकी डोरीके लिए हिलानेवालेकी जरूरत है। यदि कहो कि संकल्प स्वयं अपनी डोरी हिलाता है, तो अबतकके सारे वर्णनमें यह बात नहीं बतलाई गई कि 'अमुक काम करना चाहिए अमुक नहीं' यह ज्ञान कहाँसे और किसप्रकार से संकल्पमें आता है। मुख्य प्रश्न यही है जो पहले नाट्योंमें भी बतलाया जा चुका है इसका उत्तर हैकलके समस्त ग्रन्थके पढ़ जानेसे भी नहीं मिलता।

चेतना एक प्रकारकी अन्तर्दृष्टि है, वह दो प्रकारकी चेतना होती है (१) अन्तर्मुख (२) बहिर्मुख। चेतनाका क्षेत्र संकुचित होता है। उसमें हमारे इन्द्रियानुभव संस्कार और संकल्प प्रतिबिम्बित होते हैं। चेतनाका परिज्ञान हमें चेतनाके ही-द्वारा हो सकता है। उस ही वैज्ञानिक परीक्षामें यही बड़ी भारी अड़चन है। परीक्षक भी वही परीक्ष्य भी वही दृष्टा अपना ही प्रतिबिम्ब अपनी अन्तःप्रकृतिमें डालकर निरीक्षण में प्रवृत्त होता है। अतः हमें दूसरोंकी चेतनाका परीक्षात्मक बोध पूर-पूर कभी नहीं हो सकता। चेतनासम्बन्धी दो प्रकार के वाद हैं (१) "मर्वातिगिक" अथवा आत्माका शरीरसे भिन्न स्वतन्त्र सत्तावाला हाना (२) शरीर धर्मवाद" अथवा शरीरके मेलका परिणाम। जड़द्वैतवाद दूसरे वादका पोषक

है। चेतनाका अधिष्ठान मस्तिष्कके भूरे रंगवाले मज्जापटलका एक विशेष भाग है।

नोट—चेतनाके उपर्युक्त विवरणोंके साथ ही हैकलका दार्शनिक (जड़ाद्वैतवाद, जहाँ तक उसका सम्बन्ध शरीर रचना से है) समाप्त होता है। हैकलको जड़ाद्वैतवादका भारी भवन बनानेके बाद पता चला कि यह भवन निराधार है। इसकी बुनियाद कुछ नहीं, अपितु पृथ्वीसे चार इंचकी ऊँचाई पर इस भवनकी बुनियाद है जिससे यह उठर नहीं सकता और इसका गिरना अनिवार्य है। इस सूत्रकी व्याख्या यह है कि चेतनाका विवरण देने हुए हैकलने दो बातें स्वीकारकी है: -

(१) अपनेसे भिन्न प्राणियोंकी चेतना परीक्षात्मक बांध पूरा-पूरा कभी नहीं हो सकता।*

(२) अपनी चेतनाके सम्बन्धमे वह (हैकल) कहता है कि चेतनाका परिज्ञान हमें चेतनाके ही-द्वारा हो सकता है। यही उसकी वैज्ञानिक परीक्षामें बड़ी भारी अड़चन है†

जब न अन्योकी चेतनाकी परीक्षा हो सकती है और न अपनी चेतनाकी, तो फिर हमें चेतनाका परीक्षात्मक

* (१) अंगरेजी भाषाके शब्द जो हैकलके जर्मनी शब्दों के अनुवाद हैं, ये हैं :--

"Thus we can never have a complete objective certainty of the consciousness of others.

† The only source of our knowledge of consciousness, is that faculty itself; that is the chief

बोध हो ही नहीं सकता, यही स्वीकार करनेके बाद हैकल का इस शिक्षाका कि आत्मा (चेतना) शरीरके मेलका परिणाम है, क्या मूल्य शेष रह जाता है ! आत्मवाद और अनात्म (जड़द्वैत) वादमें अन्तर तो केवल इतना ही है कि प्रथमवाद आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता है, जब कि द्वितीयवाद उसे प्राणियोंके शरीरके मेलका परिणाम बनलाता है । और इन दोनों वादोंके निर्णयका मूलाधार आत्मा (चेतना का परीक्षात्मक) बोध होता है । जड़द्वैतवादका आचार्य्य (हैकल) स्वीकार करता है कि मनुष्यको (चेतनाका) बोध नहीं हो सकता, तो बोध न होनेपर भी (चेतनाके सम्बन्धमें) किसप्रकार कोई सम्मति दी जा सकती है ? ऐसी अवस्थामें हैकलका यह कहना कि आत्मा (चेतना) शरीरके मेलका परिणाम है कल्पनामात्र है, और यह हैकलकी सत्रहवीं कल्पना है ।



cause of the extraordinary difficulty of
subjecting it to scientific research (Riddle of
the Universe by Ernest Haeckel P. 14, & 15.

पाँचवाँ परिच्छेद ।

यद्यपि जब हमने देखा लिया कि जीवन न ब्रह्म है न प्राकृतिक तत्वोंके मेलका परिणाम तो उचित रीतिसे जो परिणाम निकाला जा सकता है वह केवल यह कि जावका स्वतंत्र सत्ता है और वह प्रकृति और ब्रह्म दोनोंसे भिन्न वस्तु है तब भी कुछेक विचार उपस्थित किए जाते हैं जो जीवकी स्वतन्त्र सत्ता प्रमाणित करते हैं:—

जब बाह्य और अन्तःकरण सभी क्लेशोक्तार्थ या पहला विचार

समाधीके द्वारा बेकार कर दिए जाते हैं तब भी प्राणियोंके शरीर जीवित प्राणियोंके सदृश बने रहते हैं न बेकार होते न सड़ते-गलते हैं । इस लिए किसी ऐसा सत्ताका शरीरमें मौजूद रहना विवश होकर मानना पड़ता है जो इन्द्रियोंसे भिन्न हो और जिसकी उपस्थितिका यह फल होता है कि इन्द्रियोंके बेकार होनेपर भी शरीर सड़ने-गलनेसे सुरक्षित रहता है । समाधिस्थ पुरुषोंके अनेक उदाहरण अब भी मिलते हैं । महागजा रणजीतसिंहका किया हुआ परीक्षण प्रसिद्ध ही है जिसमें एक योगी ४० दिन तक समाधिस्थ रहा और एक सन्दूक के भीतर बन्द करके रक्खा गया था और जिसकी कुंजी महाराज के कोषाध्यक्षके पास रखी गई थी । यह परीक्षा अनेक अंगरेज़ पॉलिटिकल एजन्ट आदिकी उपस्थितिमें की गई थी । जिनमें एक सिविल सरजन भी था और जिसने ४० वें दिन सन्दूक खुलनेपर डाक्टरों जांच करके योगीको मुरदा बतलाया था । परंतु थोड़ा ही देरमें आवश्यक मालिश आदि करनेके बाद वह योगी खोलकर सबको देखने और बातें करने लगा ।

दूसरा विचार जब मनुष्य जागृत और स्वप्नावस्थामें न होकर सुषुप्तावस्था (गह्र निद्रा) में होता है जिस अवस्थामें मनादि सभी इन्द्रियां अचेत रहती हैं तो जागनेपर सोनेवाला अनुभव करता है कि वह बहुत आगमसे सोया यह अनुभव करनेवाला ही आत्मा है।

तीसरा विचार शरीर वैज्ञानिक बतलाते हैं कि मनुष्यका समस्त शरीर सात या बारह वर्षके बाद बिलकुल नया हो जाता है। कुछ भी पुराने परमाणु बाकी नहीं रहते परन्तु मनुष्यको बुढ़ापेमें भी लड़कपनकी बातें याद रहती हैं। यह याद रखनेवाला स्वीकार करना पड़ता है कि आत्मा ही है क्योंकि शारीरिक अवयव तो उस समयके बाकी नहीं।

चौथा विचार "दूरबीन" या "गुब्बारीन" के द्वारा देखनेसे दूरकी चीज़ पास या छोटी वस्तु बड़ी दिखाई देती है—इन्द्रियोंके ज्ञानकी सीमा तो उतनी ही है जितना ज्ञान उन्हें उनके द्वारा प्राप्त होता है। परन्तु मनुष्य समझता है कि वास्तवमें दिखाई देनेवाली वस्तु न तो उतनी पास ही है और न उतनी बड़ी ही दिखाई देती है—यह समझनेवाला आत्मा ही है।

पांचवा विचार दो बालकोंमें जो एक ही परस्थितिमें रहते और शिक्षा पाते हैं। एक योग्य बन जाता है और दूसरा अयोग्य रह जाते हैं। इसका कारण पूर्वजन्मके संस्कार बतलाए जाते हैं परन्तु पिछले संस्कार किसप्रकार नए शरीरमें आ सकते हैं यदि कोई सत्ता उनका आश्रय देनेवाली न हो—इसी आश्रयदात्री सत्ताका नाम जीवात्मा है।

छठा विचार मौनका भय सबसे बड़ा भय है—शरीर नष्ट होनेसे मृत्युके भयसे ग्रस्त रहता है परन्तु आत्मिकबल प्राप्त होनेसे मनुष्य इस भयसे रहित और निर्भीक हो जाता है। आत्मिकबल प्राप्त होनेसे क्यों मनुष्य निर्भीक हो जाता है। इसका कारण अमर आत्माका शरीरमें होना ही है—आत्मा अमर होनेसे मृत्युके भयसे स्वतन्त्र होता है और आत्मिकबल प्राप्त होनेका भाव यह है कि आत्माके ऊपरसे प्रकृतिक आवरणका दूर हो जाना—आवरण हटनेसे भय भी, जो उसी आवरणके साथ था, हट जाता है।

सातवां विचार मनुष्य जब कोई पापकर्म करना चाहता है तो शरीरके भीतरसे उस पापकर्मके रोकनेवाली प्रेरणा उत्पन्न होती है जिसको अन्तःकरण वृत्ति (Conscience) कहते हैं—यह वृत्ति भी आत्म-सत्ताका बोध करती है।

आठवां विचार मनुष्य अपने मस्तिष्कको स्वाध्यायमें लगाता अथवा अन्य इन्द्रियोंको अन्य किसी कार्यमें नियुक्त करता है। मस्तिष्क या इन्द्रियोंके थक जानेपर भी मनुष्यमें उस काम (स्वाध्यायादि) के करनेकी इच्छा बनी रहती है। इन्द्रियां तो थक कर विराम चाहती हैं। परन्तु भीतर की इच्छा उन्हें काममें लगाए रखना चाहती है। यह भीतर की इच्छा उसी आत्माकी सत्ताकी साक्षी देती है जो ज्ञानवृद्धिके लिए इन्द्रियोंको विश्राम नहीं लेने देता।

नवां विचार यह स्पष्ट है कि एकान्तवाससे मानसिकोन्नति होती है। क्यों मानसिकोन्नति होती है? इसका

कारण यह है कि एकान्तवासमें इन्द्रियोंको दौड़-धूप करनेका अवसर बहुत थोड़ा रह जाता है और इसलिए जो भातरी शक्ति इन्द्रियोंके काममें लगे रहनेमें निरंतर उनके साथ लगी रहती थी वह अब सब भीतर ही एकत्रित होता है। इसीका नाम मानसिक बल है। यह बल (शक्ति) निराश्रित नहीं रह सकती। इसका आश्रयदाता आत्मा ही है जिसके स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न हैं।

शरीर जिन प्राकृतिक अणुओंसे बना है, विज्ञानने हमें विचार प्रमाणित कर दिया है कि वे नष्ट नहीं होते उनकी केवल अवस्था परिवर्तन होता रहती है। जब आत्माका अपेक्षा बहुत स्थूल प्रकृति ही अनश्वर है, तो आत्माके अमर होनेमें सन्देह ही क्या हो सकता है। इसलिए उपनिषदों और गीता अदिमें जीवात्माको अमर कहा गया है ॥

नित्य होनेमें जीवको अनेक बार भिन्न भिन्न ग्यारहवां विचार योनियोंमें उत्पन्न होना पड़ता है। इसपर पुनर्जन्मके विरोधी आक्षेप करते हैं कि पिछले जन्म की

*न जायते म्रियतेवा विपरिचिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

कठोपनिषद् ३।१८

अनुवाद - जीवात्मा न उत्पन्न होता न मरता न वह किसी में उत्पन्न हुआ न उससे कोई उत्पन्न होता है। वह अजन्मा, नित्य, सनातन और अनादि है शरीरके मारे जानेसे नहीं मरता।

बात याद क्यों नहीं रहती ? बेशक याद नहीं रहती, परन्तु अभ्यास करनेसे याद आसकती है। मनुष्य जब एक शरीरको छाड़ता है तो उसके सब संस्कारादि और पिछले कार्योंकी स्मृति चिन्तने मूलाधारके आश्रित होकर आत्माके साथ दूसरे शरीरमें चली जाती है—कुंडलिनाके जाग्रत करनेसे, जिसका सम्बन्ध मूलाधारसे है, पिछले जन्मकी बात अभ्यास करनेवालेपर प्रकट हो जाती है। इसलिए यह आशय वृथा है। अनेक गणवाध बालकों को भी गणबुधमें गपाया है कि पिछले जन्मकी स्मृति रहती है।

ये कतिपय विचार यहाँ रखे गए हैं। इन और ऐसे ही अन्य अनेक विचारोंपर दृष्टिपान करनेसे आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता और उसके नित्यत्वमें कुछ भी सन्देह नहीं रहता। अस्तु। इस प्रकरणको समाप्त करके आत्मासे संबंधित कुछेक और भी बातें हैं। उनका अब उल्लेख किया जाता है, परन्तु उनका उल्लेख करनेसे पूर्व एक बातका यहाँ, इसी प्रकरण के साथ स्फुटीकरण कर देना कदाचित् उचित होगा। कुछेक सज्जन, जब उन्हें आत्माकी सत्ता माननेके लिए विवश होना पड़ता है, तो वह प्रश्न करते हैं कि आत्माको सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्राकृतिक अवयवों (बुद्धि और मनादि) से किस प्रकार सम्बन्ध जुड़ा हुआ कल्पना किया जा सकता है जिससे आत्मा उनसे काम ले सके। ऐसा प्रश्न करनेवाले चाहते हैं कि उन्हें ज्ञान तंतुओंके सदृश कोई संबंध आत्मा और प्रकृतिके मध्यवर्ती बतला दिया जावे। परन्तु वे, एक बात है जिसपर ध्यान नहीं देते और वह यह है कि आत्मा तो

अप्राकृतिक है। परन्तु बुद्धि आदि प्राकृतिक हैं। ऐसी अवस्थासे उनकी किसी प्राकृतिक सम्बन्धके खोजकी इच्छा दुरच्छामात्र है। आक्षेपका उत्तर यह है कि आत्मा अपनी शक्तियों ज्ञान-प्रयत्नमें अप्राकृतिक होनेसे ऐसी असाधारणता रखता है जो प्राकृतिक वस्तुओंमें नहीं पाई जाती और उन्हीं शक्तियोंके अनुभवसे बुद्धि मनादिको प्रभावित करके उनसे यथेष्ट काम लेता है। इस कलानामें कोई वैज्ञानिक आपत्ति नहीं उठाई जा सकती क्योंकि विज्ञानप्रकृतिसे सम्बन्धित विद्या है और आत्मा अप्राकृतिक होनेसे उसके अन्वेषणकी सीमासे बाहिर है।



चौथा अध्याय



पहिला परिच्छेद

॥ १ ॥

आत्ममन्वर्था विविध विषय ।

प्रो० हैकलने रॉबर्ट मेयर (Robert Mayer) के
अणुवाद
आविष्कृत "प्रकृति-स्थिति-नियम" और लाव-
एजियर (Lavoisier) के अन्वेषित "शक्ति-स्थिति-नियम"
दोनोंको मिलाकर उसका नाम "द्रव्य-नियम" रखवा । यही
"द्रव्य-नियम" हैकलके मतानुसार समस्त जड़ और चेतन
जगतका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है । सांख्याचार्य कपिल
मुनिने जगत्में दो सत्ताएँ देवीं थीं, पुरुष और प्रकृति ।
उनकी सम्मतिमें उन्हीं दो की सत्तासे समस्त जगत् बनता
और काम करता है । इन दोनों सत्ताओंका महामुनि कपिलने
नित्य बतलाया था । सांख्यदर्शनके प्रचलित होनेके बाद तीन
प्रकारसे तीन भागोंमें होकर कपिलका दर्शन प्रचलित हुआ ।

(१) पहले समुदायमें तो वे ही पुरुष हैं जो सांख्यके
आदर्शानुसार पुरुष और प्रकृति दोनोंको नित्य जानते और
मानते रहे ।

(२) दूसरे समुदायमें वे पुरुष हुए जिन्होंने प्रकृतिकी उपेक्षा करके केवल पुरुषकी एक सत्ताको नित्य ठहराया और पुरुष ही का समस्त जगत्का अभिन्नमित्तोपादान कारण बतलाया । गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य प्रभृति तथा कतिपय पश्चिमी दार्शनिक इसी पक्षके पोषक थे ।

(३) तीसरे समुदायमें वे पुरुष हुए जिन्होंने पुरुषकी अवहेलना करके केवल प्रकृति ही को नित्य ठहराया और उसीको समस्त चेतन और जड़ जगत्का अभिन्नमित्तोपादान कारण माना । प्रो० हैकल इसी तीसरे समुदायके अनुयायी है । प्रोफ़ेसर हैकलका यहाँ एक द्रव्यवाद है; जिसके वह प्रचारक थे । हैकलने इस एक द्रव्य (प्रकृति) को नित्य मान है और द्रव्य और शक्ति दोनोंको उसका गुण ठहराकर बतलाया है कि यह द्रव्य अनादिकालमें कायम कर रहा है । जीवनमें मृत्यु, विकास स ह्रास, उसमें समय-समयपर हुए परिणामोंके फल है ।

इसमें थोड़ा विचार करना होगा ।
अणुवाद की समीक्षा

हैकलका एक द्रव्य, प्रकृति और शक्ति दोनोंका संघात है । देखना यह है कि प्रकृति और शक्तिका सामर्थ्य क्या है, और उनकी स्थितियोंके तात्पर्य क्या है ।

पहले "प्रकृति-स्थिति" ही का लीजिए । प्रकृति-स्थिति

स्थितिका तात्पर्य यह है कि भौतिक, रासायनिक अथवा यान्त्रिक किसी भी व्यवहारमें प्रकृतिके अणुनालके हिसाबसे जिस मात्रामें काममें आते हैं वह मात्रा (तोल हिसाबसे) ज्योंकी त्यों बनी रहती है । न्यूनाधिक नहीं होता । रूप परिवर्तन अवश्य हो जाया करता है वैज्ञानिक दृष्टिसे यही

शक्ति-स्थितिका तात्पर्य है। प्राकृतिक अणुओंके सम्बन्धमें जो नई-नई खोजें हुई हैं, उनमें प्रकट होता है कि परमाणु प्रकृतिका सबसे अधिक सूक्ष्मांश नहीं है जैसा कि अवनत वैज्ञानिक समझते थे। वह विद्युत्कणोंका समुदाय है। उनके भीतर एक केन्द्र होता है और विद्युत्कण उसके चारों ओर धर्म-प्रकार नियमपूर्वक परिभ्रमण करते हैं, जिसप्रकार पृथ्वी आदि ग्रह सूर्यके चारों ओर घूमते हैं। सर आलिवर लांजका कथन है कि सूर्यमण्डलके अत्यन्त सूक्ष्मरूप परमाणु है। उनके भीतर समस्त कार्य उसप्रकार होते हैं, जिसप्रकार सूर्यमण्डलके अन्तर्गत। *नवीन खोजोंमें प्रकट दो भागोंमें विभक्त हुई हैं—व्यक्त और अव्यक्त। व्यक्त प्रकृतिका सबसे अधिक सूक्ष्म अंश विद्युत्कण † है। परन्तु प्रोफ़ेसर बीटमला विद्युत्कणोंकी भी आकाश (Ether) का परिणाम समझते हैं। परन्तु इस आकाशके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंका थोड़ा ज्ञान है; इस बातकी खुले तौरमें वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। ‡ कलतक जो द्रव्य मौलिक समझे जाते थे और जिनकी संख्या लगभग ८० के पहुँच चुका थी; अब वह सब विद्युत्कणका समुदाय समझे जाने लगे हैं। वैज्ञानिकोंका कथन है कि हाईड्रोजनके एक परमाणुका एक हजारवाँ भाग विद्युत्कणकी मात्रा समझी

* Science and Religion by Seven men of Science P. 48.

† Do. P. 76.

Do P. 63.

‡ Evolution of Matter by Gustave Le Bon.

जाती है। परन्तु अब विद्युत्कणवाद भी बदलता दिखलाई देता है। सर ऑलिवर लॉजने हालमें अपने एक व्याख्यान में कहा है कि अबतक समझा जाता था कि विद्युत्कणसे प्रकाश उत्पन्न होता था परन्तु अब मालूम यह होता है कि प्रकाशसे विद्युत्कण उत्पन्न होने हैं और इस प्रकार अग्नि ही प्रकृतिका आदिम मूल तत्त्व प्रतीत होता है (Vide the times Educational Supplement quoted in the Vedic Magazine for October 1923.) इसप्रकार व्यक्त प्रकृति, जिससे “कपिल” ने (व्यक्ति) “विकृति” नाम दिया था, प्रचलित विज्ञानमें कतिपय श्रेणियोंमें—विभक्त है। सबसे सूक्ष्म भाग आकाश (ईश्वर) हैं, आकाशमें विद्युत्कण, विद्युत्कणसे परमाणु, परमाणुसे अणु और अणुओंसे पञ्चभूतोंकी रचना होती है। अभी प्रचलित विज्ञानने प्रकृतिके सम्बन्धमें उतना ज्ञान भी प्राप्त नहीं किया है, जितनेका वर्णन कपिल सहस्रोंवर्ष पूर्व कर चुका है। वह अव्यक्त प्रकृतिको अभी कुछ नहीं जानता, उसे अभी पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय, मन, अहंकार और महत्तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना शेष है।

गति-शक्तिस्थिति अस्तु। प्रकृतिकी बात हुई अब गति-शक्तिपर विचार आवश्यक है:—

प्रकाश, ताप, ध्वनि, भ्रमण, कम्पन, लचदार, आकर्षण, आकर्षण पार्थक्य, विद्युत्, प्रवाह, गमायनिक स्नहाकर्षण,

शक्तियाँ, गतिशक्तिमे समाविष्ट समझी जाती हैं * । वैज्ञानिकोमे से एकने यह प्रश्न उठाया था कि क्या जीवन गति-शक्तिके अन्तर्गत है । लॉजका उत्तर है कि कदापि नहीं । उनके शब्द ये हैं "I should give the answer decidedly No"† अभी कुछ पूर्व जवतक गति शक्तिमे ताप सम्मिलित नहीं समझा जाता था "गति-शक्ति" की सीमा ताप-शून्य ही थी । संभव है इसी तापकी भांति किसी और शक्तिका ज्ञान वैज्ञानिकोंको हो जावे अथवा क्लिष्ट कल्पना ही के तौरपर कल्पना करलीजिए कि जीवन भी गतिशक्तिके अंतर्गत समझा जाने लगा । तो ऐसी अवस्थामे गतिशक्तिका ज्ञान भी प्रकृतिकी भांति अभी तक अधूरा ही है । ऐसी अवस्थामे हैकलका इन दोनों शक्तियोंका पूर्ण समझकर उन्हें मिल-मिला कर एक द्रव्यवादका नया पंथ खड़ा करना और उसे निव्य उहराना वैज्ञानिक दृष्टिसे कहाँतक उचित और युक्ति-युक्त समझा जा सकता है । इसका अनुमान इसी एक उदाहरणसे किया जा सकता है कि प्रोफ़ेसर वॉटमलीने उसे (हैकलको) असामयिक (out of date) कहा है ।

प्रकृति और शक्तिमे
आत्मा पृथक् है ।

गति-शक्तिके सम्बन्धमें कुछ एक पुरुष यह
भूल करते है कि इस शक्तिमे, अधिष्ठानृत्व,
निर्देशक और नियन्त्रण शक्तियोंके होनेकी

* Life and the After by Sir Oliver Lodge p. 11

† Life and the After by Sir Oliver Lodge p. 11.

[Science and Religion by Seven men of
Science p. 36

संभावना है। सर ऑलिवर लॉजका कथन है* कि गति-शक्तिका इस विषयसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। गति शक्तिका सम्बन्ध केवलमात्र है। “जीवन” प्रकृति और गतिशक्तिका सीमामें नहीं है और इसीलिए विज्ञानका उसका कुछ ज्ञान भी नहीं है †

इसी प्रश्नके उत्तरमें कि जीवनका ज्ञान-विज्ञानको है या नहीं। सर ऑलिवर लॉज कहते हैं कि विज्ञानका उत्तर वहा है जो ड्यू बोइस रेमोंड (Du. Bois Raymond) ने दिया था कि “हम कुछ नहीं जानते” (Ignoramus) परन्तु रेमोंडका अगला वाक्य कि “हम कभी जानेंगे भी नहीं” (Ignorabimus) स्वीकार करने योग्य नहीं है। यह बात स्वयं हैकलको भी स्वीकार है कि जीवन विज्ञानका विषय नहीं है। फिर भी उसने विज्ञान ही के नाममें उसके प्रकृति जन्य होनेके सिद्ध करनेका साहस किया है। उसके शब्द ये हैं - ‘The freedom of the will is not an object’ critical Scientific inquiry at all § अर्थात् इच्छा

* Life & Matter by Sir Oliver Lodge p. 11 & 12
लॉज महोदयके शब्द ये हैं:— Really it has nothing to say on these topics, it relates to amount alone”

† प्रकृति और जीवनके सम्बन्धमें एक मनोरंजक प्रश्नोत्तर नीचे दिया जाता है:—

What is matter ? No mind. What is mind ? No matter.

‡ Life and matter by Sir O. Lodge P. 12.

§ Riddle of the Universe by Earnest Haeckle P. 11.

शक्ति (जीव) की स्वतंत्रता, कदापि विवेचनात्मक, वैज्ञानिक परीक्षाका विषय नहीं है ।” जब किसी विषयके लिए कहा जाता है कि विज्ञानकी सीमामें है या नहीं तो स्वाभाविक रीतिसे यह प्रश्न उठता है कि विज्ञानकी सीमा क्या है ?

सर ऑलिवर इस प्रश्नका यह उत्तर देते हैं कि विज्ञानकी सीमा “दृश्य वस्तुओंका प्रकटीकरण ही विज्ञानका आधार है परन्तु वह (प्रकटीकरण) प्रकृति और गतिशक्तिही सीमामें रहते हुए करना चाहिये ।” और यह भी कि “विज्ञानका काम केवल यह है कि जो कुछ हुआ है उसे बतलाए । निषेध करना उसका काम नहीं है” *

डिक्शनरियोंमें विज्ञानको व्यवस्थित ज्ञान (Systematized knowledge) कहा जाता है । हक्सलेके मतानुसार कृतपरिचय और व्यवस्थित विवेकका नाम ‘Trained and-Organized common sense’) विज्ञान है। प्रोफ़ेसर जेम्ज़-ऑर्थरकी सम्मति है कि विज्ञानका मुख्योद्देश्य यह है कि ज्ञानव्य जगत्का संक्षिप्त विवरण देवे । जगत्में घटित घटनाओंसे जानकारी प्राप्त करके अन्वेषक उ हैं क्रमबद्ध करता है, और उनमें सामान्य निर्देशक (Common denominator) का पता लग जाता है और फिर उन घटनाओंके घटित होनेकी अवस्थाओंपर विचार करके उन्हें “यथासंभव सुगम रीतिसे प्रकट करके उनसे सामान्य निषर्णोंको स्थापना करता है और अन्तको उन्हींका

नाम प्राकृतिक नियम रखता है । * इस सबका परिणाम “बौटमली” की सम्मतिके अनुसार यह है कि विज्ञान निर्देशक नियमोंका नाम है । विज्ञान हमको “कैसे” का उत्तर देता है “क्यों” का नहीं, अर्थात् जगत्की किसी घटनाके सम्बन्धमें यह ज्ञान देगा कि किसप्रकार यह घटित हुई । यह क्यों घटित हुई, इसका उत्तर देना विज्ञानकी सीमामें बाहर है—“क्यों”का उत्तर देना “मज़हब” का काम है । लॉज, हक्सले, और बौटमली सबकी सम्मतियोंको एकत्र करनेमें विज्ञानको सीमा यह निर्धारित होती है कि “वह अपनेको प्रकृति और गतिशक्तिको सीमामें रखते हुए विश्वमें घटित घटनाओंको बतला देवे कि किस नियममें और किसप्रकारमें घटित हुई ।”

हैकलका एक द्रव्यवाद अब विज्ञानकी इसी निश्चित सीमाके विज्ञानकी सीमामें भीतर देखना चाहिए कि हैकलका एक बाहर है । द्रव्यवाद कौनसा स्थान रखता है अथवा सर्वथा इस सीमाके बाहर है । हैकलने अपने वादके प्रकाशमें कुछेक सिद्धान्त स्थिर किए हैं । वे ये हैं:— † (१) यह जगत् नित्य और असीम है । (२) जगत्का द्रव्य (वही हैकलका एक द्रव्य) अपने दो गुणों—प्रकृति और गतिशक्ति के साथ नित्य है और अनादिकालमें गतिमें हैं । (३) यह गति अष्टांशः क्रम के साथ असीम कालमें काम कर रही है । सामयिक परिवर्तन (जीवन, करण, विकास, हास) इसके द्वारा हुआ करते हैं ।

* Science and Religion by Seven Men of Science P. 60.

† Riddle of the Universe by Ernest Haeckel. P. 11

(४) समस्त प्राणा-अप्राणा जो विश्वमें फैले हुए हैं, सभी एक द्रव्यपादमें शामिल और उसीके आधीन हैं । (५) हमारा सूर्य असंख्य नष्ट होनेवाले पिण्डोंमेंसे एक है और हमारी पृथ्वी भी ऐसे ही छोटे-छोटे पिण्डों (नष्ट होनेवालों) में से है, जो सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण करते हैं । (६) हमारी पृथ्वी चिरकाल तक ठंडी होता रही थी तब उसपर जलका प्रादुर्भाव हुआ । (७) एक प्रकारके मूल जीवमें क्रमशः असंख्य योनियोंके उत्पन्न होनेका क्रम शुरू हो गया । (८) इस जीवात्पत्ति परम्पराके पिछले स्तरोंमें जितने जीव उत्पन्न हुए, गढ़वाले प्राणी गुणात्कर्ष-द्वारा सबसे बढ़ गए । (९) इन गढ़वाले प्राणियों की सबसे प्रधान शाखा दूध पिलानेवाले जीव थलचरों और सरीसृपोंमें उत्पन्न हुए । (१०) इन दूध पिलानेवाले जीवोंमें सबसे उन्नत और पूर्णताप्राप्त कि पुरुष (Order of primates) जो लगभग ३० लाख वर्षके हुए होंगे, कुछ जरायुज जंतुओंसे उत्पन्न हुए । (११) इन की पुरुष शाखाका सबसे नया और पूर्ण कल्ला मनुष्य है जो कई लाख वर्ष हुए कुछ बनमानुषोंसे निकला था । हैकलने इन नियमोंका वर्णन करते हुए रेमोंडके

*इमिल ड्यू, वाइस, रेमोंड (Emil du Bois Raymond) ने १८९० ई० में बरलिनमें एक व्याख्यान दिया था और उसी में इन बात प्रश्नोंको उठाया था । इनमेंसे उसने १, २ और ५ को हल करनेके अयोग्य ठहराया था, शेषमें से ३, ४ और ६ को समझा था कि इनका हल होना सम्भव है पर अन्यन्त कठि-

जगत् सम्बन्धी सात प्रश्नों में से ३ का हल अपने एक द्रव्यवाद से बतलाया है। वे सात प्रश्न ये थे:—

(१) द्रव्य और शक्तिका वास्तविक तत्व । (२) गतिका मूल कारण । (३) जीवनका मूल कारण । (४) सृष्टिका इस कौशलके साथ क्रम विधान । (५) संवेदना और चेतनाका मूल कारण । (६) विचार और इससे सम्बद्ध वाणीकी शक्ति । (७) च्छाका स्वानन्त्य । एक द्रव्यवादके उपर्युक्त ७ प्रश्नों में से ६ का हल उम (हैकल) ने अपने एक द्रव्यसे बतलाते हुए ईश्वर और जीव की स्वतन्त्र सत्तासे इनकार किया है और चेतनाका उत्पत्ति जड़ प्रकृतिमें संभव समझी है ।

अब देखना यह है कि हैकलका वाद कहां तक विज्ञानकी सीमामें हैं। यह स्पष्ट है कि किन्हीं भी वस्तुओंका नित्यत्व विज्ञानकी परीक्षाका विषय नहीं हो सकता, इसलिए उसके विकासवादके अन्तर्गत है। विकासवाद अब तक केवल "वाद" है और रहेगा भी वाद ही। वैज्ञानिक नियम नहीं बन सकता, क्योंकि करोड़ों वर्ष पहलेकी बातका केवल अनुमान ही किया जा सकता है। उनकी विवेचनात्मक वैज्ञानिक परीक्षा असंभव है। हैकलने अपने प्रारम्भिक नियमोंके ही आधारपर ईश्वर और जीव की स्वतन्त्रतासे इनकार किया है। प्रारम्भिक नियम विज्ञान की सीमामें बाहर है, इसलिए ईश्वर और जीवकी सत्ता, निषेध भी विज्ञानका न विषय हो सकता है क्योंकि प्रकृति और

नताके साथ ७ वें और अन्तिम प्रश्नको भी हलके अयोग्य ठहराया था ।

गति शक्ति दोनों की सीमामें बाहर है, और न उसकी सीमामें आ सकता है, क्योंकि वस्तुओं का निषेध भी विज्ञान का विषय नहीं हो सकता है, जैसे कि पहले कहा जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि हैकल का एक द्रव्यवाद और उसके सिलसिलेमें ईश्वर और जीवकी सत्ता का निषेध दोनों विज्ञान की सीमामें बाहर हैं। इनको हम हैकल के केवल दार्शनिक विचार कह सकते हैं।

दर्शन और विज्ञानमें दर्शन और विज्ञानमें अन्तर क्या है ? *

क्या अन्तर है। "किसी घटनाको स्वीकार करनेमें पूर्व विज्ञान क्रमपूर्वक एक परीक्षाके बाद दूसरी परीक्षा करता हुआ उसकी दृढ़ताकी जांच और पुनः जांच करता है। और इस प्रकार परीक्षित और निश्चित घटनाओं को ही स्वीकार करता है। परन्तु "दर्शन" की अवस्था इसमें भिन्न है। दर्शन परीक्षित घटनाओंको पहुँचमें बाहर भपट लगाता है और इस प्रकार भपट लगाकर की हुई कल्पनाओंके ठीक सिद्ध करनेके लिए पीछेमें घटनाओंकी खोज करता है" * इस अन्तरपर दृष्टि डालते हुए कोई भी हैकल के उपर्युक्तवाद और कल्पनाओंको वैज्ञानिक नहीं कह सकता, हां वे दार्शनिक अवश्य कही जा सकती हैं।

दूसरा परिच्छेद

॥ २ ॥

कर्त्ताके गुण कार्य एक विषय और भी ध्यान देने योग्य है ।

मे होत है और, वह यह है कि जब हम कहते हैं कि कललरसमें उन गुणोंके होनेकी कल्पना नहीं की जा सकती, जो उसके उपादानमें नहीं हैं, तो इसपर कहा जा सकता है कि कुछेक वस्तुएँ सामूहिक रूपसे ऐसे गुण रखती हैं, जो उनके अणुओंमें नहीं हैं और इसके समर्थनमें घड़ी और सूर्यके उदाहरण दिए जाते हैं । हम इन उदाहरणोंपर एक दृष्टि डालना चाहते हैं ।

घड़ी का उदाहरण कहा जाता है कि घड़ीमें चलनेका और समय चलानेका योग्यता सामूहिक रूपहीमें है । उसके निर्माता अवयव इन गुणोंमें शून्य हैं । प्रथम तो घड़ीके समस्त पुरजोंमें जो कंपनशील अणुओंमें बने हैं, कंपन (गति) रहती है, परन्तु असली बात जिसके विषयमें यह उदाहरण दिया जाता है, यह है कि घड़ीके पुरजे भीचेतनाशून्य (जड़-ज्ञान रहित) हैं, और इसी लिए उनमें बनी हुई (सामूहिक रूपमें) घड़ी भी चेतनाशून्य और ज्ञान रहित है । एक अज्ञान पुरुष जानता है कि इस समय घड़ीमें क्या बजा है । परन्तु इस (बजने) का ज्ञान न घड़ीके पुरजोंको है, न सामूहिक रूपसे घड़ी को घड़ी स्वयं नहीं जानती कि कै बजे हैं । इसीलिए यह उदाहरण विषम है । अच्छा दूसरा उदाहरण लीजिए ।

कहा जाता है कि सूर्यके उपादान तो सूक्ष्म है, सूर्यका उदाहरण परन्तु सूर्य बृहदाकारवाला है, और उसके इस बृहदाकारवाले होने ही का यह परिणाम है कि वह स्वयं प्रकाशक है, और उसमें सदैव प्रकाश बना रहता है। किस प्रकार प्रकाश उसमें बना रहता है, इसके सम्बन्धमें वादा कहता है कि उसके आकर्षक, आकुञ्चक और भूकंपित अधिगमनमें ताप इतनी मात्रा में उत्पन्न हो जाता और होता रहता है, कि जो चिरकाल तक स्थित रहता है और उसके प्रकाशका हेतु हो जाता है। यह उदाहरण भी विषम है। प्रथम तो सूर्य जिन अणुओंमें बना है, उनमें हाइड्रोजनके अणु बहुतायतमें होते हैं। उसके सिवा सूर्य में यदि सामूहिक रीतिमें प्रकाश चिरकाल तक रहता है, तो कौन कह सकता है कि हाइड्रोजनके अणु कभी तापशून्य हो जाते हैं। परन्तु यदि यह भी मान लिया जावे कि निर्माण-कर्ता अणुओंमें जितनी प्रकाशकी मात्रा है, सामूहिक रूपसे आकर्षणादिक उत्पन्न हो जानेके कारण सूर्यका प्रकाश उस मात्रासे बहुत कुछ बढ़ जाता है, तो इसमें भी उस पक्षका समर्थन नहीं हुआ कि जड़में चेतना उत्पन्न हो सकती है। ताप निर्माण अणुओंमें है, वही ताप सूर्यमें बढ़ी हुई मात्रामें हो जाता है। जिस श्रेणीकी वस्तु (ताप) निर्माण-कर्ता अणुओंमें रहती है, उसी श्रेणीकी वस्तु (ताप) सूर्यमें। उदाहरण तो ऐसा खोजना चाहिए कि जिससे जड़ उपादान-द्वारा चेतना की उत्पत्ति प्रमाणित हो सके, परन्तु ऐसा उदाहरण मिल नहीं सकता।



तीसरा परिच्छेद ।

मस्तिष्क और चित्तके सम्बन्धमें योरपके मस्तिष्क और आत्मा मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकोंमें भतभेद है। एक दल कहता है कि मस्तिष्क और चित्तमें सत्ताभेद नहीं, ये दोनों पर्याय वाचक हैं, दूसरा दल कहता है कि मस्तिष्क जड़ और "माइण्ड" (आत्मा) का यन्त्र मात्र है। इस दलके अनुयायी "माइण्ड" को जीवात्मा कहते हैं। तीसरा विचार यह है कि मस्तिष्क और चित्त दोनोंसे पृथक् आत्मा है और ये दोनों उसके यन्त्रमात्र हैं। जड़वादी नास्तिक जो आत्माको स्वतंत्र सत्ता नहीं मानते पहले दो में एक-न-एक प्रकारका मत रखते हैं, परन्तु आस्तिकजगत् अन्तिम वादका समर्थक है। इसी जगह हम यह बताना चाहते हैं कि भारतीय दर्शन और उपनिषद् इस विषय (शरीरके आन्तरिक व्यापारके सम्बन्ध) में क्या शिक्षा देते हैं जिससे विषयके तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त होनेमें सुगमता हो।

आन्तरिक व्यापार दर्शन जीवात्मा नित्य चेतन और स्वतन्त्र सत्ता- और उपनिषद् ज्ञान है शरीर उसमें अपने गुणों ज्ञान और प्रयत्नको क्रियात्मक रूप देनेके लिए मिलता है।

शरीरके भेद शरीरके ३ भेद हैं [१] स्थूल शरीर, जिससे हम सब बाह्य क्रियाएं किया करते हैं, और जिसमें चक्षु आदि १० इन्द्रियोंके गोलक अथवा करण हैं, (२) सूक्ष्म शरीर यह अदृश्य शरीर प्रकृतिके उन अंशोंसे बनता है, जो स्थूलभूतोंके

प्रादुर्भाव होनेसे पहले सत, रज और तमस्की साम्यावस्था रूप प्रकृतिमें विकार आनेसे उत्पन्न होते हैं। (देखा पुस्तकमें कपिलका मत) सूक्ष्म शरीरके १७ अवयव हैं, ५ ज्ञान इन्द्रियोंकी आन्तरिक शक्ति + ५ प्राण + ५ तन्मात्रा सूक्ष्मभूत + १ मन + १ बुद्धि। ये १७ द्रव्य मिलकर सूक्ष्म शरीरका निर्माण करते हैं। समस्त जगत् सम्यन्त्रो आन्तरिक क्रियाएँ इसी शरीरके अवयवों के द्वारा हुआ करती हैं। (३) कारण-शरीर यह कारणरूप प्रकृति का वह अंश होता है, जो विकृत नहीं होता। यह शरीर ईश्वरोंपासना का साधन है। इसके विकासके परिणामही से मनुष्य योगी होता और समाधिस्थ होनेका योग्यता प्राप्त करता है।

सूक्ष्म शरीरकी आत्माकी प्रेरणा बुद्धिके माध्यमसे मनको कार्य प्रणाली होता है, जो समस्त ज्ञान और कर्म इन्द्रियोंका अधिष्ठाता है, मनकी प्रेरणासे समस्त इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य करती हैं। सूक्ष्म शरीरके १० करण (५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ उनके विषय सूक्ष्म भूत) मस्तिष्कमें रहते हैं। ५ प्राण समस्त शरीरमें फैले रहते हैं। श्वासोच्छ्वास, भोजन मेदेमें पहुँचाना, रक्तप्रवाह आदि उनके कार्य हैं, जो निरन्तर होते रहते हैं। बुद्धि मस्तिष्कमें, मन, चित्त और आत्मा शरीरके केन्द्र हृदयाकाशमें रहते हैं। मृत्यु केवल स्थूल शरीरकी होती है। सूक्ष्म और कारण शरीर आत्माके साथ मृत शरीरसे निकल कर "यथा कर्म यथाव्रतम्" दूसरी योनियोंमें आया-जाया करते हैं, और आत्माके साथ बराबर उस समय तक रहते हैं जब तक जीव मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता। मुक्ति प्राप्त करने पर इनका

और जीवका वियोग होता है और उस समय ये शरीर वापिस जाकर प्रकृतिके उन्हीं अंशोंमें मिल जाते हैं, जहां से आए थे।

जर्मनीके वैज्ञानिक "पाँल फ्लैशजिग" इन्द्रियों के व्यापार

(Paul Flechsig of Leipzig) ने बतलाया कि मस्तिष्कके भूरे मज्जाश्व (grey matter or cortex of the brain) इन्द्रियानुभवके चार अधिष्ठान या भीतरी गोलक हैं, जो इन्द्रिय-संवेदनाका ग्रहण करते हैं, उसने उनका इस प्रकार विवरण दिया कि:—

(१) स्पर्शजनक गोलक मस्तिष्कके खड़े लोथड़ेमें।

The sphere of touch in the vertical lobe.

(२) घ्राणका गोलक सामनेके लोथड़ेमें (The Sphere of Smell in the frontal lobe.

(३) दृष्टिका गोलक पिछले लोथड़ेमें (The Sphere of Sight in the occipital lobe.

(४) श्रवणका गोलक कनपटीके लोथड़ेमें (The Sphere of hearing in the temporal lobe).

और यह भी बतलाया कि इन चारों भीतरी इन्द्रिय गोलकोंके बीचमें विचारके गोलक (Thought centres or centres of association, the real organs of mental life) हैं, जिनके द्वारा भावोंकी योजना और विचार आदि जटिल मानसिक व्यापार होते हैं। इसपर जड़ार्थवादियोंकी प्रसन्नताका पारावार नहीं रहा, और इन महानुभावोंने समझ लिया कि अब जीवात्मा का काम इनमें चल गया और उसकी स्वतन्त्रसत्ता न होनेका

एक पुष्ट प्रमाण इनके हाथ आ गया, परन्तु उनको यह ज्ञान न था कि ये चार इन्द्रियों के गोलक तो सूक्ष्म शरीर ही के अवयव हैं, जिन्हें सूक्ष्म इन्द्रिय कहते हैं और वे चार विचारके गोलक अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) हैं । ये सब प्राकृतिक और चेतना शून्य हैं और आत्माके औज़ार मात्र हैं ।

चौथा परिच्छेद

वैज्ञानिक भी जीव यह बात आत्मवादियोंके लिए और भी के प्राकृतिक आधार सन्तोषकी है कि अब सब वैज्ञानिक भी होने के समर्थक जीवात्माके प्राकृतिक आधारवादको स्वीकार नहीं । नहीं करते । उनमेंसे अनेक ऐसे हैं जो स्पष्ट रीतिमें जीवात्मा और परमात्माकी स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं और वैज्ञानिक होनेकी स्थिति ही में ऐसा माननेके लिए अपनेको विवश समझते हैं । कुछेकके मत यहां दिखलाए जाते हैं:—

इंग्लैन्डका प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन अपने जगत्-न्यूटनकी सम्मति प्रसिद्ध पुस्तक “प्रिन्सिपिया” (Principia) में, जिसमें उसने ग्रह-उपग्रह और सूर्यादिका विचार किया है, लिखता है:—“समस्त यह प्राकृतिक जगत् (जिसकी उसने गहरी अन्वेषणाकी है) सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान जगत्के रचयिता की रचना है” ।

सर ऑलिवरलॉज मस्तिष्कको चित्त और सर ऑलिवरलॉज आत्माका करणमात्र समझते हैं, * उन्होंने

स्पष्ट रीतिसे कहा है “भौतिक विज्ञान, अपनी अन्तिम सीमापर पहुँचा हुआ भी यही उत्तर देता है कि उसके ज्ञानकी सीमामें सम्प्रति आकाश (ईश्वर) और शक्ति है और उनके सिवा अन्य वस्तुओंको वह कुछ नहीं जानता* लाँज फिर एक जगह लिखते कि प्रकृति में गति गति शक्ति निर्वेधशील शक्तिके रूपमें रहती है, और वह (प्रकृति) शक्तिके द्वारा उत्तेजितकी जाती है, परन्तु मार्ग प्रदर्शन और नियन्त्रणका गुण न तो प्रकृतिमें है, और न गतिशक्ति में। गतिशक्ति न तो निर्देशक सत्ता है और न उसमें निर्देशक उपकरण। उसमें ‘मात्रा’ मात्र है।† फिर जीवनके सम्बन्धमें उनका कथन है कि ‘मैं’ वादके तौरसे नहीं, किन्तु घटित घटनाके तौरसे अनुभव करता हूँ, कि स्वतः जीवन (आत्मा) ही मार्गप्रदर्शक और नियन्त्रक साधन है। अर्थात् प्राणी और पौधे मात्र अनेन्द्रियिक द्रव्योंको प्रदर्शित और प्रभावित करते और कर सकते हैं।‡ प्राण शक्ति (Vitality) के सम्बन्धमें उनका कथन है कि जीवन (आत्मा) और प्रकृति (शरीर) के मध्यवर्ती, सम्बन्ध का नाम प्राण, प्राणशक्ति अथवा जीवत्व है। इसप्रकार यह प्राणशक्ति प्रकृतिके अन्तर्गत है। परन्तु जीवन शब्द स्वयं जीवात्माके लिए चरितार्थ होता है, और आत्मा ही इस मध्यवर्ती सम्बन्ध (प्राण) को प्रकृतिके साथ जोड़ता है §।

* Do P. 51

† Life and matter P. 50

‡ Do P. 66.

§ Do P. 68.

फिर जीव* के स्वतन्त्र्य-परतन्त्र होनेके सम्बन्धमें लॉज कहते हैं कि "हम स्वतन्त्र हैं और परतन्त्र भी । जहांतक हमारा सम्बन्ध निकटस्थ होय और समीपस्थ परिस्थितिमें है, वहांतक क्रियात्मक उद्देश्यों के लिए हम स्वतन्त्र हैं और उनके उपस्थित किए हुए उद्देश्योंमें से जिसे चाहें हम अपने लिए पसन्द कर सकते हैं, परन्तु विश्वका एक भाग होने की स्थितिमें हमें नियम और व्यवस्थाकी मर्यादामें रहना पड़ता है, यहां हमारी परतन्त्रता है ।†

लॉजका यह "स्वातन्त्र्यवाद" वैदिक कर्म फलवादका रूपान्तर मात्र है । वैदिक कर्मवादका सार यह है कि प्राणी कर्म करनेमें स्वतन्त्र, परन्तु फल भोगनेमें नियम और व्यवस्थाके आधीन है । लॉजका भी स्वातन्त्र्यवाद यही बतलाता है । अस्तु हमने देख लिया कि सर ऑलिवर लॉज एक उच्च वैज्ञानिक होनेकी स्थितिमें किस प्रकार हैकलके जड़द्वैतवादके विपक्षी और उसके विरुद्ध आत्मवादके समर्थक है ।

* जीवात्माकी स्वतन्त्र सत्ता, उसका पूर्वजन्म बालकोंकी विशेष रीतिमें और कभी-कभी युवकोंका भी पूर्वजन्मकी स्मृतिका रहना एक-दूसरे स्थानपर सर ऑलिवरलॉजने प्रमाणित किया है । (Reason and Belief by Sir Oliver Lodge p. 66)

† Life and matter P. 86.

। जी, बी. शा (G. B. Shaw), बर्गसन (Bergson) और लगभग आधे प्राणविद्याके विद्वान (Vitalist Biologist)

जॉन स्टुअर्ट मिल जॉन स्टुअर्ट मिल भी आत्माकी स्वतन्त्र सत्ताका समर्थक था। उसने स्पष्ट रीतिसे कहा है कि "हमारी आत्मशक्ति प्रकृतिको प्रभावित कर क्रियाओंको कराती है। *

प्रोफेसर टेट (Prof. Tait) ने डेकार्टके प्रसिद्ध सिद्धान्त "मैं विचार करता हूं इस लिए मैं हूं" (Cogito ergo sum-I think therefore I am) का ही दूसरे शब्दोंमें समर्थन किया है। टेटका कथन है कि निर्वधशीलता अथवा संरक्षकता ही (आत्माकी) वास्तविक सत्ताकी कसौटी है।†

पाँचवाँ परिच्छेद

डॉक्टर वॉलेसने हँकलके अणुवादकका प्रबल विरोध किया है। आत्मा और परमात्माको वे किस प्रकार जानते और मानते थे यह बतलानेमें पूर्व उन्होंने जीवनकी जो परिभाषाकी है पहले उसका हम उल्लेख करते हैं:—

और गर्भविद्याके पंडित (Embryologists) भी लॉजसे इस बातके स्वीकार करनेमें सहमत हैं कि, चेतना शरीरसे पृथक् और स्वतन्त्र वस्तु है (Religion of Sir O. Lodge)

* Religion of Sir O. Lodge, p. 82.

† Do, p. 51.

जीवन क्या है ? डाक्टर डी ब्लेन बिलि (Dr. De Blain Ville) का परिभाषानुसार जीवन एक संयोग वियोगात्मक निरन्तर द्विगुण आभ्यांतरिकगतिका नाम है । परन्तु हर्बट-स्पेन्सरके मतानुसार आंतरिक सम्बन्धोंका वहिरंग सम्बन्धोंके साथ निरन्तर समायोगका नाम जीवन है । डाक्टर वालेसने इन दोनों परिभाषाओंपर विचार करते हुए अपनी सम्मति दी है कि दोनोंमेंसे एक भी परिभाषा अर्थ व्यञ्जक और परिच्छेदक नहीं है, क्योंकि ये परिभाषाएँ मूर्त्य तथा अन्य ग्रहोंसे भी, जो परिवर्तन होते रहते हैं, सम्बद्ध हो सकती हैं । उनकी सम्मतिमें इनकी अपेक्षा अस्तुत्का किया हुआ जीवन लक्षण जीवन सत्ता से अधिक लाग होता है है; और वह यह है—“जीवन, पालन पोषण, वृद्धि और विनाशके संघातका नाम है” । परन्तु वालेस इसको भी यथार्थ लक्षण नहीं समझते । उनका कथन है कि ये सब लक्षण केवल संगृहीत विचारोंको प्रकट करते हैं, वास्तविक चेतनामय जीवनकी सत्तापर प्रकाश नहीं डालते । उनका मत है कि जीवनका अद्भुत और अलौकिकपन शरीरके अन्तर्गत है, जो जीवनको प्रादुर्भूत करता है । आवश्यक चिन्ह, जो उच्च प्राणियोंके जीवनमें पाए जाते हैं, ये हैं—

(१) उनके समस्त शरीर अत्यन्त मिश्रित परन्तु अस्थिर प्राकृतिक अणुओंसे पूर्ण हैं । उनमेंसे प्रत्येक अणुका विकास या ह्रास निरन्तर जारी रहता है । कामके अयोग्य कण बाहर से आए नए कणों (अणुओं) से परिवर्तित होते रहते हैं । जो नए कण शरीरके भीतर इसप्रकार प्रविष्ट होते हैं, उनपर यांत्रिक और रासायनिक क्रियाएँ होनी प्रारम्भ हो जाती हैं । इन क्रियाओं

का परिणाम यह होता है कि निकम्मे कण शरीरमें बाहर निकलते रहते और उत्तम और कामके योग्य कण, शरीरका भाग बनकर भीतर और बाहरके समस्त पुराने कणोंको पूर्ववत् नया करते रहते हैं।

(२) उपर्युक्त कार्य कर सकनेके उद्देश्यसे समस्त शरीर जालीदार तन्तुओंसे भरा हुआ है जिनकेद्वारा वायु और तरल पदार्थ शरीरके समस्त भागोंतक पहुँचते हैं, और इसप्रकार शरीरके पालन पोषण सम्बन्धी भिन्न-भिन्न कार्य होते रहते हैं। प्रोफेसर बर्डन स्पेण्डर्सनके कथनानुसार जीवित शरीरोंकी—जीवनरहित शरीरोंकी अपेक्षा परिच्छेदक विशेषता यह है कि जीवित शरीरोंके अवयव अपनी मर्यादा न छोड़ते हुए सदैव परिवर्तनशील रहते हैं और उन परिवर्तनोंमें जो विशेषता होती है वह यह कि इनके साथ और इनके परिणाम रूपसे अनेक यांत्रिक कार्य होते रहते हैं। एक अर्वाचीन लेखक लिखता है कि जीवनका मुख्य और मौलिक कार्य, शक्ति व्यापार है।* जीवित शरीरका मुख्य कार्य यह होता है कि शक्तिका ग्रहण करके उच्च संभवनीय अवस्थामें इसका संग्रह रखे और सांयोग होकर उसका व्यय किया करे।

(३) तीसरा चिन्ह, जो कदाचित् सबसे विलक्षण और अद्भुत है, यह है कि जीवित प्राणियोंमें प्रत्युत्पत्ति अथवा वृद्धिकी शक्ति होती है। यह शक्ति “आत्मविभाग”† के रूपमें नीचे

* What is life by E. G. Allen.

† अणु क्षुद्र जीवोंमें एक जाति है जिसके कीट अपने शरीर जा दो भागोंमें विभक्त कर लेते हैं और उनमेंसे प्रत्येक विभाग

योनियोंमें 'जी' प्रत्युत्पादक घटकोंको शकलमें उच्च योनियोंमें पाई जाती हैं। ये घटक यद्यपि प्रारंभिक अवस्थामें भौतिक अथवा रासायनिक हेतुओंसे अन्य योनियोंके घटकोंसे अभिन्न से प्रतीत होते हैं परन्तु उनमें एक ऐसी अलौकिक उत्पादक शक्ति हाती है जिनसे वे अपने ही अनुरूप प्राणी, जो रूप रंग आदि में उन्हींके सदृश होता है, उत्पन्न कर सकते हैं। जीवके इन चिन्हों और कार्योपर विचार करते हुए "जीवन क्या है?" इस प्रश्नका उत्तर, वालेसने, इस प्रकार दिया है:—

"जीवन उस शक्तिका नाम है जो मुख्यतः वायु, जल, और उस तत्वसे जा उनमें विलीन है, बनता है, और जो संगठित परन्तु अत्यन्त गूढ़ रचना है और नियत आकार और कार्य रखता है। आकार और कार्य तरल पदार्थों और वायुके अभिसरण-द्वारा विकास और ह्रासकी नित्य अवस्थामें सुरक्षित रहते हैं और अपने सदृश प्रत्युत्पत्ति करते हुए शिशु, युवा और वृद्ध अवस्थाको प्राप्त होते हुए मरकर उपादान भूतोमें विलीन हो जाते हैं, और इस प्रकार निरन्तर अपने सदृश व्यक्ति बनाते रहते हैं और जबतक बाह्य स्थितिसे उनका बचा रहना सम्भव है, वे सम्भवनीय (Potential) अमरत्वको रखते प्रतीत होते हैं..... ये जीवनके

उसी कीटके सदृश एक नया कीट बन जाता है। इस कार्य-प्रणालीको जीवन विद्या (Biology) की परिभाषानुसार "आत्म-विभाग" (Fission process of self division) कहते हैं।

* man's place in nature p. 15 to 158

लक्षण जंगम और स्थावर दोनोंपर घटित होते हैं* ।

पश्चिमी वैज्ञानिकोंमेंसे उन वैज्ञानिकोंको भी जो चेतनाकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते और चेतनाको शरीरके मेलका परिणाम नहीं समझते, चेतनाशक्ति (आत्मा) के कार्यको मुख्य स्थान देकर वर्णन करनेमें संकोच होता है, और वे प्रत्येक कार्य को प्राकृतिक साधन-द्वारा ही वर्णन करते हैं। यही सबब है कि वाल्लेसको भी जीवन का इतना लम्बा चौड़ा लक्षण करना पड़ा अन्यथा इतना कह देना मात्र पर्याप्त हो सकता था कि आत्मसत्ता का शरीरमें होना और उसके गुणोंका शरीरके स्थिर रखने और सार्थक बननेके लिए क्रियात्मक रूप ग्रहण करना ही जीवन है” अस्तु अब चेतनाकी एकाणुवादसे उत्पत्तिके सम्बन्धमें डॉक्टर वाल्लेसके विचार देखने चाहिए ।

जीवनके इन चिन्हों और उसकी अपूर्वता और हैकलका एकाणुवाद अलौकिकतापर दृष्टि डालते हुए भी कुछेक ऐसे पुरुष हैं, जो पत्थरको विकासमय बनलानेवालोंके सदृश, प्राकृतिक अणुओंमें चेतना बतलाने हुए, जीवनकी चेतना पूर्ण सत्ता को, उन्हीं (अणुओं) के मेलका परिणाम बतलाते हैं ।

ऐसे पुरुषोंमें हैकल मुख्य है । हैकलका एकाणुवाद नास्तिकता का रूपान्तर है । एकाणुवाद नास्तिक मत है । हैकलने स्वयं इसको स्वीकार किया है । हैकल

लिखता है:—“नास्तिकवाद देवी देवताओंकी सत्ताका निषेधकवाद है...यह ईश्वरकी सत्तारहित सांसारिक नियम (नास्तिकवाद) एकाणुवाद अथवा वैज्ञानिकोंके जड़द्वैतवादसे सहमत है ।

(बलिक) यह (अणुवाद) उस (नास्तिकवाद) के वर्णनका एक दूसरा प्रकार मात्र है * हैकल के लेख स्वमताभिमानपूर्ण है, और वह जब प्रकृति अथवा प्राकृतिक जगत्को नित्य और असीम बतलाता है, तब अपने विभाग (प्राणाविद्या) का सीमाका उत्पन्न करता है, क्योंकि जब योग्यके उच्च ज्योतिषके वैज्ञानिक सिद्ध कर रहे हैं कि “यह हमारा प्राकृतिक जगत् असीम है और हमें उसकी पूर्ण सीमाका ज्ञान प्राप्त नहीं है और न हम इसके प्राप्त हो जानेके सम्भाव हो रहे हैं” तो हममेंसे कोई भी नहीं है जो उसके आधाररहित स्वमताभिमानसे, जिसमें निषेध और सर्वज्ञताके भाव सम्मिलित हैं, सहमत हो सके। उसने अपनेमें उच्च ज्ञान होनेकी कल्पना केवल अपना अज्ञान छिपानेके लिए की है जो उसे जीवनकी वास्तविकताके सम्बन्धमें है। वह (हैकल) अत्यन्त रुचि और रहस्यपूर्ण प्रश्नका कि, किसप्रकार (शरीरमें बिना जीवका सत्ताके) भोजन पचना, शरीरका पालन होता और उसकी वृद्धि होती है, हल नहीं कर सकता है। †.....इसप्रकार हैकल और उसके अणुवादका निरादर करने हुए डॉक्टर विलेस भी हक्सलेके इस कथनको उद्धृत करते हुए कि “जीवन शरीर रचनाका हेतु है”। कहते हैं कि “यदि जीवन शरीर रचनाका हेतु है, तो उस शरीरकी रचनासे पूर्व विद्यमान होना चाहिए और उसका विचार हम उसके जीवात्मा (Spirit) से अभेद्य होने ही के द्वारा कर सकते

* Riddle of Universe, p. 103.

† The world of life by Dr. A. R. Wallace p. 4-8.

है * इसका आशय स्पष्ट है कि, डॉक्टर वैलेस चेतनाका शरीरके मेलका परिणाम नहीं समझते, किन्तु चेतनाकी स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं।

चेतना और अचे-
तनामें अन्तर हैकलने प्रकृतिसे चेतनाकी उत्पत्ति सिद्ध करने के लिए बहुत हाथ-पांव फेंके हैं, परन्तु समस्या कठिन था इस लिए पूर्ति नहीं कर सका हैकल के चेतना सम्बन्धी अज्ञानका यह एक नमूना है कि वह चेतन और अचेतन व्यापारके भेद बतलानेमें भी असमर्थ है। उसने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि "चेतन और अचेतन के अन्तर्व्यापारों के बीच कोई भेद सीमा निर्धारित करना असम्भव है। कौन व्यापार ज्ञानकृत (चेतन) है, और कौन अज्ञानकृत (अचेतन)। यह सदा ठीक-ठीक बतलाया नहीं जा सकता † अस्तु अब एक और विलक्षण बात सुनिज।

* The world of life p. 9.

† Riddle of the universe by E. Haeckle p. 95,
हैकलके शब्द (अंगरेज़ी (अनुवादानुसार) ये हैं। "It is impossible to draw a hard and fast line in such cases between conscious and unconscious and unconscious psychic function."

छठवाँ परिच्छेद ।

जर्मनीके सबसे बड़े वैज्ञानिक वुण्ट (Wilhelm Wundt of Leipzig) ने जो प्राणि-विज्ञान और अङ्गविच्छेद शास्त्रके भी पूरे पूरे अभ्यासी थे । अपनी एक पुस्तक (Lectures on Human and Animal Psychology) में १८६३ ई० में लिखा कि मुख्य-मुख्य मनोव्यापार अचेतन आत्मा (unconscious soul) में होते हैं । ३० वर्ष बाद १८९२ ई० में उसी पुस्तकके संशोधित संस्करणमें उसने अपने अनुभव और ज्ञानवृद्धिके आधारपर अपने पहले मतके भ्रम को दूर करने हुए, पुस्तककी भूमिकामें उसने स्पष्ट लिख दिया कि "पहले संस्करणमें जो भ्रम (मनोव्यापारोंके अचेतन आत्मा में होनेके) मुझमें हुए थे, उनमें मैं मुक्त हो गया । कुछ दिनों बाद जब मैंने विचार किया तब मान्य हुआ कि पहले जो कुछ मैंने कहा था वह सब युवावस्थाका अविनैक था । मेरे चित्तमें बराबर खटकता रहा और मैं जहाँ तक हो सके, शीघ्र उस पाप से मुक्त होनेके लिए राह देखता रहा ।" इसप्रकार वुण्टके ग्रन्थ के दो संस्करणमें किए हुए मनस्तत्त्व निरूपण एक दूसरेके सर्वथा विरुद्ध हैं । पहले संस्करणके निरूपण तो सर्वथा भौतिक है और जड़द्वैतवाद लिए हुए, (जो हैकलके इष्ट था) परन्तु दूसरे संस्करणके निरूपण अध्यात्मिक और द्वैतभावापन्न हैं । पहले में तो मनोविज्ञानका वुण्टने एक भौतिक विज्ञान मनाकर उसका निरूपण उन्हीं नियमोंपर किया था, जिन नियमोंपर शरीर-विज्ञानके अन्य सब अंगोंका होता है, पर तीस वर्ष पीछे उसने

मनोविज्ञानको आध्यात्मिक विषय कहा और उसके तत्त्वों और सिद्धान्तोंको भौतिक विज्ञानके तत्त्वों और सिद्धान्तोंमें सर्वथा भिन्न बतलाया । अपनी मनःशरीरसम्बन्धी व्याख्यामें स्पष्ट कह दिया कि प्रत्येक मनोव्यापारका कुछ-न-कुछ सहवर्ती भौतिक (शरीर) व्यापार अवश्य होता है, पर दोनों व्यापार सर्वथा स्वतंत्र हैं, अर्थात् शरीर और आत्मा दोनों पृथक्-पृथक् हैं ।*

इसीप्रकार जर्मनीके दो और प्रसिद्ध विद्वानों और रेमोंड वैज्ञानिकों विग्नों और रेमोंड (R. Anshos and E. de Bois Remond) ने पहले-पहले बहुत दिनों तक भूतानिर्गुण (चेतना) शक्ति, शरीर और आत्माका पृथक् सत्ता आदिका घोर विरोध किया पर पीछे उन्होंने (अनुभव और ज्ञान वृद्धिके बाद) चेतनाकी भूतानिर्गुण व्यापार कहा आत्माकी स्वतन्त्र सत्ताको स्वीकार किया । †

इसीप्रकार जर्मनीके सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक कांटका मत कांट (Immanuel Kant) ने पहले अपना युवावस्थामें स्थिर किया था कि ईश्वर, आत्मस्वानन्वय और आत्माका अमरत्व शुद्धबुद्धिके निरूपणमें असिद्ध हैं । पीछे (ज्ञान और अनुभव वृद्धिके बाद) वृद्धावस्थामें उसने प्रमाणित किया कि ये तीनों विषय व्यवसायात्मिक बुद्धिके स्वयं सिद्ध निरूपण हैं और अनिवार्य हैं ।

* Riddle of Universe p. 12 and 83.

† Riddle of Universe, p. 76-77.

Do p. 75 and 76.

वेयर इसीप्रकार युवावस्थाके अल्पज्ञानोत्पादक विचारोंका ज्ञान वृद्धि और अनुभवके बाद वेयर (Carl Ernst Baer) आदिने भी मन परिवर्तित किया था और इन्होंने अन्तमे आत्मा का स्वतन्त्र सत्ताका स्वीकार किया इसप्रकार आधे दर्जनसे अधिक चोटीके दार्शनिक और वैज्ञानिकोंके मन परिवर्तनसे हैकलको शिक्षा ग्रहण करके अपने दार्शनिक सिद्धान्तोंपर पुनः विचार करके उनका अनुकरण करना चाहिये था परन्तु हैकल तो जडाह्वितवादके प्रवर्तक होने की लोकोपेयाग्रस्त था। उसने इनमन परिवर्तनोंके उल्टा शिक्षा ग्रहण की वत कहता है कि इन (बुण्ट आदिके) मन परिवर्तनोंके सम्बन्धमे लोग कह सकते है कि युवावस्थामे बुद्धिके अपरिपक्व होनेके कारण इन्होंने सब बातों की ओर पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया था पीछे बुद्धिके परिपक्व होने और अनुभव बढ़नेपर इन्हें अपना भ्रम मात्तम हुआ और इन्होंने उस अवस्थामे इसप्रकार वास्तविक ज्ञानका मार्ग पाया (और यह कहना स्वाभाविक होता) परन्तु हैकल कहता है कि यह क्यों न कहा जाय कि युवावस्थामे अन्वेषणश्रमकी शक्ति अधिक रहता है, बुद्धि अधिक निर्मल और विचार अधिक स्वच्छ रहते है पीछे वृद्धावस्थामे जैसे और सब शक्तियाँ शिथिल हो जाती है वैसेही मास्नष्क भी निरुम्मा हो जाता है (अर्थात् मनुष्य सृष्टिया जाता है) *। परन्तु हैकल, बुण्ट आदिपर सृष्टिया जाने का इलजाम लगाने हुए भूल गया कि ६६ वर्षकी आयुमें जब उसने अपना प्रसिद्ध पुरतक (Riddle of Universe)

लिखकर अपने आविष्कृत जडाद्वैतवादको प्रकट किया था तब वह भी सटिया गया था, उसका भी मस्तिष्क उसी प्रकार निकम्मा हो चुका था जिस प्रकार अन्य शक्तियाँ शिथिल हो चुकी थीं। परंतु वह अपनी इस (६६ वर्षकी) अवस्थाका परिपक्व अवस्था कहकर अपना बड़प्पन प्रकट करता है। उसके शब्द ये हैं कि "I Now in my 66th year venture to claim that it is mature" अतः स्पष्ट है कि हैकल जिस कसौटी से अन्योको जांचता था उसका प्रयोग अपने लिए करनेसे बचता था। अस्तु हैकलने अपने जडाद्वैतवादके वर्णनमें एक आवश्यक विचार उठाया है कि गर्भके प्रागम्भिक घटकमें समस्त शरीर (वाजवत्) रहता है या नहीं।

~*~*~*~

सातवां परिच्छेद ।

सुश्रुतने धन्वन्तरिके अवलम्बनसे लिखा है कि गर्भमें समस्त जीव वांसके कल्ले या आमके फलके समान बालक बीजवत् रहता है के सब अंग एक साथ गर्भमें पैदा हो जाते हैं।

* चेतन शरीर (मनुष्य अथवा अन्य प्राणी) भौतिक शरीर और आत्माके मेलका परिणाम होता है, शरीरसे आत्माका मेल कब होता है यह बात बृहदारण्यकोपनिषद्के आधारपर कही

* सर्वांगप्रत्यंगाणि युगपत् सम्भवन्तीत्याह धन्वंतरिः ।

गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नापलभ्यते, वंशाङ्कुरवच्चूतफलवच्च ॥

[सुश्रुत, शरारस्थान]

जा चुकी है कि गर्भकी स्थापना रज, वीर्य और आत्मा तीनों के मेल ही का परिणाम है। यदि जीव, रज और वीर्यके संघात में प्रविष्ट न हो जावे तो गर्भकी स्थापना नहीं हो सकती। गर्भ शरीरवत् भीतरसे बढ़ता है बाहरसे नहीं। भीतरसे कोई चीज़ नहीं बढ़ सकती जबतक उसके भीतर जीव न हो, जिसप्रकार आमके बीजमें आमका वृक्ष बनानेकी योग्यता है। जिसप्रकार बटके बीजमें, बटके वृक्षके अंकुरित करनेकी शक्ति है इसीप्रकार पशुके वीर्य (बीज) में पशु, पक्षीके वीर्यमें पक्षी और मनुष्य के वीर्यमें मनुष्य बनानेकी योग्यता होती है। आम अथवा बट किसी भी वनस्पतिके बीजको ले लें उस बीजमें उस वृक्षका जिसका वह बीज है पूर्वरूप अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें विद्यमान रहता है, यदि ऐसा न हो तो किसी भी बीजमें कोईभी वृक्ष अथवा वनस्पति उत्पन्न हो जाया करती। परन्तु प्रत्यक्ष यही है कि आमके बीजमें आम, गेहूँके बीजमें गेहूँ और बबूलके बीजमें बबूल ही पैदा होता है। अतः यह माननेके लिए विवश होना पड़ता है कि प्रत्येक बीजमें उस वृक्षका पूर्वरूप सूक्ष्मरूपमें रहता है। स्वयं मनुष्य अथवा अन्य प्राणीके बीज (वीर्यमें भी उस-उस प्राणीका पूर्वरूप जिसका वह बीज है, और वही चीज़ जीवकी विद्यमानताके कारण, भोजन मिलनेपर भीतरसे बढ़ती है और सभी अंग प्रत्येक क्रमशः बढ़ते हैं। प्रथम मास तक रज और वीर्य घटकोंका संघात विकसित होता हुआ। ऐसी अवस्था में रहता है कि हम शरीरके अवयवोंको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे भी नहीं देख सकते। जिस प्रकार कि बीजमें उपस्थित वृक्षके पूर्वरूपको नहीं देख सकते हैं। गर्भ सम्बन्धी ये विचार

चिरकालसे ससारम माने जाते थे और योरपमें भी अरस्तूमें लेकर जिस वहां विज्ञानका जन्मदाता कहा जाता है, १६वीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध तक मान जाते थे। अवश्य वहां के विद्वानों ने इस मन्तव्य में कुछ फेरफार कर लिया था। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध वैज्ञानिक हालर (Haller) ने इस 'वाद'—को स्वीकार करते हुए हिसाब लगाया था, कि ६००० वर्ष बीते जब ईश्वरने जगत्की रचनाके दिनोंमें छठे दिन (बाइबिलके अनुसार) दो खरब प्राणियोंके बीजवत् पृथक् रूप उत्पन्न करके उन्हें बुद्धिमत्ता के साथ हव्वा (आदम की पत्नी) के गर्भमें भर दिया *। हालरके इस कथनको सुश्रुतके गर्भवादके साथ जिस योरपमें 'Formation theory' कहते थे, "लेबन्त्ज़" (Leibnitz) जैसे दार्शनिकोंने भी पूर्णतया स्वीकार किया था †। १६वीं

* मन १६०० ई० में इटलीके अंग विच्छेद शास्त्रके विद्वान "फैब्रिस मियस-एव-एक्लेपेगडन्टी" (Fabricius-ab-Apuapendente of Italy) और १६८७ ई० में प्राणीशास्त्रके एक विद्वान् "मैग्गीलो मैलपीघो" Marcello Malpighi of Bologna ने गर्भके सम्बन्धमें पुस्तक लिखी और गर्भके चित्र भी प्रकाशित किए थे। इन दोनों विद्वानोंने भी गर्भमें पूरे शरीरके पृथक्पृथक् होना स्वीकार किया था (Riddle of Universe p. 44).

† यह वाद 'Theory of Scatulation' के नामसे प्रसिद्ध हुआ था (Do. P. 49).

शताब्दीके उत्तरार्द्धमें योरोपमें जड़वादका प्रचार बढ़नेसे आत्मशक्तियोंका निरादर होने लगा। इसी बीचमें विकासवाद का भी जन्म हुआ। फिर तो खुले तौर से सुश्रुतके इस गर्भवाद का विरोध हुआ। कैसपर फ्रांडरिक-उल्फ (Caspar Friedrich Wolff) ओकन (Oken) नेकिल (Prekel Earl) और बेयर (Ernst Baer) ने जड़वादके प्रकाशमें गर्भवास का विवरण दिया। बेयरका विवरण अधिक मानकी दृष्टिसे देखा गया। १८३८ ई० में घटकवाद के आविष्कारके साथ रज और वीर्यके घटकोंकी कल्पना हुई। जोनेसमूलरके दो शिष्यों रैमैक (Robert Remark) और कोलीकर (Albert Kolliker of Wurzburg of Berlin) ने इस कल्पना का और भी अधिक पुष्ट किया। इसके बाद डार्विनने विकासवादके द्वारा इस 'वाद'को और भी अधिक पुष्ट किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि अब प्रायः समस्त योरोपमें यही गर्भसम्बन्धी अन्तिम मत, 'तारतम्यपूर्वक गर्भ विधानवाद' के नामसे माना जाता है। परन्तु यह 'वाद' सुश्रुतके वादका विरोधीवाद किसप्रकार हो सकता है? समस्त शरीरका एक साथ क्रमशः बनना न माना जाकर यदि यह माना जाय कि कोई अवयव विशेष पहले बनता है तो यह बतलाना कठिन हो जायगा कि वह अवयव विशेष बिना अन्य अवयवों और उनके सहयोगके स्थिर किसप्रकार रह सकता है। इस लिए इस सिद्धान्तके सम्मुख शिर झुकाना ही पड़ेगा कि गर्भमें समस्त शरीर बीजवन् रहता और क्रमशः बढता है।

अंकुरघटकमें हैकलके मतानुसार माता-पिताके गुण पितृपरम्परा आजाते हैं * परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं। गुणी में गुण होते हैं, इसलिए ये गुण तो जीवात्माके साथ संस्कारके रूपमें आते हैं और अपना प्रभाव आन्तरिक कर्णों पर डालते हैं। माता-पितामें जो कुछ रजो वीर्यके साथ (अंकुरघटक में) आता है वह उनकी आकृति और स्थूल शरीर हो के गुण और दोष (सबलता, निर्बलता, रोगादि) होते हैं, अतः उन्हें पितृक रोगादिका नाम दिया जाता है। डॉक्टर अलबर्ट एब्राम (Dr Albert Abram) ने हाल ही में जो रक्त सम्बन्धी आविष्कार किया है और जो "Oscillophora" के नामसे प्रसिद्ध हुआ है उस आविष्कारमें पिता और पुत्रके रक्तोंके परीक्षणसे आविष्कार यह बात देनेमें समर्थ हुआ है कि अमुक पुत्र अमुक पिताका है। डॉक्टर एब्रामका कहना है कि ये

* रजः कीटाणु एक सूक्ष्म घटक है जिसका व्यास १/३० इंच होता है इसी प्रकार शुक्र कीटाणु भी मृत या आल्पीनके आकार का रोंगेंदार अत्यन्त सूक्ष्म घटकमात्र है और वीर्यके एक वृन्दमें न मालूम कितने लाग्य होते हैं। इतनी सूक्ष्म वस्तु के लिए जिसकी जाँच रसायन शालाओंमें उस दृष्टिसे कि उनमें माता-पिता के मानसिक गुण हैं या नहीं, नहीं हो सकती, इसप्रकार की सम्मति देना : : : : : है। इसके सिवाय इसप्रकारकी परीक्षा विज्ञानकी सीमासे भी बाहर है। फिर उसके लिए यह कहना कि इनमें मानसिक गुण भी माता-पिताके हैं, कल्पना मात्र है।

अपने आविष्कार से व्यक्तियोंके पुरुष-स्त्री भेद, और स्वास्थ्य-वस्था भी, रक्तके परीक्षण-द्वारा बतला सकते हैं। यह आविष्कार भी इसी विचारकी पुष्टि करता है कि रजोवीर्यके साथ शारीरिक गुण दांपादि हां आते हैं मानसिक गुण दांपांका सम्बन्ध रजोवीर्यमें नहीं। वे शक्तिकी आत्माके साथ संस्करणके रूपमें आते हैं जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यही पितृपरम्परा है। मानसिक गुण व्यक्तिके अपने हांते हैं जो पहले जन्ममें प्राप्त किए हुए हांते हैं। माता-पिताके केवल शारीरिक गुण रजोवीर्य-द्वारा आते हैं; अवश्य गर्भस्थापनाके बाद गर्भस्थ अथवा उत्पन्न बालकपर माता-पिताके आचार विचारके प्रभाव पड़ा करते हैं, परन्तु प्रभाव इसी जन्मके हांते हैं उनका पितृपरम्पराकी सीमासे बाहर समझना चाहिए। मानसिक गुण व्यक्तियोंके अपने हांतेका एक पुष्ट प्रमाण यह है कि वे निम्नलिखित बातें बिना किसी कारणके नहीं कर सकते हैं।

धार्मिक सन्तान हांती हैं, यदि वे जावके साथ आए (मानसिक) गुण व्यक्तियोंके न हांकर माता-पिताके हांते तां सन्तान सदैव माता-पिताके सदृश ही हांती परन्तु सदैव ऐसा नहीं हांता इस-लिए अंकुरघटकमें मानसिक गुण दांपांके आनेकी कल्पना, कृष्ट कल्पना ही समझी जा सकती है।

सन्तानका माता-पितासे न केवल गुण-भेद माता-पितासे संतान हुआ करता है। किन्तु कभी-कभी आकृत-भेद क आकृति-भेद भी हुआ करता है। यह क्यों है ? एक वैज्ञानिक “वीजमैन” (Weismann) को जब इसका उत्तर जड़वादसे न मिला तो उन्होंने जीवात्माके नित्यत्वके बाद (Theory of continuity of the Germ plasm) की स्थापन की। * परन्तु जीवात्माका नित्यत्व न मानकर उसके स्थानपर बीजात्मा के नित्य माननेसे भी जड़द्वैतवादके मार्गमें एक रोड़ा अटकता था इसलिये हैकलने इस वादको “अत्युक्ति” कहकर रद्द किया है। अब हैकल इस आकृति-भेदका क्या उत्तर देता है, वह सुनिः—

“विचार और (आकृति) विभेदके सम्बन्धमें यह भी है कि और ऊपरकी पीढ़ियों (दादा, परदादा आदि पूर्वजनों) के मानसिक संस्कार भी साथ ही उसे (उत्पन्न बालकको) प्राप्त हो जाते हैं, “कुलपरम्परा सम्बन्धी प्राकृतिक नियम आत्मापर भी ठीक वैसेही घटते जैसे अङ्गविधानपर”। † यह कल्पना “असम्भव कल्पना” कही जा सकती है। सन्तानोत्पत्तिका मूलकारण हैकल के मतानुसार केवल पुरुष और घटकोंका सम्मेलन है। यह घटक पुरुष और स्त्रियोंके शरीरहीमें तय्यार होते हैं इनमें अनेक पीढ़ियोंके मानसिक और शारीरिक गुण कहां आसकते हैं ? मानसिक गुण

The Riddle of the universe p. 115.

The Riddle of universe p. 16 इस वादका नाम हैकलने Laws of progressive heredity and of the correlative functional adaptation “ रक्खा है।

तो इनमें माता-पिताके भी नहीं होते, उनके केवल शारीरिक गुण उनमें होते और हासकते हैं जैसा कि ऊपर प्रमाणित किया जा चुका है। डाक्टर "एशराम" ने भी अपने रक्तवादमें पिता और पुत्रकाही सम्बन्ध प्रकट करनेकी योग्यता बताई है। दादा परदादा का हाल इस आविष्कारके द्वारा नहीं बतला सकता, परन्तु हैकल कलाना करनेमें सिद्धहस्त था इसलिए सम्भव-असम्भव ऐसी कोई भी कल्पना करनेमें उसे संकोच नहीं होता था जो जड़-छेदवादकी विधायक हो, आकृति भेदका असली कारण गर्भस्थापनाके समय माताके विचार हाने और हो सकते हैं। आकृतिके साथही यानिका प्रश्न सम्मुख आजाता है।

आठवाँ परिच्छेद

योनियाँ दो प्रकारसे मानी जाती हैं (१) स्थिर योनिका प्रश्न स्थिर (२) अस्थिर। स्थिर योनिका तात्पर्य यह है कि जगत्के प्रारम्भ से ही सब प्रकार की योनियाँ रची हुई चली आती हैं जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटपतङ्गादि। (२) अस्थिर योनिवादका अर्थ यह है कि प्रारम्भ में कोई एक योनि थी और उसीसे अन्य योनियोंका विकास हुआ है, यह अस्थिर योनिवाद ही विकासका मुख्य अंग है, इस बादके शेष अंग इसी मुख्य अंगकी स्थापनाके लिए विकासवादका अंग बनाए गए हैं। डार्विनके विकासवादके प्रारम्भ तक पृथ्वीके अन्य देशोंके सदृश, स्थिरयोनिवाद योरपमें भी माना जाता था। १७३५ ई० में स्वीडनके वैज्ञानिक "लिने" (Earl Linne) ने अपनी एक

पुस्तक (Classical systema naturae) में प्राणियोंका वर्गविभाग करते हुए प्रकट किया था कि संसारमें उतनी ही योनियाँ दिखाई देती हैं जितने ढाँचे सृष्टिके प्रारम्भमें थे। १६१२ ई० में स्क्वियरने अपनी एक पुस्तक (Fossils bones of the four-footed Vertebrates) अप्राप्य जीवोंका विवरण देने हुए “लिने” के प्रकट किए हुए मन ही की पुष्टि की। अर्थात् योनियाँ अचल और स्थाई हैं। उसने सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलयका भी विवरण अपनी पुस्तकमें दिया कि सृष्टिके प्रारम्भमें सब स्वर्गके जीव उत्पन्न होते हैं और प्रलयमें सबका संहार होजाता है, उस के बाद फिरसे सब जीवोंकी नई सृष्टि होती है।

१७६० ई० में जर्मनी कवि और वैज्ञानिक गोटे (W. Goethe) ने अपना एक पुस्तक (Metamorphosis of plants) में समस्त पौधोंकी उत्पत्ति एक आदिम पत्ते में बनाई। १८०२ में फ्रांसीसी वैज्ञानिक लामार्कने एक पुस्तक (Observations on living Organisms by Jean Lamarck) योनियोंके परिवर्तनके सम्बन्धमें लिखी, परंतु डार्विनसे पहिले अस्थिर यानिवाद योग्यमें प्रतिष्ठित नहीं हुआ। डार्विनके विकासवादके अनुसार प्रारम्भिक जीवोंमें लेकर मनुष्यकी उत्पत्तिका क्रम इस प्रकार है: -

विक. सब. दमें	सबसे पहले आदिम मत्स्य,
योनिके परिवर्तन	मत्स्य, फिर जलस्थलवारी जन्तु मेंढक आदि
का क्रम	सर्प, गुरा और स्तन्य जन्तु, स्तन्यजीवोंमें अड्ज स्तन्य फिर अजगमयुक्त पिंडज (शैलीवाले) और
	जरायुज जंतु, फिर किंपुरुष जिनमें पहिले बंश, फिर वनमानुस उत्पन्न

पतली नाकवाले वनमानुषोंमें पहले पूँछवाले कुक्कुटाकार वनमानुष हुए फिर उनमें बिना पूँछवाले नगाकार वनमानुष हुए । इन्हीं नगाकार वनमानुषोंकी किसी शाखासे जिसका अभी ज्ञान नहीं है, वनमानुषोंके-से गुने मनुष्य उत्पन्न हुए । और फिर उन्हींमें बोलनेवाले मनुष्यकी उत्पत्ति हुई वनलाई जाती है । यानियोंके परिवर्तन अथवा अस्थिर योनिवादका मुख्य आधार केवल यह कहा जाता है कि क्रमपूर्वक योनियाँ एक-दूसरेमें मिलती और उन्नत होती हुई पाई जाती हैं । उन्नतिका हेतु यह होता है कि जिस अवयवकी आवश्यकता प्राणीको अनुभव हुई वह उत्पन्न और जिसकी अनावश्यकता हुई वह नष्ट होकर उन्नत योनियाँ बनती जाती हैं । प्रथम तो यह क्रम खरा नहीं है, स्वयं हैकलको स्वीकार है कि रीढ़वाले जन्तुओंकी उत्पत्तिकी शृंखला तो मिलती जाती है परन्तु उनमें पहले बिना रीढ़वाले जन्तुओंकी शृंखला मिलाना कठिन है । भूगर्भके भीतर उनके कोई चिन्ह (ढाँचा आदि) नहीं मिल सकते । इससे उनके क्रमकी खोजमें प्राजन्तु विज्ञानसे भी कुछ सहायता मिल नहीं सकती * । इस कठिनताको विकासवादानुयायी अच्छी तरह समझते हैं, कल्पनाओंके करनेमें निपुण हैकलको भी यह कठिनता इन शब्दोंमें स्वीकार करनी पड़ी, “प्राणिवर्गोत्पत्ति विद्याका विषय परीक्षार्थ होनेके कारण अधिक कठिन है । उन क्रियाविधानोंके धारे धारे होनेमें जिनके द्वारा उद्भिदों और प्राणियोंके नए-नए वर्गोंकी क्रमशः सृष्टि होती है, लाखों वर्ष लगते हैं.....उन क्रियाविधानों

का परिज्ञान हमें अनुमान और चिन्तन-द्वारा तथा गर्भविधान और निःशेष जीवोंके भूगर्भस्थित अस्थिपजरीकी परीक्षा-द्वारा ही विशेषतः होती है” †

सबसे मुख्य बात तो यह है कि यह 'वाद प्राकृतिक नियमों का विरोधी है :

संसारका यह अटल नियम है कि संसारमें उत्पन्न जो प्रत्येक वस्तु या प्राणी है उसके लिए विकासके साथ ह्रास अनिवार्य है। एक समय सूर्यमें उष्णता बढ़ी अब क्रमशः

† Riddle of Universe p. 58 and 59.

* एक योनिसे दूसरी योनि बननेका क्रम यह बतलाया जाता है कि प्राणी जिन अवयवोंका प्रयोग करता रहता है, वे स्थिर अथवा नवीन उत्पन्न हो जाते हैं, जिनसे काम नहीं लेता वे नष्ट होजाते हैं। इसीप्रकार मनुष्य और उसके पूर्वज एक प्रकारके वनमानुष थे। उनकी पूँछ नष्ट होगई बतलाई जाती है। परन्तु यह बात मनुष्यके सम्बन्धमें ठीक नहीं मान्दूम होती। मनुष्योंमें चंवर या चौंगीके प्रयोग प्रचलित होनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि उसने पूँछकी आवश्यकता नहीं समझी अथवा गौण समझी थी। ऐसी दशामें या तो पूँछ नष्ट ही न होती अथवा यदि मनुष्य योनि बननेसे पहले नष्ट हो गई थी तो आवश्यकता करनेके हेतुसे नवीन उत्पन्न हो जानी चाहिए थी परन्तु नहीं होती।

घटती पृथ्वी पर एक समय तो अग्नि का, दूसरे समय जलका आधिक्य हुआ। परन्तु दोनोंका एक समय हास होगया, बालक उत्पन्न होकर बढ़ता है, युवा होकर फिर बृद्ध होना शुरू होजाता है और अन्तमें मृत्युका ग्रास बन जाता है। जो हासकी अन्तिम सीमा है: वृश्च उगते हैं, बढ़ते हैं, समय आता है कि नष्ट होजाते हैं इसी प्रकार प्रत्येक कीट-पतंग पत्थर, पक्षीमें यह दोनों नियम समानान्तर रेखाकी तरह काम करते दिखाई देते हैं। परन्तु यह अन्तर्यानि विकासवाद हास शून्य बतलाया जाता है यही इसकी मुख्य त्रुटि है। एक-एक यानि अथवा एक-एक प्राणिवर्गके भीतर विकास और हास दोनों होते हैं और वे दोनों सबको स्वीकृत हैं उनसे कोई इनकार नहीं कर सकता। परन्तु एक योनि विकसित होकर दूसरी योनि बन गई यह कल्पनामात्र है। आज तक समुद्रोंमें इन्द्रियहान अर्मावा कीट उसीप्रकार देखा जाता है, यह वर्ग इसा अवस्थामें क्यों शेष है ? इसका विकास क्यों नहीं हुआ ? योनिका विकास केवल उसी अवस्था में माना जा सकता है कि विकसित होनेपर वह अविकसित अवस्थामें बाकी न रहे। जब वह योनि, जिस विकासवादमें आदिम योनि बतलाई जाती है, अब भां ज्यों-की-त्यों अविकसित रूपमें बाकी है तो उसके लिए तो विकास खपुण्णके तुल्य ही हुआ। क्रमपूर्वक योनियोंके मिलनेपर (यद्यपि पूरा क्रम मिला नहीं है), कहा जाता है कि विकासकी भित्ति स्थापित है इसका सुगमतासे यह उत्तर भी तो दिया जा सकता है कि एक ही रत्नयिताकी रचना होनेसे इसमें मेल होना अवश्य ही था। जिस प्रकार एक कुम्भकारके बनाए हुए बर्तनोंमें मेल होता है।

योनिविकासके साथ एक और बात है जो विकासवादमें ज्ञानवृद्धिकी कल्पना, सम्मिलित कर ली गई है कि योनियों कल्पनामात्र है के शारीरिक विकासके साथ उसी क्रम से ज्ञानका भी विकास होता है और इसी ज्ञानके विकासके आधारपर कहा जाता है कि प्रत्येक ज्ञानके विकासका परिणाम है, परन्तु विकासवादियोंका यह दावा सब जगह कल्पनामें भी नहीं आ सकता, विशेषकर सूक्ष्म कलाओंमें यह नियम चरितार्थ होता हुआ नहीं दिखाई देता, और बतलाया जा सकता कि चित्राकारी तथा गानविद्या आदि किसप्रकार विकसित हुए हैं।

यही बात सर ऑलिवर लॉजने भी लॉज भी इसमें सहमत नहीं कही है कि सूक्ष्मकला चातुर्य विकासवादका परिणाम नहीं है। बालफोर (Balfour) महोदय इस (लॉजके) मतसे सहमत हैं। * :—

डाक्टर वॉलेस, जो विकासवादके, डार्विनके साथ, सह अन्वेषक माने जाते हैं, वे भी इससे सहमत नहीं कि योनि विकासके साथ ज्ञानका भी विकास होता है। वे प्रचलित पश्चिमीय सभ्यता पर विचार करते हुए (और उसकी तुलना उस सभ्यतासे करते हुए) जिसका वर्णन ऋग्वेदमें हुआ है लिखते हैं:—

“हमको स्वीकार करना चाहिए कि वे मस्तिष्क, जिन्होंने

ऐसे विचारोंको जो इन वेदकी ऋचाओंसे प्रकट होते हैं विचारा. और उपपन्न भाषामें प्रकट किया, किसी अवस्थामें भी हमारे उत्तमसे उत्तम धार्मिक शिक्षकों, कवियों, हमारे मिलटनों और हमारे टेनीसनोंसे, न्यून नहीं थे^५ ।

डॉक्टर वॉलेसने न केवल भारतवर्षकी सूक्ष्म कलाओं और इमारत आदिसे सम्बद्ध शिल्पविद्याओंको आजकलकी सूक्ष्म-कलाओं और शिल्पोंके तुल्य ठहराया है किन्तु मिश्र, यूनान और असीरिया जानिकी भी, भिन्न-भिन्न विद्याओं और सभ्यताओं को. आजकलकी विद्याओं और सभ्यताओंसे निम्न काटिका नहीं ठहराया और ऐसी अवस्थामें उन्हें बाधित होकर स्वीकार करना पड़ा कि “इसलिए क्रमपूर्वक ज्ञानवृद्धिके कोई प्रमाण नहीं है, उनके शब्द यह है:—There is, therefore, no proof of continuously increasing intellectual power.”

मिश्रके प्राचीन लेख जो भोजपत्रके सदृश
प्रोफेसर डूरभैन भी एकपत्र पर, जिसे पैपाइरी (Papyri)
सहमत नहीं । कहा जाता है, अंकित है, उस समयके
विचार, विश्वास और आकांक्षाओंको प्रकट करते हैं, जिस
समय को, मिश्रकी जगत्प्रसिद्ध मीनारोंके निर्माणकालसे भी
पहला बतलाया गया है । इन तथा इसप्रकारके मिश्रके अन्य

†Social Environment and moral progress
by, Dr. wallace. p. 14.

‡ The Social Environment and moral pro-
gress P. 8 to 26.

प्राचीन लेखोंको पढ़ कर प्रोफ़ेसर इग्मैनने अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है:—

“जब कोई विचारता है कि नील नदीकी घाटियोंके निवासी भी मनुष्य ही थे, और हमारी जैसी ही इच्छाएँ, उद्वेग और उत्साह रखते थे। उन्हींमेंसे एक पुरुष क्रियात्मक समाजशास्त्रके प्रश्नोंको हल करनेके लिए उसी प्रकार यत्नवान् है जैसे अपने असली स्वरूपमें और अपने सच्चे अर्थोंमें, हम तक यहां लाई जा सकती हैं? (यदि लाई जायें तो) उनसे जो वास्तविक शिक्षा मिलेगी, (यदि हम इस संभावनाको चिन्तन में दृढ़तासे धारण रखेंगे कि मिश्रके इतिहासकी वृत्तियां जो तीन या चार सहस्र वर्षोंके भीतर अर्थात् उस कालसे सम्बद्ध हैं जिसने मिश्रके मानास-निर्माताओंको सिकन्दरके समकालीन पुरुषोंसे पृथक् किया था,) वह यह होगा कि वह समय मिश्र जातिके अधःपतनका अन्धकारमय युग था, * (अर्थात् उन्नतकाल प्रचलित यौरोपीय उन्नतकालसे कही बढ़कर होगा) तो फिर क्रमशः ज्ञानवृद्धि कहाँ रही ?

मीटर लिक्का
सम्मति भी इस
विरुद्ध है।

ऋषि उत्पात्तिका क्रम जो पश्चिमी विद्वान् बतलाते और जो भारतीय ऋषि लिख गए हैं और जिसका कुछ उल्लेख मनुस्मृतिमें भी है इन सबपर विचार करते हुए मीटर लिक्का महोदय जो पश्चिमी विद्वानोंमें बहुत ऊँचा आसन रखते हैं, अपनी एक नई पुस्तकमें लिखते हैं:—‘उदाहरणके लिए क्या यह आकस्मिक घटना थी कि पृथ्वी व्यस्तता (Chaos) से उत्पन्न कर प्रचलित रूपमें

समा गई, और प्राणियोंमें ठीक उसीप्रकार भरपूर हो गई जैसा कि कहा जाता है ?—मनुस्मृतिके अनुसार, आकाश (ईश्वर) से वायु उत्पन्न होता है और वायु परिवर्तित होकर प्रकाश (अग्नि) का जन्म देता है और वायु और प्रकाशके मेलसे जल उत्पन्न होता है और जलही समस्त प्राणियोंका जन्मदाता है । जब यह जगत् अंशकार (प्रकृति)से प्रादुर्भूत हुआ तो भागवतपुराणानुसार, जिसे हिन्दू वेदवत् समझते हैं, अति सूक्ष्म आदिम तत्त्व ने औषधि बीज रूपमें उत्पन्न हुई । उससे वृक्ष उत्पन्न हुए और वृक्षों से जीवन उन विलक्षण जन्तुओंमें पहुँचा जो जलमें पंक (Slime) से उत्पन्न हुए थे । फिर जीवन भिन्न प्रकारके अनेक रूपों और जन्तुओंमें, जैसे औषधिसे कृमि (Worms) कृमिने कीट (Insect) उससे साँपके सदृश जन्तु उनसे कछुए आदि । (Tortoises) उनसे पशुओं और जगली पशुओं में पहुँचा । यह विवरण निम्न श्रेणी का है मनु फिर कहते हैं कि उत्पन्न जन्तु अपने पूर्वजाके गुण प्राप्त करते गए, जिससे अन्त-अन्तके उत्पन्न प्राणियोंमें अधिकतर योग्यता आती गई (मनुस्मृति १।२०) यहाँ तक वर्णन करनेके बाद मीटर लिंक प्रश्न करते हैं कि "डार्विनके समस्त विकासवाद और भूगर्भविद्यामें, क्या यही प्रमाणित नहीं हुआ और क्या उसका पूर्वरूप कमसे कम ६००० वर्ष पहले नहीं कह दिया गया था ? और क्या यह (मनुका मतलाया हुआ) आकाश जिसमें हम अन्ततुल्यसे ईश्वर कहते हैं । जगत्की उत्पत्ति का सिद्धांत वही नहीं है जिसपर अब भौतिक विज्ञान लौट रहा है ?" × × × "कहाँसे हमारे इतिहास कालसे पहले इन पूर्वजोंने, जिसके लिए भयानक अंधकार और अविद्यामें

होना कल्पित किया जाता है। असाधारण ज्ञान प्राप्त किया था जो कठिनता से हमें प्राप्त है ? यदि उनके विचार कुछेक विषयोंमें, जिनका सत्य होना आज भी हम प्रमाणित करते हैं, ठीक थे, तो क्या हम अपनेसे यह प्रश्न उचित रीतिसे नहीं करसकते कि उन्हें (भारतीय ऋषियोंका) प्रकृतिका ज्ञान हमारी अपेक्षा अधिक और ठीक प्राप्त थी ? इसके सिवाय और भी अनेक विषयों में वे ऐसा ही (प्राकृतिक ज्ञानके सदृश) परिमित ज्ञान रखते थे जिसकी तसदीक हम आज तक नहीं कर सकते हैं (अर्थात् वह और उतना ज्ञान हमें अभी प्राप्त नहीं है)—एक बात अवश्य निश्चित है कि उन पूर्वजों को उस दर्जे तक पहुँचे हुए हानेके लिए उनके समक्ष अवश्य बहुत से परिक्षणों, (Traditions) और अनुभवोंके कोप होंगे जिनका हम इस समय विचार भी नहीं करसकते ? और इसलिए (मीटर लिंक सलाह देते हैं) हम सबको उचित है कि उन पूर्वजों के दिए हुए ज्ञान पर अधिक विश्वास और उनका उससे अधिक मान करें जितना हम अब तक करते रहे हैं, मीटर लिंक महोदयने और भी अनेक बातें इसीप्रकारकी अपनी पुस्तक में लिखी हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि मीटर लिंक भारतीय ऋषि मुनियोंको आजके विद्वानोंकी अपेक्षा अनेक विषयोंमें अधिक ज्ञान रखनेवाले समझते थे। फिर क्रमशः ज्ञानवृद्धि कहाँ प्रमाणित हुई ?—



नवां परिच्छेद

मेसोपोटेमियाकी सभ्यता भारत और मिश्रकी प्राचीन सभ्यताओंके लेखबद्ध प्रमाण उपस्थित हैं। तब मेसोपोटेमिया के प्रसिद्ध नगरों नैनवा और बैबीलोन के केवल खंडहर ही अवशिष्ट थे।

१६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लेयार्ड (Layard और रौलिन्सन Rowlinson) आदि विद्याप्रमियोंने इन नगरों के खंडहरोंमेंसे एक पुस्तकालय निकाला जिसकी पुस्तकें कागज़पर नहीं किन्तु ईंटों और पत्थरों पर लिखी हुई थी। वे पुस्तकें पढ़ी गई और उनका अनुवाद किया गया। उनसे उस प्राचीन जाति का इतिहास, कानून, लोकाचार और दैनिक जीवन किस प्रकारका था, ये सब बातें ज्ञात हुईं। उन सबपर विचार करनेके बाद डाक्टर वाल्सने लिखा है कि उस प्राचीन जाति में (इतिहासादि) सब बातें प्राचीन भारत निवासियों और मिश्रियोंसे मिलता-जुलती हैं।*

जब प्राचीनसे प्राचीन जातियोंमें उच्च सभ्यता, उच्च ज्ञानका होना स्वयं पश्चिमी विद्वानोंके लेखोंसे प्रकट होता है तो फिर क्रमशः ज्ञानकी वृद्धि कहाँ प्रमाणित हुई ? इसके साथ ही एक बात और भी है:—

* स एष पूर्येपामपि गुरुःकालेनानवच्छेदान्

यदि क्रमशः ज्ञान-वृद्धि स्वाभाविक रीति से होती तो तब ही स्वयमेव होती है तो इस समय इस समय भी पृथ्वीतलकी सभी जातियों में उच्च सभ्यता अनेक जातियों हानी चाहिए थी । परन्तु इस समय भी अज्ञानी क्यों है ? पृथ्वीतल पर अनेक जातियाँ है कि जिनको पशु ही कहा जा सकता है । उनमें सभ्यता क्या वस्तु होती है, उसका ज्ञान तक पाया नहीं जाता । ध्रुवके समीपवर्ती उन जातियोंको देखें कि जिनके मनुष्य सेलनामक पशुको मारकर उसके मांस और जलमें उत्पन्न एक प्रकारकी काई के सदृश बनस्पतिसे अपना पेट भरते हैं । उसी सेल पशुकी खाल ओढ़ते और उसीकी चरबीसे कर्मा-कभी दीपक जलाते हैं, अथवा जावा वीनियो और सिलीवज़ द्वीपोंकी मनुष्यभक्षक जंगली जातियोंको देखें तो विकासके एक नियमानुसार यह उच्च योनि को तो प्राप्त हो गए परन्तु दूसरे नियमानुसार इनमें क्रमशः ज्ञानवृद्धि क्यों नहीं हुई ?

अतः स्पष्ट है कि स्वाभाविक रीतिसे ज्ञान-परिक्षणोंसे भी वृद्धि नहीं होती इसके सिवाय नैनवा, वैवल्लनके प्रसिद्ध राजा असुरवानापाल, फ्रेडरिक द्वितीय, जेम्स चतुर्थ और महान,

अकबरके समयमें जो परीक्षण किए गए और जिनमें कुल्लेक बालक बिलकुल मनुष्यसमाजसे इसप्रकार पृथक् रखे गए थे कि वे न किसी प्रकारकी बातें मनुष्योंकी सुन सकें और न और किसी प्रकार मानुषी क्रियाओंको देख सकें ।

कुछेक स्त्रियां उनके पालन-पोषण और रक्षणकेलिए नियत थीं समय-समय पर बिना कुछ बोले अथवा संकेत किए उन बालकों को, दूध पिलाना आदि, काम करके एक ऐसे स्थान पर चली आती थीं जहांसे बालकोंको अपनी दृष्टिमें रक्खें। ऐसे सभी परीक्षणोंका एक जैसा ही परिणाम प्रायः सभी समयोंमें निकला, और वह परिणाम यही था कि बालक बहरे और गूंगे थे और उनमें मनुष्यत्वकी एक बात भी नहीं आ सकी थी यह परीक्षण फिर भी, यदि कोई चाहे तो किए जा सकते हैं।

एक पुरुष शिक्षा पानेसे क्यों शिक्षित बन जानवृद्धिके लिए निमित्त अशेषित है जाता है दूसरा मनुष्य शिक्षा न पाने से क्यों मूर्ख रह जाता है ? इस सबका कारण

यह है कि मनुष्यकी ज्ञानवृद्धि (स्वाभाविक रीतिसे नहीं किन्तु) नैमित्तिक रीतिसे किसी निमित्त (गुरु अथवा अध्यापक) के प्राप्त होनेसे होती है। यह निमित्त इस समय तो हमारे अध्यापकवर्ग हो सकते हैं, परन्तु सृष्टिके आरम्भमें जगत्कर्ता के सिवाय और कोई निमित्त नहीं होता, उसीसे ज्ञान प्राप्त हुआ करता है।

वही ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान (इलहाम) कहलाता इलहाम अथवा ईश्वरीय ज्ञान है, और इस नैमित्तिक ज्ञानका दाता होनेसे वह (ईश्वर) आदि गुरु कहलाता है, *

इस नैमित्तिक ज्ञानके सिद्धान्तको अन्य विद्वानोंके सिवाय आजकलके अनेक वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं।

* स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥

योगदर्शन २।२१

“ऐश्वर्य नियमोंका प्रकाश और सञ्ज्ञान सृष्टि-
फिलिटका मत ।

रचना नैमित्तिक ज्ञान (इलहाम) प्राप्त हो जानेके लिए पर्याप्त नहीं हैं जो दुःखोंसे छूटनेके लिए अपेक्षित है । गहरी से-गहरी और उच्च-से-उच्च बुद्धिके लिए भी वे सच्चाइयाँ अपेक्षित हैं जो नैमित्तिक ज्ञानमात्र से प्राप्त होती हैं ।” *

“वेदानुयायी आर्योंके उच्च और शुद्ध विचारों
फिलिपकी सम्मति

का केन्द्र प्रारम्भिक ईश्वरीय ज्ञान था † । हम यहाँ अधिक सम्मतियाँ, न देकर केवल एक वैज्ञानिककी सम्मति और उद्धृत करना चाहते हैं यह सम्मति नवीन और १९१४ ई० में दी गई थी ।”

“यदि हम निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त करना
डाक्टर फ्लीमिंगका मत

चाहते हैं तो वह मनुष्योंके निर्बल मस्तिष्कोंमें बुद्धिके धीमे प्रकाशसे नहीं आ सकता, वह केवल सर्वज्ञ ईश्वरके साक्षात् प्रदत्तज्ञानसे मनुष्योंके परिमित मस्तिष्कोंमें आया करता है” फ्लीमिंगके शब्द यह हैं:—

“If we are to obtain more solid assurances it cannot come to the mind of man groping feebly in the dim light of an assisted reason but only by a communication made directly from this supreme mind to the finite mind of man.” ‡

* Theism by R. Flint page 310 and 320.

† Phillip's Teachings of the Vedas, P. 231.

‡ Science and religion by seven men of science

हैकलका अन्तिम मत यह बात कदाचित् कम रुचिकर न होगी यदि यहां पर हैकलका मत भी प्रकाशित कर दिया जावे। “रिडिल” * के पढ़नेवाले अच्छी तरह जानते हैं कि इस पुस्तकमें उस हैकलने “इहलाम” का कितना खंडन किया था। परन्तु इस पुस्तकके लिखनेके बाद उसकी सम्मति भी हक्सले की तरह, जड़द्वैतवादके सम्बन्धमें उतनी दृढ़ नहीं रह गई थी जितनी उस पुस्तकके लिखते समय थी, स्वयं हैकलने एक “मेगजीन” (मासिक पत्र) के लेखकसे अपने जड़द्वैतवाद और उपर्युक्त पुस्तकके सम्बन्धमें वार्तालाप करते हुए कहा था, “यह विस्तृत और कभी न समाप्त होनेवाला दार्शनिकवाद है, शायद यह सदैव अपूर्ण हो रहेगा और यह कूट प्रश्न कभी हल न होगा, मैंने जीवनके प्राकृतिक नियम और विश्वके उचित आशयके प्रकट करनेकी चेष्टाकी है। परन्तु फिर भी प्रश्न बाकी ही रहेंगे और वह (प्रश्न) यही है जैसा तुम कह रहे हो:—“हम कहाँ से आते हैं” “हम क्या हैं, और कहाँ जाते हैं,” हैकलके शब्द ये हैं:—

“It is a vast and never ending programme of philosophy. Perhaps it will always remain incomplete and the riddles always unanswered I have striven for a reasonable interpretation of life nature and the world. But the riddles remain.”

* The article in the T. P's Magazine quoted in the materialism by Darab Dinsha Kanga p.52.

'They are as you observe a trinity:

"Whence do you come?"

"What are we?"

"Whither do we go?"

हैकलके इन शब्दोंमें, उस स्वमताभिमानकी, गन्ध भी नहीं है, जो उसकी पुस्तक 'रिडिल' में पग-पग पर देखा जाता है। बात यहीं समाप्त नहीं होती। हैकलने "इलहाम" के सम्बन्धमें जो दूसरा मत दिया है वह भी सुननेके योग्य है। जीव और ईश्वर की सत्ता की चर्चा करते हुए वह कहता है यदि स्वीकार कर लिया जावे कि कोई उच्च शक्ति ईश्वर है तो उससे ज्ञान प्राप्त होनेकी संभावना हो सकती है। हैकलके शब्द ये हैं:—

"They may or may not receive such information but there is no Scientific Ground for dogmatism on the subject nor any reason for asserting the inconceivability of such a thing"

इनका आशय यह है कि उन्हें ऐसा ज्ञान प्राप्त हो या न हो परन्तु इस विषय (की संभावना) का विरोधी कोई वैज्ञानिक हेतु नहीं है और न कोई कारण है जा ऐसे विषयके विचार कोटिमें आनेका बाधक हो। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि यदि ईश्वर की सत्ता स्वीकार कर ली जावे तो फिर "इलहाम" की संभावना हो सकती है जैसा कि कहा जा चुका है। दूसरे शब्दोंमें यही बात

*The article in the T.p'o. Magazine quoted in the Materialism by Darab Dinsha Kanga P.153.

इस प्रकारकी कही जा सकती है कि ईश्वरकी सत्ताके स्वीकार करनेसे क्रमशः ज्ञानवृद्धि, हैकलके मतानुसार, आवश्यक नहीं रहती ।

दसवाँ परिच्छेद

यहां एक अनिवार्य प्रश्न यह उठता है कि क्या विकासवाद नास्तिकवाद है ? “डार्विन” का जहांतक सम्बन्ध है वह तो ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनोंकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता था जैसा कि आगेके पृष्ठ प्रकट करेंगे । परन्तु इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि जड़वादियोंके अधिकारमें पहुँचकर विकासवाद भी उसी प्रकार जड़वादसे प्रभावित हो गया जिस प्रकार १९वीं शताब्दीका विज्ञान प्रभावित था । वास्तवमें विज्ञान और धर्ममें विरोध नहीं है, परन्तु जिसप्रकार मध्यकालीन योरपके ईसाई-पादरो विज्ञानके विरोधी थे उसी प्रकार अपनी बारीमें जड़द्वैत-वादी (नास्तिक) वैज्ञानिक, धर्मके विरोधी बन रहे हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि विकासवादके आविष्कारक डार्विन (और डाक्टर वालेसको भी उसके साथ सम्मिलित कर लें तो उन) के नास्तिक न होने पर भी जड़वादी वैज्ञानिकों की कृपासे विकासवादपर नास्तिकवाद अपना अधिकार किए हुए हैं ।

अच्छा अब डार्विनका मत सुनिए । “वर्गोंके आदि कारण” नामक पुस्तकके प्रथम संस्करण में इस बातका विचार करते हुए कि प्रारम्भमें

डार्विन ईश्वर-
वादी था

अब तक विकसित नहीं। उदाहरणकी रीतिसं अध्यात्मविषय ही को लेवें तो प्रतीत होगा कि वह भारतीय सभ्यता-कालमें जितना उन्नत हो चुका था उतना अब उन्नत नहीं है, अनेक मानसिक शक्तियां योगके द्वारा प्राप्तकी जाती थीं, परन्तु अब वे अविकसित ही रहती हैं। इस प्रसङ्गमें एक प्राचीन आविष्कारका उल्लेख कर देना कदाचित् अनुचित न होगा। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में हम सूर्यकांत और चन्द्रकांत* का विवरण पाते हैं उनमेंसे पश्चिमी विद्वानोंकी खोजोंसे सूर्यकांति (आतिशः शीशे) का तो पता चल गया है परन्तु चन्द्रकांत का नहीं, चन्द्रकांतके सम्बन्धमें कुछेक लेख यहां उद्धृत किये जाते हैं:—

(१) चन्द्रकांतिसे उत्पन्न जल राक्षसों (रोगाणुओं) का नाशक, शीतल, आह्लाददायक, ज्वरनाशक, दाह और विषको शांत करनेवाला, शुद्ध तथा गर्मीका मारनेवाला कहा गया है†

(२) चन्द्रकांत मणिको घड़ा बनाकर चांदर्नामे रखनेसे ‡ उसमेंसे जलकी धारा निकलने लगती है ।

* इस मणिको रात्रिमें चन्द्रमाके सम्मुख इस प्रकार रखने से कि उसकी किरणें उसपर पड़ें, उस (मणि) में से पानी निकलने लगता है ।

† रक्षोघ्नं शीतलं ह्लादि ज्वरदाहविषापहम् । चन्द्रकांतोद्भवं वारिपित्तघ्नं विमलं स्मृतम् ॥ सुश्रुत सूत्रस्थान ४५।३०

‡ एषमृगांकोऽपि निम्बोपलमयकलशमुखान् । अच्छाच्छा-

(३) फ़ैज़ीने भी लिखा है कि एक दूसरा चमकता हुआ सफ़ेद पत्थर भी है जिसे चन्द्रकांत कहते हैं, उसे जब चन्द्रकिरणों के सम्मुख रखते हैं तो उसमें पानी गिरता है, इससे स्पष्ट है कि यह मणि फ़ैज़ीके समयमें भी थी, परन्तु आजकलके पश्चिमी विद्वान् इससे अनभिज्ञ हैं। यदि विकासके साथ हास न होता और क्रमशः उन्नति ही होती जाती, तो यह न होता कि पश्चिमी विद्वान् (आजकलके विकासवादियोंसे अभिप्राय है) उतना भी ज्ञान न रखते जितना हजारों वर्ष पूर्व प्राचीन आर्य रखते थे। इसलिए स्वभावतः क्रमशः ज्ञानवृद्धिका वाद (बिना निमित्त कारणके) कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अस्तु हमने देख लिया कि जिस प्रकार कपिलके दर्शन का परिवर्तित रूप चेतनाद्वैत (माया) वाद, केवल एक निर्गुण ब्रह्मकी सत्ता स्वीकार करनेसे उलझनोंमें पड़ा हुआ है, उससे भी कहीं बढ़ कर दूसरा प्रवर्तित रूप, जड़द्वैत (एकाणु) वाद विवादका विषय बन रहा है और उसके लिए अपनी सत्ता

मविच्छिन्नधारां निजकराभिमर्शान् आप दहन ॥

चम्पू रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक २३

† आईन अकबरी फ़ैज़ी-कृत का आंगल भाषानुवाद पृष्ठ १०। अंगरेजी अनुवाद इस प्रकार है:—

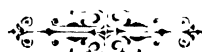
“There is also a Shining Stone called Chandra Kant which being exposed to the moon's beams drops water.”

का स्थापित करना असम्भव-सा हो रहा है । अतः कपिलके दर्शनका शुद्ध रूप ब्रह्मके अतिरिक्त जीवात्मा और प्रकृतिकी नित्य सत्ता ही स्वीकार करनेके योग्य है । इसीसे विश्वके गूढ़से गूढ़तम प्रश्न हल हो सकते हैं और सेमुल्लेखके प्रश्नोंके भी उत्तर सुगमतासे, दिए जा सकते हैं ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

इस भूमिकाके समाप्त करनेसे पहले दो जीवात्मा और पश्चिमी शब्द पश्चिमी अध्यात्मवाद संघोंके सम्बन्ध अध्यात्मवाद संघ में कह देना, कदाचित् अनुचित न होगा, इस संघकी ओरसे समय-समय पर जो परीक्षण किए गए, और जिनका विवरण संघकी ओरसे प्रकाशित कार्य-विवरणों (रिपोर्टों) में दिया गया है, उनपर और उनपर किए गए आक्षेपोंपर विचार करनेसे कोई भी जिज्ञासु सुगमतया इस परिणामपर पहुँच सकता है कि संघके परीक्षण जो जीवित पुरुषोंके प्रभावित करने से सम्बद्ध हैं, अर्थात् जिनमें एक अथवा एकसे अधिक पुरुष अपना प्रभाव किसी माध्यमपर अप्रकट (आत्म) साधनोंसे डालते हैं, और जिसे संघकी परिभाषामें "परिचित ज्ञान" कहते हैं, स्वीकार किए जाने योग्य हैं, परन्तु वे परीक्षण जो मृतात्माओंके बुलाने, उनसे प्रश्नोत्तर करने, उनका चित्र उतारने आदिसे सम्बद्ध हैं, विवादास्पद हैं । किए हुए आक्षेपोंमें प्रमाण दिए गए हैं, और घटनाओंका उल्लेख किया गया है, कि किस

प्रकार कतिपय पुरुषोंने इसप्रकारके संघोंका माध्यमादि बनाना अपना व्यवसाय बनाया हुआ है । परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि निकट भविष्य ही में इन प्रश्नोंका एक अथवा दूसरी प्रकारसे हल होगा, क्योंकि पक्ष और विपक्ष दोनों ही उद्योगशील बन रहे हैं, और अधिक संभावना यही है कि यह परीक्षण असफल सिद्ध होंगे, क्योंकि आवागमनका प्रसिद्ध भारतीय सिद्धान्त जो अब फिर नए सिरेसे पश्चिमी जगत्में प्रतिष्ठित हो रहा है, वह भी इन परीक्षणोंका विरोधी है, जो कुछ हो हमें इनके निर्णय करने के लिए कुछ काल प्रतीक्षा करना पड़ेगा ।



स्थान—नारायण-आश्रम
रामगढ़ (नैनीताल)
ज्येष्ठ, शुक्ल ५ सम्बत्
१९८६ विक्रमी ।

नारायण प्रसाद
बानप्रस्थी ।



आत्म-दर्शन



* ओ३म् *

आत्मदर्शन

प्रथम अध्याय

कतिपय प्राचीन तथा पूर्वीय जातियोंमें
प्रचलित आत्म विचार ।

पहला परिच्छेद

प्रारम्भ

सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिष-ग्रन्थोंमें वर्णन है कि यह सृष्टि जिसमें स्थित प्राणियोंकी सत्तापर, हम एक दृष्टि डालना चाहते हैं, दो अरब * वर्षके लगभग हुए जब उत्पन्न हुई थी, और अभी दो अरब वर्षसे अधिक कालतक स्थित रहकर प्रलयको प्राप्त होगी । बीते हुए विस्तृत कालमें पृथ्वीके भिन्न-भिन्न देशोंमें अनेक जातियोंका अभ्युदय और पतन हुआ । किन्हीं-किन्हीं

* सृष्टिकी अवधि ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष की है जिसमेंसे अबतक एक अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ हजार ३४ वर्ष बीत चुके हैं । यह सृष्टि संवत् है, जो प्राचीन कालसे प्रचलित चला आता है ।

जातियोंका तो अब पृथ्वीतलपर चिन्ह भी बाकी नहीं है, कुछ घिसे-घिसाये अंक कागज़के पृष्ठोंपर उनकी सत्ताकी सूचना देनेके लिए अवश्य बाकी हैं । कुछेक प्राचीन जातियाँ पश्चिमी सभ्यतामानियों-द्वारा निकटभूत * ही में नष्ट हुईं और कुछ नष्ट हुआ चाहती हैं । इन जातियों-द्वारा समय-समयपर अनेक विद्याओंका प्रचार हुआ । प्रचलित विद्याओंमेंसे, जो प्राकृतिक गतिके अनुकूल थीं, अबतक किसी-न-किसी रूपमें, बाकी है । अन्य सब नष्ट-भ्रष्ट हो गईं ।

अवशिष्ट विद्याओंमेंसे सबसे अधिक विवाद परोक्षका विषय होनेसे, अध्यात्मिक विद्याओंपर, प्राचीन-कालसे अब तक होता चला आया है ।

अध्यात्मविद्याओंमें मुख्यता विवादास्पद ईश्वर और जीवकी सत्ता है । हम इन पृष्ठोंमें इस समय केवल जीवकी सत्ताका विचार करना चाहते हैं । जीवकी सत्तापर विवाद उपनिषत्काल से लेकर अबतक चल रहा है । यदि एक समय नचिकेता † इसी प्रश्नकी जिज्ञासाके लिए यमाचार्यकी सेवामें उपस्थित हुआ था और आचार्यने विषकी गहनता यह कहकर प्रदर्शित की थी कि प्राचीन कालमें देवताओं (उत्कृष्ट विद्वानों) ने भी इसमें चिकित्सा की थी, तो आजकल भी पश्चिमके धुरन्धर वैज्ञानिक हैकल, हक्सले इत्यादि भी उसीप्रकार संदिग्धभावस्थामें

* ब्रिटिश गायनाकी प्राचीन जातिका अन्तिम पुरुष १९१५ ई० में मृत्युको प्राप्त हुआ था, अब प्राचीनगायना निवामियोंका चिन्ह पृथ्वीतलपर बाकी नहीं रहा ।

† देखा कठोपनिषद्, प्रथमवल्ली श्लो० २०

विषयके अथाह-सागरमें डुबकियां लगा रहे हैं। अग्नू हम चाहते हैं कि इस विषयका विम्बित इतिहास जिनना मिल सकता है, विचार और ज्ञानवृद्धिके उद्देश्यसे लिखें, उस समयमें जब पृथ्वीतलपर मनुष्य जातिका प्रथम बार प्रादुर्भाव हुआ था और अबतक जीवात्माकी सत्ता किस-किस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों और जातियोंमें मानी जाती रही है, इसपर भी एक दृष्टि डालें।

दूसरा परिच्छेद

असीरियन और वैलोनियन जातियोंके आत्म-सम्बन्धी विचार जो उनकी प्रार्थनाओंसे प्रकट होता है।

असीरियन और वैलोनियन जातिके पुस्तकालय जो पृथ्वी की तहमेंसे पश्चिमी विद्वानोंके उद्योगसे खोदकर निकाले गए हैं, संसारकी अद्भुत वस्तुओंमेंसे एक है। इनमें विलक्षणता यह है कि ईंटोंपर लिखे हुए लेख ही इस पुस्तकालयके पुस्तक हैं। उनकी भाषा आजकल पृथ्वीतलपर न कहीं बोली जाती और न समझी जाती है। प्राचीन भाषा वेत्ताओंने उन लेखोंके पढ़नेका सराहनीय यत्न किया है। परन्तु यत्न अभी तक इतना असफल है, कि कभी-कभी एक ही लेखका आशय एक व्यक्ति कुछ समझता है, तो दूसरा कुछ समझने लगता है। कभी-कभी एक ही व्यक्ति एक बार कुछ तो दूसरी बार कुछ और समझता है। अस्तु इस प्राचीन जातिकी कुछ प्रार्थनाएँ यहाँ अंकितकी जाती हैं।

(१) दयाकी रेखाएँ, जो तेरे मुखद्वेपर नित्य चमक रही हैं, मेरे दुःखोंको दूर करें ।

(२) मेरी भूलें, मेरे पाप दूर हो जावें ।

(३) मुझे उनकी समीपता प्राप्त होवे क्योंकि मैं उन उच्च देवोंका उपासक हूँ और उनकी शक्तिके सम्मुख गिर झुकाता हूँ ।

(४) वह शक्ति सम्पन्न मुखड़ा मेरी सहायताकी आंग फिरे, और तारोंके सदृश चमके और मुझे प्रसन्न और अत्यन्त सम्पत्तिवान् बनावे ।

(५) वह पृथ्वीकी तरह, प्रत्येक प्रकारकी भलाई और प्रसन्नता प्रदान करे ।

(६) उस दिन जब मेरे लिए मृत्यु आता हो, जिसमें मुझे नष्ट होना पड़े, हे ईश्वर ? मुझपर दयाकी दृष्टि करना ।

(७) मेरे अपराध क्षमा हों और मैं पापोंमें छूट जाऊँ । अभी तक यह ज्ञान नहीं हो सका कि इस प्राचीन जातिका धर्म-प्रवर्तक कौन था और उसके धर्मके मुख्य-मुख्य सिद्धान्त क्या थे? इन प्रार्थनाओंमें ईश्वर और जीव दोनोंमें, इस जातिका विश्वास प्रकट होता है ।

तीसरा परिच्छेद ।

पारसी मत और आत्मविचार ।

पारसी मतके एक आचार्य्य सामान प्रथमने जीवात्माको

नित्य प्रकट करते हुए उसका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना बतलाया है । * पांचवें सामानने इसी शिक्षाका विस्तार करते हुए उसका समर्थन किया ।

एक और जगहपर आत्माका वर्णन करते हुए उसको एक अमिश्रित द्रव्य और प्रयत्नशील कहा है और बतलाया है कि परस्पर बात-चीत करते हुए मनुष्य “हम” और “तुम” शब्दोंमें उसीका संकेत करते हैं । वह शरीरका निर्माण करता है, न शरीर के मेलका परिणाम है और न प्राकृतिक अणुओंमें (पानीमें लवणके सदृश) मिला हुआ है । †

एक और स्थानपर लिखा है कि आत्मतत्त्व और आत्मसत्ता का ज्ञान केवल आत्माको प्राप्त होता है । शरीरकी अन्य किसी शक्ति (इन्द्रियादि) से यह ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता । मृत्यु होनेपर जीव मरता नहीं है वह समस्त अच्छी और बुरी बातोंको (जो उसने की थीं) जानता है यदि यह ज्ञान अच्छी बातों (कर्मों) का है तो उसे प्रसन्नता होती है अन्यथा क्लेश । शरीरके अवयवोंके नष्ट हो जानेसे आत्माके ज्ञानमें कुछ भी हानि नहीं होती । जो पुरुष (अपने ज्ञान और कर्मोंकी दृष्टिसे) उच्चतम होते हैं उनकी मुक्ति हो जाती है उससे निम्न श्रेणीके पुरुष जो शारीरिक बन्धनोंसे छुटकारा प्राप्त कर चुके हैं देवताओंमें सम्मिलित हो जाते हैं, और वे पुरुष जो अधिकतर शुभ कर्म तो करते हैं परन्तु शरीरके बन्धनोंसे मुक्त नहीं हुए हैं

* सामान ग्रन्थके पत्रका खंड १९

† द्वातीय खंड ६७-६८ ।

उन्हें उच्चगति प्राप्त करनेके लिए मनुष्ययोनिमें बार-बार आना पड़ता है। इस चक्र को “फरहंगसार” कहते हैं और जो प्राणी अशुभ कर्म भी करते हैं उन्हें पशुयोनिमें जाना पड़ता है इस चक्रको “नंगसार” कहते हैं ।*

चौथा परिच्छेद

मिश्रके प्राचीन विचार ।

आदिम मिश्र निवासी जीवकां अमर मानते थे । मिश्रका सभ्यताकाल पश्चिमी-विद्वानांके मतानुकूल ईसासे ४००० वर्ष पहलेका है । मिश्र-निवासी मनुष्यकी आयुको मर्यादा १०० वर्षकी बतलाते थे और जीवके अमरत्व सम्बन्धी उनके विचार इस प्रकार थे:—

“छै” (६) तत्त्व ऐसे हैं जो नष्ट नहीं होते केवल संयुक्त वियुक्त होते रहते हैं ।

(१) पहला तत्व “का” है अर्थात् “मनुष्यका ईश्वरीय अंश” यह अंश बिना शरीरके जीवित रह सकता है परन्तु इस के बिना शरीर जीवित नहीं रह सकता । उसके लिए भोजन अपेक्षित था । जब कभी वह मिश्रके मृत पुरुषोंमें, जिन्हे “मम्मी” कहा जाता था, तब उसे वहाँके लोग समझते थे कि बढ़ रहा

* सामान नखुस्तका पत्र (खगड १८-१९) फारसी-भाषा की दमातीरमें ।

है। उसकी सत्ता स्वतन्त्र थी और मनुष्य शरीरसे पृथक् होकर वह अन्तिम निर्णय दिवससे पूर्व उन्हें नहीं मिलता था।

(२) दूसरा तत्त्व “अव” अर्थात् “हृदय” है। यह भी अमर माना जाता था। मनुष्यके मरनेपर जब शवमें उसे सुरक्षित रखनेके लिए मसाला भरा जाता था तो हृदय निकाल लिया जाता था और उसकी जगह एक बनावटी हृदय शवमें रक्खा जाता था, वह साधारणतया एक हरे रंगके कड़े पत्थरपर एक तुच्छ जन्तुको, जिसे गुवरीला कहते हैं, चित्र खोदकर बनाया जाता था। शरीरसे पृथक् होकर हृदय परलोककी यात्रा करने हुए, मनुष्योंसे अन्तिम निर्णय दिवस निर्णयशालामें मिला करता था।

(३) तीसरा तत्त्व “वा” अर्थात् “जीव” है। इस तत्त्वका शरीर एक पक्षीके और शिर मनुष्योंके सदृश बतलाया जाता था। *मृत्यु होनेपर जीव उड़कर देवताओंके पास चला जाता था परन्तु समय-समय पर अपने शव “मग्मी” को देख आया करता था यह भी भोजनकी आवश्यकतासे स्वतन्त्र नहीं था।

(४) “सह” चौथा तत्त्व बतलाया जाता था, “सह” मनुष्य शरीरकी ऊपरी खाल (त्वचा) का प्रतिनिधि रूप है। उसको

* जीवकी यह कल्पना, यूनानियोंके पंखवाले और रोमके तितलोके आकारवाले जीवकी कल्पनासे मिलती जुलती है। मध्यकाष्ठीन जीवकी वह कल्पना कि जीव एक छोटे नंगे बालक के सदृश है और मरते समय जीवके मुँहसे निकला करता था सम्भव है इसी मिथ्री कल्पनाके आधारपर की गई हो।

मिश्रवासी “मर्मीवेद” अर्थात् शवके लपेटनेकी वस्तु कहते थे ।

(५) पांचवां तत्त्व “काहिव” अर्थात् “छाया” भी एक स्वतंत्र तत्त्व समझा जाता था, जब उसका स्वामी (मनुष्य) मरता तब छाया तत्त्व देवलोकीय राज्यमें चला जाता था ।

(६) छठा तत्त्व “उसीरिस” मर्मीका दूसरा भाग अर्थात् मृत पुरुष बिना जीव और जीवनके है इस तत्त्वके साथ एक प्रकार की चेतना होती जो विचार और इन्द्रियानुभवतक सीमित रहती है । इस तत्त्वकी कल्पनाके सम्बन्धमें मिश्रवासीयोंका कथन था कि “मर्मी” दुबाग नहीं उठती वह अपना कार्य पूरा कर चुकती है, वह सर्वत्र अपने ही स्थानपर रहती है । यह तत्त्व “मर्मी” का स्थानापन्न होता है और परलोकगत मर्होंके निवास-स्थानपर चला जाता है । इस यात्राका सविवरण वृत्तान्त एक पुस्तकमें मिलता है जिसका नाम “मरे हुएओंकी पुस्तक” (The book of the dead) है । यात्राके अन्तमें “उसीरिस” “द्विगुण सत्यशाला” में पहुँच जाती है और कतिपय न्यायाधीशों-द्वारा उनका न्याय होता है । न्यायका प्रकार यह होता है कि मृत पुरुषका हृदय, दूसरे पलड़ेमें रखे हुए “सत्यके चिन्ह” वाली तगजूमें तोला जाता है । यदि तोल ठीक उतरा तो “थोठ” देवताकी आज्ञानुसार हृदय मृत पुरुषके पास पहुँच कर शरीर में यथाम्थान मुड़ जाता था ।

इस क्रियाके साथही अन्य सब तत्त्व भी “उसीरिस” को मिल जाते थे इसप्रकार पूर्णताको प्राप्त ‘उसीरिस’ का देवगण अपने लोकमें ग्रहण करलेते हैं । परन्तु यह निरन्तर स्थिति जीवन दृष्टाचारियोंके लिए अप्राप्य है, उनके तत्त्वोंका पुनः

सम्मेलन नहीं हो सकता । यद्यपि ऐसे पुरुषोंका जीव नष्ट नहीं हो जाता, तो भी देवताओंके लोक और संगतिमें न रहनेसे “वेआव-सा” रहता है* ।

पांचवां परिच्छेद

कनफ़्यूशसका मत ।

कनफ़्यूशस सम्पादित चीनका इतिहास, जिसे चीनकी भाषामें “शूकिंग” (Shooking—Book of History) अर्थात् इतिहासकी पुस्तक कहते हैं ईसवी सन से २३५६ वर्ष पूर्व तकका इतिहास है † । इसके अतिरिक्त दो और भी पुस्तकें जिनके नाम “इहकिंग” (Hiking-Book of changes) और “शीकिंग” (She King-Book of Odes) हैं इनमेंसे अन्तिम पुस्तक कनफ़्यूशसकी सम्पादित है । इनमें चीनके प्राचीन मतोंका वर्णन था परन्तु कनफ़्यूशस स्वभावतः सांसारिक पुरुष था परलोक सम्बन्धी बातोंमें उसे बहुत थोड़ा सम्बन्ध था अतः उसने प्राचीन मतोंको पुनर्जीवित करते हुए परलोक सम्बन्धी

* डाक्टर बीडिमेनका पुस्तक “मिश्रमें अमरत्त्व विचार” (The Doctrine of immortality in ancient Egypt by Dr. Wiedemann) के आधारपर यह वृत्तान्त अंकित हुआ है ।

† चीन निवासियोंके लिखे हुए इससे पूर्वके वृत्तान्त भी हैं परन्तु पश्चिमी लेखक उन्हें इतिहासका दर्जा नहीं देते । इसी लिए उन पुस्तकोंका अंग्रेजी भाषामें भी अभाव है ।

बातोंको एक प्रकारसे छाँड़ ही दिया था । कनफ्यूशसके प्रत्यक्षवादी होनेका कुछ अनुमान उसके एक उत्तर से हो सकता है जो उसने अपने एक शिष्यको मृत्युके सम्बन्धमें कुछ पूछनेपर दिया था—“जब तुम जीवन ही को नहीं जानते तब मृत्युको किस प्रकार जान सकते हो” । *अस्तु जो कुछ हो इन पुस्तकों में कनफ्यूशसका मत इस प्रकार पाया जाता है ।

मनुष्योंको भाग्य (Destiny), परोषकार, सदाचार, अधिकार और विश्वासके नियमोंके साथ, स्वर्गसे प्राप्त होता है । भाग्य ही जीवन देता और भाग्य ही मृत्युको प्राप्त कराता है । मनुष्योंके सदृश वस्तुओं का भी भाग्य है परन्तु वे भाग्यको नियमित नहीं रख सकतीं, ... भाग्यका स्वर्ग (Heaven) से वही सम्बन्ध है जो स्वभाव (Nature) का मनुष्यसे । .. . परन्तु प्रज्ञावान् पुरुषके अधिकार स्वर्ग † से कम नहीं होते ‡ । कनफ्यूशस प्राणियोंमें पृथक् जीवात्माका होना मानता था, और उसका विश्वास था कि दिवंगत पुरुषकी आत्मा बिना शरीरके ही बाकी रहती है । इतिहासकी पुस्तकमें जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है प्रारम्भ ही से इस प्रकारकी आत्माओंकी पूजाका विधान मिलता है, वे

*Confucianism by Robert K. Douglas p 68

कनफ्यूशसका तात्पर्य स्वर्ग (Heaven) से ईश्वरकी सत्तासे मिलता-जुलता प्रतीत होना है परन्तु ईश्वरके लिए उसने ‘शैंगटी’ शब्दका प्रयोग किया है ।

† Confucienism by Robert K. Danglas p.75-78

आत्माएँ न केवल पुरुषोंकी ही होती हैं, अपितु वायु, अग्नि, पहाड़ नदी आदिकी भी होती हैं; और सभीकी पूजा होती है। इनका दर्जा स्वर्ग और मनुष्योंके बीचका है। इन आत्माओंके साथ-साथ ही पिशाचोंकी भी मत्ता मानी जाती है। कनफ़्यूशस मृत पितरों और शरीर रहित आत्माओंके इसप्रकार “बलि” प्रदान करता था, मानों वे साक्षात् उसके सम्मुख उपस्थित हैं। इन आत्माओंका काम यह समझा जाता था कि वे अपने उत्तराधिकारियोंकी रक्षा करती हैं और उनके गृहकाय्योंपर दृष्टि रखती हैं। मृत राजाओंकी आत्माओंसे उनके उत्तराधिकारी राज्यकाय्योंमें उनकी अनुमति लिया करते थे, और इसप्रकार अनुमति लेनेके बाद अपनी आत्माओंको उन (आत्माओं) के बलपर निर्भर होना प्रकट भी कर देते थे। और इन आत्माओं के द्वारा ईश्वरसे कुछ प्राप्त होनेकी प्रार्थना भी करते थे।

पूजामें सबसे उच्च स्थान प्राचीन चीनमें “टी” (Te) या “शँगटी” (Shang te-God) अर्थात् ईश्वरका था और ईश्वरकी प्रजा स्वर्ग और भूमिको बलिप्रदान करनेके द्वारा की जाती थी ।*

लाउजीका मत

चीनमें कनफ़्यूशस मतके सिवाय एक दूसरा मत ताउमत (Taouism) के नामसे प्रचलित है यह मत भी लगभग उतना

ही पुराना है जितना कि कनफ्यूशस मत । इस मतका प्रवर्तक लाउज़ी* (Lautze) था, लाउज़ी कनफ्यूशससे ५० वर्ष पूर्व जन्मा था परन्तु वह चिरकाल तक एकांत निवास करता रहा । इसलिये उसके मतका प्रचार कनफ्यूशसके बाद हुआ, लाउज़ीके सम्बन्धमें अनेक अलौकिक बातें, उसके अनुयायियों-द्वारा रचें ग्रन्थोंमें लिखी पाई जाती हैं । कहा जाता है कि लाउज़ी ८१ वर्ष तक अपने माताके गर्भमें रहा और जब उत्पन्न हुआ तो उसकी दाढ़ी और मुँह सफ़ेद हो चुकी थीं । उसकी आयु बहुत लम्बी चौड़ी कही जाती है । २०० वर्ष तक तो उसके पास एक ही नौकर रहा था और उसके वेतनका झगड़ा उस समय हुआ था जब वह पश्चिमकी यात्रा शुरू करना चाहता था, इत्यादि । कनफ्यूशस और लाउज़ीके विचारोंमें बहुत अन्तर था । कनफ्यूशसका मत तो चीनके पुरातन मतोंका ही नवीन रूप था परन्तु लाउज़ीका मत भारतीय उपनिषदोंके आधार पर खड़ा किया गया था । ताउमत. लाउज़ीके एक पुस्तकके आधार पर, चला था जो ५००० अक्षरोंमें पूरी हुई थी । पुस्तकका विषय ताउ (Taou-way) अर्थात् मार्ग और “तिह” (Tih-virtue) अर्थात् भलाई था । किन्हीं-किन्हींका मत उसके अनुयायियोंमेंसे

* इस नामका शुद्ध उच्चारण क्या है इसमें मतभेद है कोई “लाउज़ी” कोई “लाउटज़ी” कोई “लाउटी” कहते हैं ।

† लाउज़ी शब्दका अर्थ है “बूढ़ा लड़का” यह नाम उसका इसीलिए पड़ा था कि वह ८१ वर्ष तक माताके गर्भमें रहा और वह बूढ़ा होकर पैदा हुआ था ।

यह है कि उसने ९३० पुस्तकें रची थीं परन्तु यह बात उतनीही प्रतिष्ठित हो सकती है जितना यह कहना कि १८ पुराण व्यास-रचित हैं। उपर्युक्त ५००० अक्षरोंवाली पुस्तकका नाम 'ताउ तिह किंग' (Taou tih king) अर्थात् 'भलाईके मार्गका पुस्तक' था। पुस्तकके १४वें अध्यायके आरम्भमें लाउज़ीने अपने त्रैत-वादको इसप्रकार लिखा है:—जो नशुग्राह्य होनेपर भी दिखलाई नहीं देता "ग्वि" अथवा "ग्वी" (Khu) है। वह जो श्रोत्रग्राह्य होनेपर भी कानोंमें सुनाई नहीं देता "हि" अथवा "ही" (Hi) है वह जो पहुंचकी सीमामें होनेपर भी स्पर्श नहीं किया जाता। "वि" (wie) है। इसप्रकार ग्वि, हि, वि यद्यपि तीन व्यक्ति पश्चिमी लेखकों-द्वारा कल्पना किए गए हैं परन्तु एक ही सत्ता (ईश्वर) के तीन गुण प्रतीत होते हैं जिन्हें उपनिषदोंमें अम्प, अशब्द और अस्पर्श कहा गया है * 'ताउ' शब्द भी यद्यपि मार्गवाचक है परन्तु लाउज़ीकी पुस्तकमें प्रतीत होता है कि उसने इसे और किसी अर्थमें प्रयुक्त किया है। वह कहता है कि

* पश्चिमीय लेखकोंमेंसे "एमियट" (Amiot) ने इस त्रैतवादको ईसाई त्रैतवादका रूप दिया है। "रिमूसैटि" (Remusat) ने एक पग और आगे बढ़ाकर "ग्वि" का उच्चारण जै (I) कल्पना करके J. V. H. अक्षरोंसे "जहोवा" [यहूदियोंमें ईश्वरका नाम] नाम सिद्ध करनेका यत्न किया है यद्यपि इन लेखकोंको यह स्वीकार है कि ताउमत भारतीय "वेदान्त" मतका ही रूपान्तर है फिर भी जहाँ-तहाँ उसे पश्चिमी शिजाके अनुरूप सिद्ध करनेका यत्न किया है।

समस्त द्रव्य ताउसे उत्पन्न होते उसीके अनुरूप रहते और अन्त में उसीमें मिल जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उसने “ताउ” शब्दको जगतके अनादि निमित्तकारण ईश्वरके लिए ही प्रयोग किया है। यह उत्तम पुरुषके लिए लिखता है कि उसमें प्रत्येक सद्गुण होता है वह उदारता पूर्ण और सार्वलौकिक होने के साथ साथ स्वर्गीय पुरुषके सदृश होता है और मूर्त्तिमय “ताउ” होता है और अमरता उसीका भाग है। ताउके लिए उसने एक दूसरे स्थानपर लिखा है कि स्वर्ग और पृथ्वी और स्वयं देवताओं का भी कारण वही है, उसीको जगदेव कहना चाहिए। उसके लेखोंमें यह भी प्रकट होता है कि वह “ताउ” को ईश्वर माननेके साथ जीव भी उसीको मानता है, उसका कथन है कि वह (ताउ) प्रत्येक प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट होता है, वह प्रविष्ट होता, बढ़ता, भोजन करता और उत्पन्न करता है और इसप्रकार पूर्णताको प्राप्त होता है। वह सब कुछ है और कुछ भी नहीं। वह विश्वरूप है वही “अणोरणीयान् महतो महीयान्” हैं। समस्त प्राणियोंकी रक्षा करता और बल देता है वही स्वर्ग है, वही पृथ्वी है *। एक और पुस्तक जो लाउज़ीके बाद लिखी गई थी और जिसका नाम “दंड और फलकी पुस्तक” है। उसमें अनेक उत्तम शिक्षाओंका वर्णन है, उसीमें एक जगह लिखा है कि छोटे और बड़े अपराधों की संख्या कई सौ है, उन सबको छोड़ देने हीसे प्राणी अमर हो सकता है। फिर अमरताके भी दो भाग हैं एक स्वर्गकी

अमरता, दूसरी पृथ्वीकी अमरता, स्वर्गकी अमरता प्राप्त करने के लिए १३०० अच्छे कर्म करने चाहिएं, और पृथ्वीकी अमरताके लिए केवल ३०० । इसी पुस्तकमें लिखा है कि मृत पितरोंकी आत्माओंको बुरा मत कहो* ।



*Taonism by Robert K. Douglas p.258-267

दूसरा अध्याय



कतिपय प्राचीन पश्चिमी जातियोंमें प्रचलित विचार



पहला परिच्छेद

सर्वजीवत्ववाद (THEORY OF ANIMISM)

इस वादका सार यह है* कि जीव यद्यपि अमर है तथापि प्रकृति (पञ्चभूतों) से पृथक् नहीं हो सकता, हाँ प्रकृतिको योनि और गति देना उसका काम है। विश्व इस प्रकारके जीवों से भरा हुआ है। जीवको इस वादके अनुयाई अमर कहते थे परन्तु अधिकांशमें उसकी सत्ता उसकी स्मृति पर निर्भर होती थी। सदाके अमरत्वके विचारसे वे अनभिज्ञ थे। जीव की स्थिरता उसकी स्मृतिकी स्थिरतापर निर्भर थी, अर्थात् जब-तक दिवंगत प्राणीका प्रेम, उसके शरीरादिके उत्तम प्रभाव

* क्रौली साहिबकी पुस्तक “जीव सम्बन्धी विचार”
(The Idea of soul by A. E. Crawlay p.208-212)
के आधारपर यह वाद लिखा गया है।

अवशिष्ट जगत्में बाकी रहते थे, उसका आत्मा भी जीवित समझा जाता था। स्मृतिके नाश हो जानेसे जीवका भी नाश हो जाता था।

इस वादके ही प्रभावसे केनाडाके प्राचीन निवासी मानते थे कि यदि शरीरमें छुरी भोंक दी जावे तो जीवोंसे रक्तस्रोत प्रवाहित होने लगेगा।

योरपके मध्यकालीन युगमें न केवल जीवित शरीर जलाए गए, किन्तु जीवोंके भी नरककी अग्निमें जलनेका विश्वास प्रचलित था। एक जानि विशेपमें जिसे “काफ़िर” नाम दिया गया है, यह विश्वास प्रचलित था कि जुलाब देनेसे न केवल शरीर मल-रहित होता है, अपितु आत्माके अशुद्ध विचार भी निकल जाते हैं। इसी विचारके प्रभावसे काफ़िर जातिके पुरुष, अपने बालक-बालिकाओंके हृदयसे ईसाई मतके प्रभावकों, जो उनपर मिशन स्कूलोंमें पढ़नेसे पड़ता था, निकालनेके लिए उन्हें जुलाब दिया करते थे।

चीन, ब्राज़ील और आस्ट्रेलियाके आदिम निवासी शरीर के काटने बिगाड़नेका प्रभाव जीवपर होना मानते थे। परन्तु यदि जीवशरीरमें निकल चुका तो शवके काटने आदिका कोई प्रभाव उसपर नहीं हो सकता।

“फ़िजी” निवासियोंके मतानुसार मरने पर जीवके अणु उसीप्रकार छिन्न-भिन्न हो जाते थे जिस प्रकार शरीरके।

इन जातियोंके विश्वासानुसार जीव एक फड़फड़ाने या उड़नेवाली वस्तु है जो शीघ्रतासे आता और शीघ्रतासे ही चला जाता है, परन्तु उसका पकड़ना अथवा रोकना कठिन है, इस

लिए उसे अथवा पक्षियों, तिनलियों, पतंगों, मक्खियों, छिपकली और सर्प, उड़ने अथवा शीघ्रताके साथ चलनेवाले क्षुद्र जन्तुओंमें उपमा दी जाती थी। ये सब चिन्ह जीवके हैं जो चेतनाके प्रभावके साथ-साथ बहता है और जो एकाग्रचित्त हीमें रोक जा सकता है।

जीवकी अमरताका प्रारम्भिकरूप इन जातियोंके मतानुसार यह है कि यद्यपि प्राणी मर जाता है परन्तु उसकी मूर्ति अन्योके मस्तिष्कोंमें बाकी रहती है।

जिसप्रकार जीवके अमरत्वका उन्हें अधूरा ज्ञान था उसी प्रकार वे स्थिर मृत्युके विचारमें भी अनभिज्ञ थे।

अपनी स्थितिके अनुकूल वे इस प्रकारके विषयोंपर अधिक विचार करनेमें बचते थे।

तो भी मृत्यु सम्बन्धी उनके विचार ये थे कि मृत्यु प्राकृतिक हेतुओंमें कठिनतासे हो सकती है। यदि कोई जादूगरी में किसीको रोगी न कर देवे अथवा मार न देवे अथवा किसी अम्याचारमें कोई मारा न जावे तो वह प्राणी असीम कालतक जीवित रह सकता है।

जीव अवस्थानुसार शरीरमें पृथक् होता और हो सकता है, उसका शरीरमें सम्बन्ध, उनके सरल अन्तःकरणानुसार, एक गुप्त भेद है, जीव जब शरीरमें होता है तो शरीरकी वृद्धि के साथ-साथ ही बढ़ता है और शरीरसे चला भी जाता है और शरीर मिलनेपर प्रकट हो जाता है।

जब आंखें बंद करता है तब प्राणी जीवको और जब खोलता है तो शरीरको देखता है।

दूसरा परिच्छेद

प्राचीन अन्य देशी जातियोंमें आवागमन ।

आर्योंकी प्रथानुसार आवागमनका सिद्धान्त प्राचीन जातियोंमें प्रचलित था । इस सिद्धान्तके अनुयायी मनुष्य, पशु-पक्षी और वृक्षोंकी आत्मामें कोई भेद नहीं करते थे, मनुष्य का आत्मा सुगमतासे पशु-पक्षी और वृक्ष योनियोंमें जा सकता है । शरीर जीवका स्थायी निवास गृह होता है । कर्मफल पानेकी दृष्टिसे जीवका एकसे दूसरे शरीरमें जाना अनिवार्य है ।

प्राचीन मिश्र और मिश्रसे जाकर प्राचीन यूनानमें भी आवागमन प्रचलित था । मिश्रमें आवागमन किसप्रकार माना जाता था, टेलर साहबका मत इस विषयमें उपर्युक्त कथनसे कुछ भिन्न है । वे कहते हैं कि प्राचीन मिश्रमें आवागमन नहीं, किन्तु गुप्त भेदोंमें मूरत बदल जानेका वाद प्रचलित था । टेलर साहबके इस मतके सर्वथा विरुद्ध बाकर साहबका मत है, जिन्होंने स्पष्ट रीतिसे आवागमनका प्राचीन मिश्रमें माना जाना प्रमाणित किया है † ।

कुछ कालके बाद आवागमनके स्थानपर कहीं कहीं मुर्दा के जी उठनेका मत प्रचलित हुआ । प्रथम यह मत

* 'Tylor's primitive culture Vol. 11.

† Reincarnation by E.D. Walker P. 197-200.

एशियामें प्रचलित हुआ। परन्तु वहाँ उसका प्रचार नहीं हुआ। उसके बाद “पाल” के प्रभावसे पूर्णरूपसे इस वादका प्रचार खीष्ट मतावलम्बियोंमें हुआ और प्रचार ही नहीं हुआ अपितु उनका मुख्य सिद्धान्त बन गया।

इस परिवर्तनके बाद भी आवागमन यहूदियोंकी फ़िलासफी का एक अंग बना रहा।

मैनीकियन (तीसरी शताब्दीमें एशियामें प्रचलित एक पन्थ) नेस्टोरियन (पाँचवीं शताब्दीमें रूममें प्रचलित एक ईसाई पन्थ) और “हरमन” पर्वतकी गुफाओंमें रहनेवाले पुरुषभी आवागमन को मानते रहे*।

अमृत आदिम निवासी जीवकों आंशिक अमर और आंशिक मरणधर्मा मानते हुए भी, पुनर्जन्मको विशेष जातियोंके लिए एक प्रकारकी रिआयत समझते थे। उदाहरणके लिए टांगान्दीपमें पुनर्जन्मका अधिकार कुछेक विशेष जातियोंको ही माना जाता था। यही अवस्था उत्तरी अमरीकाके आदिम निवासियों की थी, जहाँ माना जाता था कि सरदारों, चिकित्सकों और कुछ अन्योको अधिकार था कि अपने मृत पितरकी आत्माओंके साथ तम्बाकू, पिपे, गाँ, और नाचें, परन्तु सर्वसाधारण मरनेके बाद जीवन ग्रहण करनेके अधिकारी नहीं माने जाते थे। उनके मृत पितर कब्रोंमें ही पड़े सड़ा करते

* The Belief in personal immortality by E. S. P. Haynes P. 13.

थे* । इसी प्रकार कांगो-निवासी मानते थे कि स्त्रियोंके लिए पुनर्जन्मकी कोई आशा नहीं ।

निकागा गोआ (गायना) के निवासियोंके लिए प्रसिद्ध है कि उनका सिद्धान्त था कि यदि एक पुरुष उत्तम रीतिमें अपना जीवन व्यतीत करे तो मृत्युके पश्चात् देवताओंमें वाम करता है, परन्तु यदि रंगी होकर मरता है तो उसका शरीरके साथ दुबारा मरना पड़ेगा† । दुबारा मरनेसे उनका तात्पर्य यह है कि “क्यामत” के दिन न्याय होनेपर जो पापी ठहरेगा उसका पंथाचार्यकी एक बड़ी लाठीसे दुबारा मरना पड़ेगा । यह लाठी इमी उद्देश्यके लिए उसे मिलेगी । जो लोग इसप्रकारकी लाठीकी मारसे बच जावेंगे और वे यदि ऐसे पुरुष होंगे जिन्होंने विशेष पन्थ-परम्पराओंका पालन नहीं किया तो फिर स्वयं अपने-अपने देवताओं-द्वारा दुबारा जाकर मारे जावेंगे ।

इन जातियोंमें जीवात्मा सम्बन्धी मन्तव्य इसप्रकार माने जाते थे:—“वह जीव पतला, अप्राकृतिक, एक प्रकारकी भाप, झिल्ली, जाला अथवा छापकी सदृश व्यक्तियोंमें जीवन और विचारका संचारक, स्वतंत्र और ज्ञानवान् शरीरके अधिष्ठानृत्व का इच्छुक, परन्तु उसके छोड़ देनेमें असमर्थ, सरलतासे स्थान-स्थानपर प्रकाशित, सूक्ष्म, अप्रत्यक्ष, अदृश्य, तां भी शारीरिक बलका प्रदर्शक, विशेषतया मनुष्योंमें प्रकट, जागृत और स्वप्ना-

*History of Virginia by Captain Smith: quoted by Mr. Tylor (Primitive culture Vol. II.)

† Tylors Primitive culture Vol. P. 22.

वस्थामें स्थित, अप्रत्यक्ष सत्ता रखते और शरीरके सदृश होते हुए भी शरीरसे पृथक् होने अर्थात् मरनेके बाद स्थित, शरीर छोड़नेपर उस शरीरसे सम्बन्धित प्राणियोंपर प्रकाशित, अन्य पुरुषों और पशु-पक्षियोंके शरीरों अथवा अन्य प्राकृतिक पदार्थों में बैठने, उनपर अधिकार करने तथा उनके द्वारा काम करनेमें समर्थ है ।

इन पश्चिमी प्राचीन जातियोंका जीव सम्बन्धी एक दूसरा विचार यह था कि वह सूक्ष्म शरीरवाला होकर प्राणियोंके शरीरमें आता है और उनके मरनेपर नंग बालकके सदृश होकर मृत-पुरुषके मुंहसे निकल जाता है। कहानी (जीव की) आवाज़ चींची करने अथवा धीमी बरबराहटके सदृश होती है। “रूह” की इसीप्रकारकी बोली पश्चिमी अध्यात्मवादी भी बतलाते हैं उनका कथन है कि मरनेपर जैसा कि मृत पुरुषका सूक्ष्म शरीर रह जाता है उसीके अनुसार उसकी आवाज़ भी धीमी रह जाती है† ।

क्लाड साहबने एक छोटी-सी पुस्तक सर्वजीवनत्ववाद पर लिखी है । उसमें उन्होंने पश्चिमी अध्यात्मवादियोंके लिए वर्णन किया है कि वे न केवल जीवका फोटो उतारते हैं किन्तु उसकी तालकी भी परख करते हैं । और उनकी इस परखके अनुसार जीवकी ताल तीन और चार ओंसके मध्यमें बतलाई जाती है । अस्तु जीवके अमरत्वसे सम्बन्धित इन प्राचीन

* Tylor's Primitive culture Vol I P. 429.

† Crawley's Idea of the soul P. 207.

जातियों में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दो विचार पाए जाते हैं एक मरण पश्चात् जीवका बिना मथूल शरीरके रहना, दूसरा आवागमनके मन्तव्यानुसार उसका भिन्न-भिन्न योनियोंको प्राप्त होना ।

ये विचार यद्यपि इन जातियोंमें प्रचलित थे. परन्तु इनके आधार-रूप “कर्म” और “फल” का ज्ञान उन्हें न था ।

टेलर साहिबके लेखानुसार भारी जीवनका विचार इन जातियोंमें अधिकतर मृतक-पितृपूजाके प्रभावका परिणाम प्रतीत होता है, जिस पूजाके द्वारा वे अपना सामाजिक सम्बन्ध, मृत पितरोंसे स्थिर रखते थे । उनका विचार था कि इस पूजा से प्रसन्न होकर मरे हुए पितर अपने (छोड़े हुए) परिवार अथवा जत्थे की रक्षा करते रहते हैं और परिवारके मित्रोंकी सहायता करते और शत्रुओंको दण्ड देते रहते हैं । उनका विचार यह भी था कि जहां इसप्रकार मृत पितरोंकी पूजा नहीं होती उस परिवार अथवा जत्थेको मृत पितरोंकी आत्माएँ कष्ट दिया करती हैं ।

इसप्रकारकी पूजाके चिन्ह, चीन, अरब, जापान, रोम, स्पेन आदि देशोंमें अब भी पाए जाते हैं * इस पूजाका प्रभाव ईसाईमत में अब भी पाया जाता है । मसीह की स्मृति

* हिन्दुओंमें प्रचलित “मृतक श्राद्ध” भी इन्हीं जातियोंमेंसे आया प्रतीत होता है क्योंकि उनकी प्राचीन धर्मपुस्तक वेदादिमें इसका विधान नहीं है ।

(Doctrine of communion of Saints) तथा “समस्त आत्माओंके दिन” (All Souls day) के पवित्रोत्सव उदाहरण-रूप हैं । स्पेनमें इन उत्सवोंके सिवाय अब भी मृत पुरुषाओंके लिए उनके मृत्युके दिन, उनकी कब्रों पर रांटी और शराब रखी जाया करती है *

पूर्वीय योरपके ग्रीक-चर्चके अनुयायियों में भी यही प्रथा “जनाजके भोज” (Funeral feast) के नामसे प्रचलित है ।



तीमरा अध्याय

१०००

यूनान-देशके दार्शनिक और आन्मविचार ।

१०००

पहला परिच्छेद

यूनानके आदिम निवासियोंका मत विवरण * इलियड और उडेसी नामक प्राचीन पुस्तकोंमें मिलता है, उन्हींमें लेकर प्लेटोने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "रिपब्लिक" के तृतीय अध्याय में इस मतका स्पर्ष्टीकरण किया है । इस मतके अनुयाई परलोकको प्राणियोंकी छायामात्रसे आवाद मानते थे, और उसे प्रकाशशून्य बतलाते थे । उनका विश्वास था कि वहां जानेवाला, वहां पहुँचकर, पहलेकी सब बातें भूल जाता है और उसका ज्ञान स्वप्नके सदृश हो जाता है । इसके बाद ईसवी-सनके प्रचलित होनेसे प्रायः ७०० वर्ष पूर्व यूनानमें एक-दूसरे मतका प्रादुर्भाव हुआ । इसका जन्मदाता "पीसिस ट्टाइड"

* इलियड और उडेसी यहांके रामायण और महाभारत के सदृश यूनानकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं उनमें उसी प्रकारको और उनसे बहुत मिलती-जुलती कथाएँ भी हैं जैसा रामायण और महाभारतमें वर्णित है ।

(Peisistratidae) था और इसका जन्म “थ्रेस” में और प्रचार एथेंस, इटलीके दक्षिणी भागादिके प्रायः उन स्थानोंमें हुआ जो थ्रेसके प्रसिद्ध युद्ध गायक आर्फ़ियस (Orpheus) के निकटवर्ती थे । क्योंकि इस मतका पूज्य देवता यही गायक माना जाता था ।

अर्फ़ियसका मत आर्फ़ियस यद्यपि इसी लोकमें था परन्तु उस
का सम्बन्ध परलोकसे भी होना कहा जाता

है । परलोकसे सम्बन्धका कारण यह बतलाया जाता है कि “आर्फ़ियस वहां अपनी पत्नी” “यूरिडाइस” को लौटा लानेके लिए पहुँचाया गया था । आर्फ़ियसके पुजारियोंने “डायो-निसस” युद्धसम्बन्धी इतिहास भी प्रकट किया था जिसे वे ज़ियस (Zeus) का नवजात बालक समझते थे ।

आर्फ़ियसकी पूजा ईसासे पूर्व छठी शताब्दीमें एथेंस में, कहा जाता है कि खूब प्रचलित थी । एथेंसमें इस मतके प्रचारका प्रभाव यह हुआ कि जत्थे-जत्थेके पृथक् देवताओंकी पूजा बन्द हो गई । आर्फ़ियसके सिवाय “इल्यूसिस” (Eleusis) का डिमैटर भी इस मतका पूज्य देवता ठहराया गया, इस देवताके पूजाभिधानसे इस मतमें मानों गुप्त भेदोंके प्रवेशका श्रीगणेश हुआ । अमरता और भविष्यत्का सुख उनके भागमें आया हुआ समझा जाता था जो इस मतमें दीक्षित होते थे ।

कुछ कालके बाद इस मतका सम्मेलन एक और मतके साथ हुआ जो वहां “डायुनिसस” के मतके नामसे प्रचलित था । इस सम्मेलनका कारण “पीपिस टेटस” का यह निश्चय था

जिसके द्वारा उसने “डायनिस” को भी इल्यूसिसके देवताओं की गणनामें ठहराया। निदान इस समयसे लेकर मसीहकी पहली शताब्दीतक ये मत इसीप्रकार कुछ फेरफारके साथ जारी रहे। इन मतोंके प्रभावसे जो शिक्षाएँ यूनानके साहित्य में सम्मिलित हुईं उनका विवरण इस प्रकार है:—

दुष्टाचारी पुरुष कीचड़से भरे कुंडोंमें रक्खे जाते हैं और उसके विपरीत सदाचारी उच्च अवस्था प्राप्त करते हैं।

सदाचारियोंकी उच्चावस्था यह होती है कि उनके शिरोंके चारों ओर चमकदार वृत्ताकार रेखाएँ होती हैं ये रेखाएँ उनके कंधे और लिपटे हुए बालोंसे ढकी रहती हैं।

ग्रीक-साहित्यमें बहुधा पवित्र अग्निकी उच्चता बखानी गई है और यह भी वर्णित है कि परलोकमें मनुष्यभक्षी राक्षसी भी होते हैं।

आफ़्रिसके इसमतकी विशेषता “जीवके अमरत्व” का विचार था जैसा ऊपर कहा जा चुका है और इसीलिए उस के मतका संकेत यूनानके प्रसिद्ध विद्वान् होमर, हेरोडोटस, प्लेटो आदि प्रायः सभीके लेखोंमें पाया जाता है।

यूनानके दार्शनिक भवनकी आधारशिला थैलिस (Thales) ने रक्खी थी। थैलिस ही वहाँका प्रथम दार्शनिक समझा जाता है।

थैलिस ही जीवसम्बन्धी विचार “सर्व-भिलिटसका संप्रदाय जीवत्ववाद” से मिलते-जुलते हैं। उसके मतानुसार संसारकी प्रत्येक वस्तु चेतनापूर्ण और देवता या राक्षसोंसे भरपूर है और प्रत्येक प्राकृतिक गति आन्तरिक जीव

की परिचायक है । थेलिसके सिवाय इस सम्प्रदायके मुख्य दार्शनिक एनेक्सिमैण्डर (Anaximander) और एनेक्सिमैनस (Anaximenes) हुए थे परन्तु इन दार्शनिकोंने अधिक विचार-प्रचार प्राकृतिक जगत्की उत्पत्ति और उसका उपादान कारण क्या हैं, इस विषयमें किया है ।

इलियाका संप्रदाय ज़ेनोफ़ेन्स (Zenophane) मेलेसस (Melesus) और पारमेनिडिस (Parmides) इस स्कूलके मुख्य दार्शनिक थे । इन दार्शनिकोंके विचार शंकरके अद्वैतवादकी छायामात्र हैं । इस सम्प्रदायमें आत्माकी पृथक् सत्ता और उसके अमरत्वपर विचारोंकी खोज व्यर्थ ही है ।

हिरेक्लिटस (Heraclitus) दुःखवादी था जगत्को नित्य मानता था । अग्नि ही मुख्य तत्त्व है जिसके परिवर्तनमें समस्त वस्तुएँ बनती हैं और अन्तमें अग्निमें ही लीन हो जाती हैं ।

पाइथागोरस (Pythagoras) आफ्रियसके मतके प्रचारकाल ही में पाइथागोरसका प्रादुर्भाव हुआ । यह यूनानके उच्च कोटिके दार्शनिकोंमें था । इसके मतके प्रचार से आफ्रियसकी शिक्षा फीकी पड़ गई । पाइथागोरस जीवके अमरत्व और आवागमनका प्रचारक था, अपने सिद्धांतोंकी शिक्षा देनेके लिए उसने नियमपूर्वक कई संस्थाओंकी स्थापनाकी थी । आर्योंकी प्रथानुसार वह आवागमनको कर्मफल देनेके लिए ही मानता था । उसकी एक कल्पना यह भी थी कि जीव १००० वर्ष तक कष्ट भोगनेके लिए संसारमें आता है । इस

अवधिके बीतनेपर उसे “लेथी” * नदीका पानी पीना होता था। प्राचीन यूनानियोंके मतानुसार इस नदीका पानी पीने से पीनेवाला अपनी पहली अवस्थाको भूल जाता था।

एनेक्सागोरस

Anaxagoras

एक और दार्शनिक सम्प्रदायका प्रचारक था उसकी फिलोसोफी “नोअस” (nous)

के नामसे प्रसिद्ध हुई। यह अपनी इसी फिलोसोफी ही की बदौलत पर्थेससे निकाला गया था। इसके विचार अद्वैतवादसे मिलते-जुलते हैं। सृष्टिके उपादान कारणका विचार करते हुए इसने प्रकट किया था कि उपादान कारणके सदृश सृष्टिकी उत्पत्तिके लिए चेतन (निमित्त) कारणकी भी आवश्यकता अनिवार्य है।

‘डिमोक्रैटस’

Democritus

यह यूनानके उन दार्शनिकोंमें से था जिसने यूनानके दर्शन-शास्त्रमें जड़वादका प्रवेश किया था। इसने अपने मतके स्पष्टीकरण के लिए कुछ नियम बनाए जो संख्यामें छै थे और वह उन्हींका प्रायः प्रचार करता रहा, वे नियम ये थे: -

(१) अभावसे अभाव ही होता है। भावसे अभाव नहीं हो सकता। जगत्में जो परिवर्तन होते हैं वे अणुओंके परिवर्तन से होते हैं।

*पुराणोंमें वर्णित “वैतरणी” नदीकी स्थानापन्न यह “लेथी” नदी प्रतीत होती है। अनेक पौराणिक गाथाएं यूनानियोंके मतोंमें नामोंके भेदसे, सम्मिलित पाई जाती हैं।

(२) अन्नानक (बिना कारणके) कुछ नहीं होता प्रत्येक घटना सकारण होती है ।

(३) जगत्में केवल दो सत्ताएँ विद्यमान हैं (१) अणु (२) आकाश ।

(४) अणु अगणित हैं और उनके रूप भी असीम हैं । उनके संघर्षण* से जो पार्थिक गति और भ्रमण उत्पन्न होते हैं । उन्हींसे जगतकी रचना प्रारम्भ होती है ।

(५) संख्या, आकृति और समुदायकी दृष्टिमें वस्तु विभिन्नताका कारण अणुओंकी विभिन्नता है ।

(६) जीवात्मा, सूक्ष्म, चिकने और गोल, अग्निके अणुओं से बना है । ये अणु अन्य सब अणुओंसे अधिक वेगवान् होते हैं । और समस्त शरीरमें प्रविष्ट रहते हैं उन्हींकी गतियोंका परिणाम जीवन है ।

इमपेडोक्लिम
Empedocles

“डिमीक्रौटस” के जड़वादका समर्थक था, इसने अणुओंमें राग-द्वेष होनेकी भी कल्पना की । उसका विचार था कि इसके बिना संयोग

* बिना निमित्त कारणके संघर्षणका प्रारम्भ किस प्रकार हो सकता है ?

† जिन दार्शनिक अथवा वैज्ञानिकोंने जीवकी सत्ता नहीं मानी उनको विवश होकर उनके गुणोंकी कल्पना प्राकृतिक सत्ताओंमें करनी पड़ी । इसके बिना काम चल ही नहीं सकता था ।

“मुझे विश्वास है कि मृत-पुरुष भी एक प्रकारका जीवन रखते हैं जैसा कि पूर्वजोंने कहा है—वह जीवन पापियोंकी अपेक्षा सत्पुरुषोंके लिए श्रेष्ठतर है”* ।

(२) “जबतक हम यह शरीर रखते हैं और जबतक यह कुत्सित साधन (शरीर) हमारी आत्माओंसे सम्पर्क रखता है उस समयतक हम इच्छित उद्देश्यको कदापि न प्राप्त कर सकेंगे ।”†

(३) “चित्तकी शुद्धता, शरीरसे आत्माको पृथक् करते हुए और पृथक् करनेकी भावनाको दृढ़ करते हुए आयु बिताना ही है ।”

(४) “शरीरसे पृथक् होना और छूटना ही मृत्यु है ।”‡
सिवीने कहा:—

(५) तब हम इस बातमें सहमत हो गए कि जिन्दे, मुर्दे से और मुर्दे, जिन्देमें पैदा होते हैं और इसी लिए इस बातमें भी हम सहमत हो गए कि यही यथेष्ट प्रमाण है कि मृत पुरुषोंकी आत्मा पहले कहीं अवश्य थी जहांसे वह फिर जन्म लेती है §

(६) उस (सुकरात) ने कहा कि “हो निसन्देह ऐसा ही है । हमने इस सिद्धान्तके स्थिर करनेमें भूल नहीं की है,

* Trial & death of Socrates P. 115.

† Do. P. 120.

‡ Do. P. 122.

§ Do. P. 130.

मनुष्य मरकर अवश्य पुनः जन्म लेते हैं और उन्हीं मुर्दासे जीवित पुरुष उत्पन्न होते हैं और मृत पुरुषोंका आत्मा अमर है”*

(७) सुक्रात—‘तो आत्मा किससे सादृश्य रखता है’ ?

सिवी—यह तो स्पष्ट ही है कि आत्मा दैवी और शरीर मरणधर्मा हैं ।

सुक्रात—“... “जो कुछ मैंने कहा, क्या उस सबका यह परिणाम नहीं निकला, कि जीवात्मा दैवी, नित्य, बोधगम्य, समान, अविनाशी और अजर है, जबकि शरीर विनाशी, जड़, बहुविध, परिवर्तनशील और छिन्न-भिन्न होनेवाला है ? सिवी ! क्या तुम इसके विरुद्ध और कोई तर्क रखते हो ?

सिवी—नहीं । †

(८) फिर सिवीको उत्तर देते हुए सुक्रातने कहा “कि जीवात्मा जो अदृश्य है जो अपने सदृश शुद्ध, निर्मल, अदृश्य लोकमें पवित्र और ज्ञानमय ईश्वरके साथ रहनेको जाता है जहाँ यदि भगवान्की इच्छा हुई तो मेरा आत्मा भी शीघ्र जायगा । क्या हम विश्वास करें कि जीवात्मा जो स्वभाव ही से ऐसा शुद्ध निर्मल, और निराकार है वह हवाके झोकोंसे उड़ जायगा ? और क्या वह शरीरसे पृथक् होते ही छिन्न-भिन्न हो जायगा ? जैसा कि कई कहते हैं । ‡

* Trial and Death of Socrates p. 131 and 132.

† Trial and Death of Socrates p. 146 and 147.

‡ Trial and Death of Socrates p. 148.

सुकुरातनं यूनानके दर्शनका जुकाव बाहर (प्रकृति) की ओरसे हटाकर भीतर (आत्मा) की ओर कर दिया । वह सदैव अपने शिष्योंको शिक्षा दिया करता था कि “अपनेको जानो” और यह कि “आचार परमधर्म है ।” आचारयुक्त जीवन तपसं प्राप्त होता है, तप इन्द्रिय संयम और दमको कहते हैं ।

प्लेटो आत्माके अमरत्वका उत्कृष्ट प्रचारक अफलातून (प्रेटो) था । सुकुरातकी मृत्युके बाद वह इटली चला गया था । इस यात्रामें उसे पाइथागोरसके मन्तव्योंका ज्ञान हुआ, वह आदर्शवादसे भी प्रभावित था । और अपने शिष्योंको सिखलाया करता था कि मेजके ख्यालमें मेजमें अधिक वास्तविकता है । उसकी प्रसिद्ध पुस्तक “फेडो” (Phaedo) प्रश्नोत्तर रूपमें है । पुस्तकमें उसने आत्माके अमरत्वपर अच्छा विचार किया है । उसका कथन है कि जीवात्मा अभावसे उत्पन्न नहीं हो सकता, इसलिए उसकी पूर्वसत्ता होनी चाहिए, और वह भी अनादिकालसे । इसी विचारकी पुष्टि वह इसप्रकार करता है, कि केवल जीव ही उन आदर्शोंका विचार कर सकता है जो वस्तुओंकी सत्ताके कारण हैं, और जिनके द्वारा वस्तुओंकी उत्पत्ति हुआ करती है । परन्तु जीवोत्पत्तिके विचारको उसने कभी क्षणमात्रके लिए भी स्वीकार नहीं किया । वह सदैव उसकी निरन्तर सत्ताका उपदेश और अभावसे भाव होनेका सर्वथा विरोधी रहा । उसका जीवनके सम्बन्धमें यही विचार था कि शरीरसे पृथक् होनेके बाद उसी प्रकार अन्तकाल तक बना रहता है, जिस प्रकार शरीरमें आनेमें पूर्व अनादिकालसे अपनी सत्ता रखता था “आर्चर हिन्द” (Archer Hind) ने जो

“फेडों” का संस्करण प्रकाशित किया था उसकी भूमिकामें उपर्युक्त विचारोंको प्रकाशित करते हुए यह भी लिखा है कि प्लेटोंका विचार था कि बुद्धिमान् विज्ञान वेत्ताओंको मृत्युमें भयभीत नहीं होना चाहिए।

प्लेटों (देखो रिपब्लिकका तीसरा भाग) अपने शिष्योंको परलोक-सम्बन्धी ऐसे विचारोंमें जिनका आफिथिसकी शिक्षासे सम्बन्ध है, बचानेका यत्न किया करता था। क्योंकि वह उन्हें निम्नतर समझता था। सृष्टि सम्बन्धी उसका विचार था कि “आदर्श सृष्टि सत्य और सौन्दर्यमें भरपूर है परन्तु ज्ञानेन्द्रियोंके जगत्में इनका अभाव है” वह धर्मके आदर्शको सर्वप्रधान बनलाते हुए उस आदर्शकी सत्ता ईश्वरको समझता था। वह समाज को बड़ी महत्ता देता था, और व्यक्तिके कुछ अधिकार नहीं समझता था, उसका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति समाजके लिए जीता है। अफ़लातूनको प्रकृतिका भी अनादित्व स्वीकार था।

जीवात्मा सम्बन्धी अरस्तूके जो विचार हैं
अरस्तू ३२४-३२२ ईसामे पूर्व उसके तीन भाग हैं:—

(१) एक भाग जीवनका वह है जो वनस्पतियों और पशु पक्षियोंमें भी पाया जाता है।

(२) दूसरा भाग इन्द्रियज्ञानका है, यह केवल पशु-पक्षियोंमें पाया जाता है।

(३) तीसरा भाग बुद्धिका है जो केवल मनुष्योंको मिलता है, मनुष्योंमें आत्माका भाग पितासे आता है।

इसप्रकार अरस्तू मानता है कि मनुष्यकी आत्मामें एक भाग नाशवान् है और दूसरा भाग अमर। वह भाग जो अमर

है बुद्धि है और वह बुद्धि (ज्ञानकी शक्ति) कामनाओंसे उच्च आसन रखती है। जीव और शरीरके सम्बन्धमें उसका विचार यह है कि शरीर जीवका सम्बन्ध ठीक वैसा ही है जैसा आकृतिका प्रकृति, दृष्टिका चक्षुओं और असलीका अप्रकट-से है। जीवात्मा जो आकृति रूप और शरीरका वास्तविक अन्त है न तो स्वयं शरीर ही है और न बिना शरीरके विचार में आने योग्य है। डाक्टर गोम्पेर्ज़ने लिखा है कि पांचवीं शताब्दीके अन्तमें जीवात्मा सम्बन्धी अरस्तूके मन्तव्य पर्थेस मे इसप्रकार समझे जाते थे कि बुद्धि पूर्वक नियम मनुष्यमें जन्मसे पहले अंकुरित होते हैं और शरीरके नष्ट होनेपर जहां से आए थे वापिस चले जाते हैं।”

अपने गुरु प्लेटोका अनुकरण करते हुए अरस्तू लोगोंको समझाया करता कि बुद्धिमानको मृत्युसे भयभीत नहीं होना चाहिए, किन्तु उसे अपनेको अमर समझकर कार्य करना चाहिए तभी सफलता प्राप्त कर सकता है।

इसकी शिक्षाका सार यह था कि
 एम्पेक्यूरस (Empedocles)
 ४४२ ईसाके पूर्व मनुष्यको प्रसन्नताके साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए “स्वाओं, पियों और खुश रहो।”

भौतिक विज्ञान मनुष्यको अन्धविश्वाससे बचानेके लिए है, जगत्की अन्य वस्तुओंके सदृश मनुष्यभी (जीवमहित)

* Greek Thinkers by Dr. Gomperz Vol. IV. English Translation. p. 209.

प्राकृतिक अणुओंका एक समुदाय है। अर्थात् प्रत्येक जीव सूक्ष्म प्राकृतिक परमाणुओं से बना है और गिलाफ रूप शरीर स्थूल अणुओंका सन्धान है। शरीर और आत्मा दोनों मरणधर्मा हैं और एक समय नष्ट हो जावेंगे। उसका मन्तव्य था कि सर्व ही मृत्युकी खोज करते हैं परन्तु मृत्युसे डरना भी सर्वता ही है, मृत्यु आनेपर शरीर अथवा जीव दोनोंमेंसे एक भी बाकी नहीं रहते।

“एपिक्यूरस” की शिक्षा योग्यमें बहुत फैली और प्रकृतिवादके विस्तारमें इसमें अच्छी सहायता मिली।

उसकी शिक्षाके विस्तारका एक कारण यह भी कहा जाता है, कि “ल्युक्रैटियस” (Lucretius) एक प्रसिद्ध कविने उसकी शिक्षाओंका छन्दबद्ध करके अपने पुस्तक “डिरेग्मनेचर” (De Rerum Nature) द्वारा विस्तृत किया था।

जिसका नाम गत पृष्ठोंमें आ चुका है, ईसासे जैनों (Jains) ३४० वर्ष पहले हुआ था। उसने “त्यागवाद” की स्थापना की। यह अद्वैतवादी था। इसका विचार था कि जीवात्मा प्राकृतिक है और शरीरके साथ ही उसका भी नाश हो जाता है। प्रलय होनेपर ईश्वरके सिवाय सब नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। जैनोंका त्यागवाद मुख्यतया आचारसे सम्बन्धित था। प्रोफेसर सिजविक (Prof. Henry Sidgwick) ने अपने प्रसिद्ध आचार सम्बन्धी इतिहासकी पुस्तक * में, त्यागवादका जीवके अमरत्वसे क्या सम्बन्ध था यह प्रश्न उठाया है और विषयपर कुछ और प्रकाश डाला है उनके कथनका सार यह है:

*History of Ethics by H. Sidgwick p, 102.

“त्यागवादमें जीवकी अमरताका विश्वास बहुत सान्द्रगुण था परन्तु बिल्कुल रह भी नहीं किया गया था। (इस वादके) पुराने शिक्षकोंके विषयमें हमें बतलाया जाता है कि “क्लीनथीस” (Cleanthis) के मतानुसार शरीरके नष्ट होनेपर जीव बाकी रहता है। और “क्राइसिपस” (Cryseppus) कहना है कि जीव बाकी तो रहता है परन्तु केवल बुद्धिमानोंका अद्वैतवादके प्रभावसे वह अन्तको उसके भी बाकी रहनेका निषेध करता है। “इपिक्टेटस” (Epictetus) अमरत्वके विश्वासके सर्वथा विरुद्ध था। दूसरी ओर ‘सैनेका’ (Seneca) अपने कतिपय लेखोंमें शरीर रूपी बन्दीगृहसे जीवके मुक्त होने का विवरण प्लेटोंकी भांति देता है परन्तु एक और स्थलपर परिवर्तन और नष्ट होनेके मध्यमें “मार्कस औरीलियस” (Marcus Aurelius) की भांति अपनी सम्मति देता है।”

इसकेबाद “पिरहो” (Pyrrho) के संशय-पिरहो

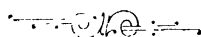
वादका यूनानमें प्रारम्भ होता है परन्तु जीव-सम्बन्धी विचारकी दृष्टिसे ग्रीक फिलासफी प्रायः यहीं समाप्त होती है। संशयवादके बाद सन् २०० और ३०० ई० के मध्य में एक प्रकारके अद्वैतवादका प्रारम्भ यूनानमें हुआ, जिसका आचार्य प्लोटीनस (Plotinus) था। अद्वैतवादियोंके सदृश यह भी जीवका शरीरकी भांति उत्पन्न सत्ता बतलाता था। इसकी शिक्षा थी कि केवल ब्रह्मही सत्य पदार्थ है और वही जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादन कारण है, परन्तु जगदुत्पत्ति उस के हाथ नहीं किन्तु विकासका परिणाम है। वह पहले बुद्धि उत्पन्न करता है। बुद्धिसे जीव उत्पन्न होता है। उसकी शिक्षा

में प्रकृतिकें लिए भी कोई स्थान नहीं है । प्लाटोनिक सम्बन्ध में एक बात यह भी कही जाती है कि वह परिमितरूपसे जीव का शरीरसे भिन्न होना मानता था, और यह कि उसकी मम्मति थी कि जीव एक तत्त्वकी भांति शरीरसे सर्वथा पृथक् और अप्राकृतिक हैं ।*



* Hraynes-Immortality p. 39,

चौथा अध्याय



पहला परिच्छेद

कतिपय अन्य मत

रोम रोमकी सभ्यताका उत्कर्ष यूनानके अपकर्षके प्रायः साथ ही हो जाता है, रोममें प्रथम “सर्वजीवत्व-

वाद” प्रचलित था । मृत पुरुषोंका कब्रोंमें आना-जाना कल्पना किया जाता था । परिवारके शेष सदस्य मांस और मदिरा मृत-पितरोंके भेंट किया करते थे । कहीं-कहीं आर्फ़ियस की पूजाका भी विधान था । नरक और उसकी भयानक अग्नि के विचार भी माने जाते थे । रोमन जाति प्रायः प्रकृतिवादी-सी थी । ईश्वरके सम्बन्धमें उसका विचार था कि उसके साथ हम केवल सांसारिक कारोबारसे सम्बन्धित “कौलो करार” कर सकते हैं । परलोक उन्हें स्वीकार नहीं था । सर्वजीवत्ववादके मन्तव्यानुसार वे जीवको प्रकृतिसे सम्बन्धित समझते थे । रोमनिवासियोंमें “सिसरो” (Cicero) एक विद्वान् हुआ, जिसने जीवके सम्बन्धमें कुछ विचार किया, और उसके अमरत्व के विश्वासमें भाग लिया । वह रोमनोंको शिक्षा दिया करता था कि जीवके अमरत्वकी अधिकतर सम्भावना है, परन्तु दार्शनिकोंके उपस्थित किए प्रमाण, इस वादको पुष्ट करनेके लिए अपर्याप्त हैं” आगामी जन्मके सम्बन्धमें उसका विचार

था कि वह अवश्य होगा, और प्रसन्नताका होगा, और यह कि नरक कोई वस्तु नहीं है ।



दूसरा परिच्छेद

इसलाम और आत्मविचार

आत्माको अप्राकृतिक सिद्ध करते हुए कहते हैं
मौलवी कलन्दर अली कि अद्वितीय सत्ताके लिए अविभक्त होना आवश्यक है और जीवात्मा उस अद्वितीय सत्ता का चिन्तन करता है । यदि जीव शरीर (प्राकृतिक) हो तो वह अविभक्त नहीं हो सकता, और उसके विभाग होनेसे वह अद्वितीय सत्ता भी जो चिन्तन-द्वारा उसमें विभक्त हो जायगी, अतः जीवात्मा शरीर नहीं किन्तु इससे सर्वथा भिन्न है ।*

(२) अल्लामा शीराज़ी ने 'हिक्मत अशराफ़' नामक पुस्तककी व्याख्या करते हुए जीवकी सत्ताको स्वतन्त्र प्रमाणित करनेके लिए सबसे पहिली युक्ति यह दी है कि हम आत्माकी सत्ताका बिना किसी प्राकृतिक माध्यमके चिन्तन कर सकते हैं; इसलिए जीवकी सत्ता अवश्य है और शरीरसे स्वतन्त्र है ।

(३) मुहम्मदताहिर एक प्रसिद्ध इतिहासमें ईसाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि "इक़तेआला" (महान् ईश्वर) ने आज्ञा भेजी है कि ईमान न लानेवालों पर मैं "अज़ाब" (दण्ड) नाज़िल करता (भेजता) हूँ । तदनुकूल ईमाने उनको सूचित

* 'अखलाक़े दिलपिज़ीर' कलन्दरअली पानीपती रचित !

किया। प्रातःकाल जब वे लोग उठे तो उनमेंसे चार सौ या सात सौ पुरुष सुअर हो गए और गली-गली में मारे फिरते थे*।

(४) मुहम्मद साहब ने एक हदीसमें जो 'तफ़सीरे अज़ीज़ी' नामक कुरानकी व्याख्यामें उद्धृत की गई है, कहा कि तुम अनुमान किए गए हो सदैव रहनेके लिए और निश्चय तुम कूच करते हो एक दुनियाँसे दूसरी दुनियाँ की ओर'।

(५) इमाम फ़ख़रुद्दीनने क़बीर नामक कुरानके व्याख्यानमें अनेक कुरानकी टीकाओं और हदीसोंका उल्लेख करते हुए प्रकट किया है कि मनुष्योंकी भांति पशु और पक्षी भी ईश्वरकी याद और प्रार्थनामें संलग्न रहते हैं और "क़यामत" में उनको भी कर्मफल मिलेगा, उन (पशु और पक्षियों) में भी ईश्वरने देव और दूतोंको उनके सुधारार्थ भेजा है।

(६) अरबी भाषाकी एक पुस्तक "ज़वदुतुल असरा" में असीरुद्दीनने लिखा है कि मनुष्यकी आत्मा निष्कीय नहीं रहता उसे शरीरकी अपेक्षा रहती है। यदि उसकी पतित अवस्था न हो तो वह शरीर छोड़नेके बाद अपनी सत्तामात्रसे स्थित रह सकता है, और उस समय उसका पापोंसे छुटकारा हो जाता है।

जीवात्मा अज्ञानी है। उसे ज्ञानकी अपेक्षा रहती है जिससे पूर्णता प्राप्त करे। पूर्णता प्राप्त होनेतक उसे मनुष्ययोनिमें बराबर आना पड़ता है।

(७) फरीदुद्दीन अत्तार लिखते हैं कि मैं वनस्पतिके सदृश अनेक बार उत्पन्न हुआ और ७७० योनियोंमें रह चुका हूँ* ।

(८) शम्सुद्दीन तबरेजीने अपनी पद्यमय पुस्तक 'दीवान शम्सेतबरेज' में, और मौलाना जलालुद्दीन रूमीने अपनी प्रसिद्ध "मसनवी" में जीवात्माकी नित्यता और पुनर्जन्मके सिद्धान्तों को अनेक स्थलोंपर स्वीकार किया है ।

(९) अब्बूनसरकारावीने लिखा और इमाम गोजालने इस की पुष्टि की है कि "रूह" और जिस्ममेंसे पहलीका अम्र (हुक्म) ऐसा ही कुरानमें भी आया है, और जिस्मको खिल्क (उत्पत्ति) कहते हैं—इन्हीं दोनोंके संघातका नाम मनुष्य है—रूह के लिए वह यह भी लिखता है कि वह निराकार है† ।



* मिफताहुल तारीख अध्याय ११ पृष्ठ १९८

† इल्मुलकलाम मौलाना शिवली नैमानी कृत भाग दो
पृष्ठ १८८

पांचवा अध्याय

योरपके मत

पहला परिच्छेद

ईसाई योरप

मिश्र, यूनान और रोमका पृथक्-पृथक् कथन करनेके बाद अब समस्त योरपमें जीवसम्बन्धी विचार किस प्रकारके थे. इस पर एक दृष्टिपात करना चाहते हैं: --

ईसाई योरप ईसाई मतानुयायी जीवको उत्पन्न (सादि) परन्तु अमर मानते हैं । आत्मा सम्बन्धी उनके विचार प्रारम्भसे अनेक रूपोंमें होते हुए इस परिणाम तक पहुंचे हैं । उनका निर्णयदिवसमें मुरदोंके कब्रोंसे उठने * का विचार पहली शताब्दीसे अब तक प्रायः अपरिवर्तित चला आता है ।

* मध्यकालीन ईसाई योरपमें मुरदोंके कब्रोंसे उठने (Bodily resurrection) के विचार यहाँ तक बढ़ी-चढ़ी अवस्थामें माने जाते थे कि पादरी लोग कहते थे कि यदि कोई जगली हिंसक पशु किसी मनुष्यको मार कर खा लेगा तो उसे अपने मुंहसे 'निर्णयदिवस' उगलना पड़ेगा ।

परन्तु ईसाके एक सहस्र वर्ष बाद जी उठनेका विचार (Belief in the Millennium) सन् १००० ई० में एक हजार वर्ष बीत जाने और ईसाके पुनः दुनियांमें न आनेसे शिथिल-सा हो गया है।

अपराधोंको क्षमा करनेका विचार (Belief in purgatory) जिसके आधारपर रोमके पाप “माफ़ीनामे” जारी किया करते थे, लूथरकी शिक्षाओंके प्रचारसे दूर हुआ।

मध्यकालीन ईसाई-चर्चके अनुयाई स्वर्ग और नरकके विचारोंको पूर्णतया मानते थे *। प्रारम्भिक ईसाई-चर्चमें

* यद्यपि स्वर्ग, नरकके विचार माने जाते थे परन्तु इन विचारोंसे लोगोंका विश्वास हट रहा था। यह बात एक नाटककी रचनासे भली भाँति प्रकट होती है। यह नाटक डेन्टेका लिखा हुआ था और इसका नाम “डिवाइन कॉमडी” (Divine Comedy) था। इस नाटकका आंगलभाषानुवाद एन्टरलैंगने (Ancren and Nicolette by Andrew Lang P. 9) नामान्तर करके किया था। नाटकका नायक स्वर्गमें जानेसे इनकार करता है, हेतु यह देना है कि वहां होगा ही क्या। कुछ पुराने दर्रेके पादरी होंगे कुछ लंगड़े, लूले आर बूढ़े आदमी होंगे कुछेक मरे हुए दरिद्र लोग। वह स्वर्गकी अपेक्षा नरकमें जानेकी “तरजीह” देता है और कहता है कि वहां अच्छे-अच्छे वीर योद्धा और मनोरञ्जक यात्राओंमें मरे हुए पुरुष होंगे, अच्छी-अच्छी स्त्रियां होंगी, उनके

आत्मासम्बन्धी विचार विभिन्न होते हुए भी, समष्टिरूपण, कहा जा सकता है कि उनमें १३ वीं शताब्दी तक प्रायः प्लेटोके आत्मसम्बन्धी विचार प्रतिष्ठित थे। अवश्य नोस्टिक (Gnostic) लोग जो ईसाइयोंके एक पन्थमें थे दूसरी शताब्दी तक आर्फि-यमके प्रचारित आगामी जीवन सम्बन्धी विचारोंमेंसे अनेक को मानते थे।

इस बीचमें योगमें स्कोटस एरिजिना (Scotus Erigen) सेंट थॉमस (St. Thomas), डंस स्कोटस (Duns Scotus) और ओकम (Ockam) विचारक एक दूसरेके बाद प्रकट हुए, परन्तु इनका अधिकतर लाभ यही था कि उस समयके प्रबल ईसाई गिरजेके मन्तव्योंका विशेषकर ईश्वर-सम्बन्धी मन्तव्यका जिस प्रकार भी हो सके, समर्थन करें।

सेंट आगस्टिन (३५४-४३ ई०) अवश्य एक विचारक हुआ, जिसने बहुत अंश तक ईसाई मन्तव्योंका निश्चित रूपमें किया। वह दार्शनिक भी था और मतका पोषक भी, इसी लिए उसके विचारोंमें विरोध भी है। ईश्वर और जीवके सिद्धान्तकी दृष्टिसे आगस्टिन अधिकांशमें अद्वैतवादी था। वह कहता है कि “ज्ञान, स्मृति और विचार, आत्माको सत्ता, प्रमाणित करते हैं। तो भी यह कहना कठिन है कि आत्मा क्या वस्तु है। जो लोग

साथ एकसे अधिक उनके इच्छुक और प्रेमकर्ता भी होंगे। अच्छे अच्छे धनी और सभ्य पुरुष होंगे, इत्यादि (The belief in personal immortality by E. S. P. Haynes p.27 and 38.)

उसे प्राकृतिक तत्त्वोंकी सम्मेलनक्रियाका परिणाम बतलाते हैं, वे भूल करते हैं, क्योंकि आत्मा तो चेतन है परन्तु प्राकृतिक तत्त्व जड़ और चेतना-रहित हैं। कुछ लोग उसे परमात्मासे निकला हुआ बतलाते हैं वे भी भूल करते हैं। अन्य वस्तुओंकी भाँति ईश्वरने उसे भी उत्पन्न किया है, परन्तु उत्पन्न होते हुए भी वह अमर* है, क्योंकि उसमें बुद्धि है। बुद्धि और सत्य एक ही है, और अविनाशी है, अतः जीव भी अविनाशी है। उसका कथन है कि आचार और धर्मसम्बन्धी नियमोंका प्रकाश परमात्माकी ओरसे होता है। मनुष्य निर्बल है और अपने सबसे पापसे बच भी नहीं सकता, उसका बचाव परमात्मा ही की दया पर निर्भर है, परन्तु परमात्मा भी सारे मनुष्योंको नहीं बचाता। यह पहलेसे निश्चय हो चुका है कि कौन-कौन पुरुष बचाए जाएँगे।†

सेंट थॉमस एक्वीनास (St. Thomas Aquinas) के समय तक इस विषयमें प्रायः आगस्टिन प्रमाण माना जाता रहा था। ऊपर कहा जा चुका है कि १३वीं शताब्दी तक योरपमें प्लेटोके आत्मसम्बन्धी विचार ही प्रायः माने जा रहे थे, तत्पश्चात् अरस्तूके विचार, अर्वा रंगतके‡ साथ फिर योरपमें आए,

* इसका यह जीवके अमरत्वका मन्तव्य, अद्वैतवादके विरुद्ध है।

† क्या यह भी निश्चय हो गया है कि कौन-कौनसे मनुष्य नरकमें डाले जावेंगे ?

‡ अरस्तूकी शिक्षा यूनानसे अरबमें गई और वहाँ “अरब” के दर्शनके रूपमें प्रकट हुई। दसवां और बारहवां

और वे इतने परिवर्तित रूपमें थे कि अरस्तूके नामसे प्लेटोके विचार ही योरपमें माने जाने लगे, परन्तु पादविवाद बढ़ता ही गया और अन्तमें वह ज़ेनोके त्यागके रूपमें परिवर्तित हो गया इस वादके अनुयायी प्रथम ब्रह्माण्डके लिए एक आग्नेय शक्ति होनेका प्रचार करते थे, पीछेसे वही शक्ति जीव कहलाने लगी, परन्तु वह प्राकृतिक मानी जाती थी, उसके लिए वे कहते थे कि एक विचित्र वस्तु वायु अथवा आस जैसी प्राणियोंमें फूँकी गई है।

अरस्तू इसीका जीवित अग्निसे सम्बन्धित करता था। न्यागवादी इस विचारका शरीर और जीवमें मिलान करनेके लिए मानते थे, और इसीलिए उनमें जीव प्राकृतिक माना जाता रहा था, परन्तु जीवका प्राकृतिक मानना प्लेटोके मन्तव्यके विरुद्ध था, और ईसाई चर्च भी इसका विरोधी था, अतः जीव प्राकृतिक होनेकी जगह अप्राकृतिक माना जाने लगा।

(Philo) एक यहूदी विद्वान् जो ईसासे कुछेक वर्ष पूर्व
 क़िलो हुआ था, उसका जीवसम्बन्धी मन्तव्य इन दोनों मन्तव्यों के मध्यका था। वह कहता है कि जीव प्राकृतिक और अप्राकृतिक दोनों हैं परन्तु उसकी सत्ता शरीरसे सर्वथा विरुद्ध है। इस शताब्दीके मध्यमें यह दर्शन बग़दाद, स्पेन और एफ़्रीकामें फैला, परन्तु इसलामी जगत्में इसका आदर नहीं हुआ, इस बीचमें अरस्तूकी पुस्तकोंका अरबी भाषामें अनुवाद हुआ। आम तौरसे यूनानके दर्शनोंका ज्ञान मुसलमानोंको फ़ारसके माध्यम से हुआ था।

प्रकारके विचार संघर्षणका परिणाम यह हुआ कि जीवकी सत्ता शरीरसे स्वतन्त्र और अप्राकृतिक मानी जाने लगी ।

ईसवी सन् १२२७ और १२७४ के मध्यमें हुए “एवररॉज” (Averroes) ने अपने जीवसम्बन्धी विचारोंको प्रकट किया । उसके मतमें बुद्धिकी सत्ता आत्मासे पृथक् है । वह कहता था कि मनुष्यके अन्तर्गत उठते हुए संकल्प-विकल्पका उत्तरदायित्व मनुष्यसे ऊपर एक संकल्पविज्ञानात्मक नियमके आधीन है । “एवररॉज” अपने मतकी प्रशंसा स्वयं इसप्रकार करता है कि उसके मतका प्रभाव मानवी आचार और विचारपर भावी दण्ड और फलके विचारकी अपेक्षा अच्छा पड़ता है ।

“थॉमस एक्वीनास” का नाम ऊपर लिया जा चुका है उसने एवररॉजके मतका घोर विरोध किया । उसके “पार्थक्यवाद” के सम्बन्धमें एक्वीनासका आक्षेप यह था कि इससे जीवोंके बहुत्ववादका खण्डन होता है । एक्वीनासने अरस्तूके ग्रन्थोंका ग्रीक-भाषासे अनुवाद कराया, और स्वयं उनकी टीकाएँ कीं । वह कहता है कि अरस्तूके मतका ठीक रूप यह है कि “क्रियात्मक बुद्धि” जीवका गुण है और यह कि जीव शरीरसे पृथक् है ।

जीवके शरीरसे पृथक् होनेपर “बुद्धि” किस प्रकार काम करती है, एक्वीनासके मतानुसार यह प्रश्न भौतिक विज्ञानसे नहीं सुलझाया जा सकता ।

(१२६६-१३०८ ई०) जिनका नाम ऊपर लिया डंस स्कोटस जा चुका है, उसका जीवसम्बन्धी मत यह है कि वह एक ऐसी निश्चयात्मक शक्ति है कि स्वयं बिना बुद्धिकी सहायताके प्रत्येक विषयका निर्णय कर लेती है । यही (Will to

believe) उसकी शिक्षाका मुख्य भाग है । वह कहता है कि जीवके अमरत्वका कोई नर्कसिद्ध प्रमाण नहीं है ।

पीटरो पोम्पोनेज़ी (Pietro pomponazzi)
(१४६२-१५२४)

यह योरपके
मध्यकालीन दार्श-
निकोंमें जीवकी

स्वतन्त्र सत्ताका विरोधी था । वह अरस्तूके जीवाकृतिवादकी बात उठाते हुए कहता है कि यदि जीव शरीरकी आकृतिमात्र है तो शरीरसे पृथक् नहीं हो सकता, वह बुद्धिको भी शरीर के संगठनपर निर्भर बतलाता है । उसकी भी शरीर स्वतन्त्र सत्ता का विरोधी है । आगामी जन्मके सम्बन्धमें कहता है कि यदि मनुष्य एक ओर व्यक्तियोंकी मृत्युसे कुछ खोता है तो दूसरी ओर इस विचारसे लाभ भी है कि मनुष्यसमाजका एक संगठन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक ही उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सम्मिलित होता है, और वह इस प्रकार समाजका एक अंश है और समाज सम्बन्धके विचारसे वह सत्य है । और यह कि मनुष्यका परिणाम दिव्य अनुसरण है, अर्थात् स्वच्छ परिणाम आचारपरक तर्कको काममें लाने और आचार-युक्त जीवन व्यतीत करनेमें है । पोम्पोनेज़ीको भूत-प्रेतकी सत्तामें विश्वास था ।

इसने सूक्ष्म शरीरका विचार
परसेलेस (Paracelsus)
(१४६३-१५४१)

उत्पन्न करके बतलाया कि
समस्त कल्पनाओं और स्वा-
भाविक बुद्धिका वह उत्तरदाता है । मृत्यु होनेपर स्थूल शरीर भौतिक तत्त्वोंमें लौटता है, परन्तु सूक्ष्म शरीर तारोंमें

मिल जाता है। स्थूलकी अपेक्षा सूक्ष्म शरीरकी आयु अधिक है।

(Giordano Bruno) (१५४८—१६००)
ज्याडैनों ब्रनो
ब्रूनोंके जीव सम्बन्धी विचार अद्वैतवादियों
के सदृश थे। वह विश्वमंधाको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका एक आत्मा
और सर्वोच्च शक्ति समझता था, अर्थात् सम्पूर्ण जगत्के मनुष्य
पशु, पक्षी और वृक्षोंमें एक ही जीव था। ब्रूनोंने अपना कार्य
प्रारम्भ ही किया था कि उसे प्राण खाने पड़े * इस घटनासे
गैलिलियो (Galileo) और डेकार्टको भी भयभीत होकर

चर्चके विरुद्ध मत प्रकट कर देनेके अपराधमें ब्रूनों जिंदा
ही जलाया गया था। कदाचित् ब्रूनोंका अपराध इसलिए भी बड़ा
समझा गया होगा कि वह पोपकी राजधानी इटलीका निवासी था
और वहीं उसने अपने विचार प्रकट किए थे। उस समय चर्चका
बल यौवनावस्थाको प्राप्त था। प्रत्येक विषयमें उसके ही अन्तिम
निर्णयको माना जाता था। उस समयकी परिस्थिति इस एकही
उदाहरणसे भलीभांति समझी जा सकती है कि तत्कालीन
विचारकोंमें एक मुख्य सम्प्रदाय था जिसने अपनी
लिए कुछ एक नियम बनाए थे जिनमें मुख्य दो थे (१) प्रत्येक
विवेककी आवश्यकता नहीं वह अंजीलमें मौजूद है, केवल उसका
समाधान अपेक्षित है (२) चर्च मनुष्योंके लिए ईश्वरका प्रतिनिधि
रूप है, सारे अधिकार चर्चको प्राप्त हैं अतः प्रत्येकका धर्म है कि
चर्चकी आज्ञाओंका पालन करे।

अपनी सम्मतियोंको दबाना पड़ा था। उनको अपनी सम्मति तो दबानी पड़ी परन्तु योरपकी अवस्थाके लिए यह परिवर्तन-काल था और शीघ्र परिवर्तन हो जानेमें सबसे बड़ा योग लूथर और उसके अनुयाइयोंने दिया। निदान चर्चको दबना पड़ा, “पोपडम” का अन्त हुआ। यही समय था जब गैलिलियोने अपनी आविष्कृत दूरबीनसे बृहस्पतिके उपग्रहोंका पता लगाया, कैपलर (Kopler) ने ग्रहोंकी आकृतियोंकी खोजकी और

“ब्रूनो” के साथ जो सलूक चर्चने किया था उसी प्रकारका सलूक बल्कि उससे कुछ बढ़कर, चर्चने देवी हाईपेशियाके साथ किया था वह विदुषी देवी विज्ञान सम्बन्धी खोज करके प्रकट किया करती थी। एक दिन जब वह एलेग्जन्ड्रिया (मिश्र) में इसीप्रकारका व्याख्यान दे रही थी तो पादरी शालके चले उसे घसीटते हुए गिरजाघर ले गए, वहाँ वह नंगी की गई, उसका मांस काटा गया और अन्तमें जलाई गई। इसप्रकारकी दुर्घटनाओं से योरपका मध्यकालीन युग भरा पड़ा है। जब यह पोपमय युग अत्याचारके शिखरपर पहुँचा था तो “यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानम धर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यऽहम्” की युक्तिके अनुसार मार्टिनलूथरका प्रादुर्भाव हुआ उमने अपने अनुयायी ज़विंजली (Zwingli) और कालविन (Calvin) के योग से तत्कालीन चर्चको उसकी स्थितिसे गिराया और पोपके अत्याचारोंमें लोगोंको बचाया।

कोपेर्निकस (Copernicus) ने घोषणाकी कि सूर्य्य विश्व (सूर्य्यमण्डल) का केन्द्र है। पृथ्वी एक आधारण ग्रह है। कोलम्बसने अमेरिका और वास्कोडिगामाने भारतवर्षको ढूँढा और पृथ्वीको गोल प्रमाणित किया। इस परिवर्तित युगका परिणाम यह हुआ कि विचार स्वतन्त्र्य बढ़ने लगा और वैज्ञानिकों और दार्शनिकोंको भी स्वतन्त्रतामें अपना मत प्रकट करनेका अवसर मिला। यही ईसाई-योग्य समाप्त होता है और वर्तमान योग्यकी आधार शिला रखी जाती है।

दूसरा परिच्छेद

योग्यके वर्तमान युगका प्रारम्भ काल।

डेकार्टके विचारोंमें नवीन योग्यका प्रारम्भ होता है, यह जीवात्माकी स्वतन्त्र सत्ता मानता था, उसके विचार इस प्रकार हैं:—

“मैं विचार करता हूँ इसलिए मैं* हूँ” डेकार्ट इसी विचार के साथ जीवात्माकी सत्ताकी साक्षी देता है, वह ईश्वर और प्रकृतिकी सत्ताका भी वैसा ही साक्षी है जैसा जीवकी सत्ता का। वह कहता है कि जीवमें चैतन्यता है और प्रकृतिमें विस्तार,

* “Cogito ergo Sum” डेकार्टका प्रसिद्ध वाक्य है जिसका तात्पर्य यह है “मैं विचार करता हूँ अतः मैं हूँ (I think- therefore I am)

आ परमात्मा सर्वोपरि है। जीव यद्यपि समस्त शरीरमें आ सकता है परन्तु उसका मुख्य स्थान मस्तिष्क है* जीव केवल मनुष्योंमें है, पशु-पक्षी स्वयं चलते हुए यन्त्र सदृश और जीव रहित है। पशुओंमें जीवका अभाव वह बुद्धिके अभावमें समझता है, और बुद्धिके अभावका प्रमाण यह है कि वे अपने विचार मनुष्योंपर प्रकट नहीं कर सकते † उसकी सम्मति

* जीवका स्थान डेकार्टने मस्तिष्कमें तृतीय चक्षु की जगह (In the pineal gland inside the brain) बतलाया है, कहा जाता है कि यह पिण्ड तीसरी आँखका वचा हुआ रूप है जो ऐतिहासिक कालमें पूर्व रेंग कर चलनेवाले जन्तु और आरम्भिक पशु रखते थे। लन्दनके विज्ञानागारोंमें एक छिपकली ऐसी बतलाई जाती है कि उसके शिरपर इसीप्रकारकी अधूरी बनी आँखका पूर्व रूप था, इससे तो शिवजीके तीसरे नेत्रकी भी बात बिल्कुल बेबुनियाद नहीं प्रतीत होती है।

† क्या इसी तर्कमें मनुष्य भी जीवरहित नहीं सिद्ध हो सकता है ? कहा जाता है कि पशुओंमें डेकार्टका जीव न मानना तत्कालीन चर्चके प्रभावसे था। डेकार्ट ईसाइयोंके एक अनुयायी “जैसूट” (Jesuits) लोगोंमें, जिनका फ्रांसमें उस समय बहुत प्रभाव था, बहुत भयभीत रहा करता था। सम्भव है यही हेतु उसके पशुओंमें जीव न मानने का हो, क्योंकि उस समय ईसाई मनानुयायी पशुओं में जीव नहीं मानते थे।

। पशुओंमें एक नैसर्गिक अथवा सहज-बुद्धि है जो चेतनाशून्य होती है ।

ये दोनों दार्शनिक

हेनरी मोर Henry / More) १६१४-१६८७

रेल्फ़कडवर्थ (Relph Cudworth) १६१७-१६८८

जीव सम्बन्धी

एक ही विचार

रखते थे । उनका विचार यह था कि जीव शरीरकी तीन मात्राओंसे भिन्न केवल चौथी मात्रामें है और शरीरकी भांति परिमित नहीं है, शरीर न फैल सकता है न सिकुड़ सकता है, वह स्थूल और कठोर है, परन्तु जीव इस बन्धनसे पृथक् है । समस्त शरीर यहाँतक कि ब्रह्माण्ड भी शीघ्रगामी जीवांसे भरा हुआ है । यह जीव नीचेके दर्जमें कीट कह जाते हैं । इनके ये विचार यूनानके “प्राकृतिक चेतनावेद” को पुनर्जीवित करते हैं, और प्रो० क्लीफोर्ड (Prof. Clifford) के “जीव प्राकृतिक-वेद” से भी मिलते-जुलते हैं । इस अन्तिमवेदका सार यह है कि प्राकृतिक जगत्का प्रत्येक अंश, जिनके एकत्र होनेसे वह बना है, ज्ञात अथवा अज्ञात विचारोंमें भरपूर है ।

डेकार्टेके शिष्योंमें अधिक प्रसिद्ध

मालब्रांश (Malebranche)

(१६३८-१७१५)

है । परमात्मा, आत्मा और प्रकृति

तीनोंकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकृत है ।

वह कहता है कि जीवकी इच्छानुसार शरीरमें और उसके द्वारा जगत्के उन पदार्थोंमें क्रिया उत्पन्न होती है और इसी प्रकार प्रकृतिकी क्रियाओंमें जीव प्रभावित होता है । परन्तु चाहें जीव प्रकृतिकी क्रियावान् बतावें अथवा प्रकृति जीवकी प्रभावित करे, दोनों अवस्थाओंमें प्रत्येक चेष्टाका वास्तविक

गण ईश्वर ही होता है; जीव और प्रकृति प्रासङ्गिक होते हैं।

मालव्राशके इस प्रसङ्गवादके अनुसार परमात्मा अपनी अनंत शक्तिमें पदार्थोंको देखता है, 'मैं परमात्माकी तरह अतन होनेके कारण इन पदार्थोंके चित्रोंको जो परमात्माके ज्ञानमें हैं, देखता हूँ,' इस वादको द्वैत और अद्वैत दोनोंका मध्य स्थानीवाद कह सकते हैं।

स्पीनोज़ा यद्यपि अद्वैतवादी है, परन्तु स्पीनोज़ा (Spinoza) शंकर और उसके ईश्वरसंबन्धी विचार (१६६२-१६७७) में अंतर है। शंकर ईश्वरको अप्राकृतिक चेतन शक्ति, परन्तु जगत्का अभिव्यक्तिपादान कारण मानता है, परन्तु स्पीनोज़ा जगत्को ईश्वरका विकसित रूप ही बतलाता है, जगत्में पृथक् ईश्वरकी सत्ता उसमें स्वीकार नहीं। उसमें द्रव्य केवल ईश्वरको माना है। उसके मतानुसार द्रव्य वह है, जो अनादि और अनंत हो, और वह एक (ईश्वर) ही है। ईश्वरके गुण उस (ईश्वर) के सदृश अनन्त हैं। उसके दो गुणों, चेतना और विस्तारमें, चेतना जिन रूपोंको ग्रहण करती है, उन्हें हम जीव कहते हैं; और विस्तार गुण अनेक प्रकारोंसे प्राकृतिक जगत् निर्माण करता है। मनुष्यमें यह दोनों प्रकार (शरीर और जीवके रूपमें) सम्मिलित हैं। ईश्वर के गुण अनंत हैं, उनसे निर्मित जगत् भी इसीलिए अनंत है परन्तु मनुष्य इन दो ही जगत्का ज्ञान रखता और रख सकता है। स्पीनोज़ाके ईश्वरमें एक विलक्षणता यह भी है कि वह ज्ञान-शून्य है। स्पीनोज़ा कहता है कि ज्ञान और चेतनाकी कल्पना ईश्वरमें करनेसे वह सीमित हो जाता है। एक पश्चिमी

विद्वान्ने स्पीनोज़ाके जीव सम्बन्धी विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं:—

“स्पीनोज़ा प्रचारित जीवनका अमरत्व, जीवनकी निरंतर सत्ता नहीं, किन्तु जीवनका ढंग है” “जो कुछ यहाँ और अब प्राप्त किया जाता है, उतना ही किसी अन्य स्थान और समयमें प्राप्त होता है। जो कुछ प्राप्त होता है वह जीवकी पूर्णताका भावी फल नहीं, किन्तु स्वयंमेव पूर्णता ही प्राप्त की जाती है।”

“चाहें हम उसे जीवनका अमरत्व कहें, अथवा ईश्वरीय राज्य, बुद्धि, मुक्ति अथवा निर्वाण कहें, इन सबको इनके धर्म-शिक्षकोंने कोई ऐसी वस्तु नहीं बतलाई जो इस जीवनसे पृथक् अथवा इस जीवनके बाद प्राप्त होती है, किन्तु सबने यही शिक्षा दी है कि इनमें (जीवनके अमरत्वमें) प्रविष्ट होकर तद् रूप हो जाना मुक्ति है”।

“स्वयं स्पीनोज़ाने लिखा है कि ‘यदि मनुष्यके साधारण विचारोंपर ध्यान दिया जावे तो प्रतीत होता कि वे अपने जीव के अमरत्वसे अभिज्ञ हैं, परन्तु उसे स्थायित्वके साथ मिलाकर भावना अथवा धारणासे सम्बन्धित करके उसके मृत्यु पश्चात् बाकी रहनेकी कल्पना कर लेते हैं*’।

लाईपनिट्ज़ Leipzig
१६५६-१७१६

लाईपनिट्ज़का सिद्धान्त है कि संसार चेतन अणुओंसे भरा है। प्रत्येक अणु ज्ञान और शक्ति गुणवाला है और प्रत्येक

* Spinoza. His life and philosophy by Sir, Frederick Pollack Bart. 2nd Edition p. 275.

की स्वतन्त्र सत्ता है। श्रेष्ठ अणु जीव, और निकृष्ट अणु शरीर कहलाते हैं। “अणुओंका अणु” अथवा “सबसे महान् अणु” ईश्वर है।

जीवका शरीर अथवा शरीरका जीवपर कोई प्रभाव नहीं है, अपितु ये दोनों ऐसे दो घंटोंके सदृश हैं जो एक ही साथ (एक ही समयमें) एक ही प्रकारका घंटा बजाते हैं। इन दोनोंका वह सम्मेलन पूर्व सङ्कलित सङ्गठनके आधार पर होता है। सर्वनाशक मृत्यु न शरीरके लिए है, न जीवके लिए। मृत्यु हीनपर शरीरके भीतर एक सूक्ष्म शरीर * है वह जीवित रहता है। इसीप्रकार जीव भी नहीं मरता वह विकसित होता रहता है। मनुष्य पशुकी भाँति नश्वर नहीं है, किन्तु उसकी प्रज्ञा उसके अमरत्वका विश्वास दिलाती है वह आत्मसत्तासे अभिन्न है, और (मृत्यु पश्चात्) फिर उठेगा। उसका शरीर-परिवर्तन उसके आचार सम्बन्धी मूल्यके अनुकूल नैसर्गिक नियमाधीन रहता है। लार्डप निट्ज़की परिभाषाके अनुसार “चैतन्याणुवाद” के अन्तर्में मनुष्यके पास ब्रह्मपुरीका एक संक्षिप्त चित्र होगा, जहाँ कोई शुभ कर्म बिना फलके कोई अशुभ कर्म बिना दण्डके बाकी नहीं रहता।

* यह सूक्ष्म शरीरका विचार बीजमैनेके “कीटवाद” (Weismann's theory of Germplasm) से मिलता-जुलता है। कीटवादानुसार वह कीट प्रत्येक योनिमें जीवके साथ स्थित रहता है *Lamanalogie, par Emile Boutroux, p. 65-66.*

बैलीने अपने बनाए हुए अंग्रेज़ीके एक
बेला Bayle
१६४७-१७०६
कोपमें जीवके सम्बन्धमें कई जगह अपना
मत प्रकाशित किया है। उसका कथन है कि

उममें पूर्व हुए दार्शनिक मनुष्य और पशु दोनोंके लिए
प्राकृतिक जीवकी सत्ता मानते थे, परन्तु उन्होंने पशुओंके जावों
के सम्बन्धमें अमरत्वका विचार कहीं प्रकट नहीं किया है।
हां मनुष्योंके जीवोंको वे अमर जरूर मानते थे।

ने पशुओंके जीवोंके अमरत्वके सम्बन्धमें
एक और विद्वान
लिखा * है कि यद्यपि दर्शनमें पशुओंके जीवोंके
अमरत्वके लिए कोई स्थान नहीं, परन्तु “कम चाडालीस”
(Kam chadeles) मक्खी मच्छरोंके पुनर्जन्ममें विश्वास
रखता था। “एगासीज़” (Agassiz) ने अपने एक निबन्ध
जो उसने “वर्गक्रम” पर लिखा था, लिखा है कि ४६७७ पुस्तकों
में से जो जीवके स्वभाव और पुनर्जन्मके सम्बन्धमें लिखे गए
हैं और जिनका जिक्र “ऐलगर” (Alger) ने भी अपने
इतिहासमें किया है; २०० पुस्तकोंमें पशुओंके पुनर्जन्मके सम्बन्ध
में विचार किया गया है।

यह महाशय ‘आत्मजगत’ के दृष्ट-
स्वीडनबोर्ग Sweden Borg
१६८८-१७७२
साक्षी हैं, इनकी गवाही सुनिए।

जीव सम्बन्धी विचार करते हुए
ही इनको प्रकट हुआ कि स्वर्गका द्वार इनके लिए खुला है और
यह ईसाके द्वारा वहां तक पहुँच गए। वहां इन्होंने जो कुछ देखा
उसका विस्तृत विवरण अपने लेखमें किया है। नरक का हाल भी

* Clodd : Myths and Drams. p. 208.

लिखा है कि वहां क्या-क्या और किस-किस प्रकार होता है । पापका कारण क्या है, और यह कि स्वर्गमें विवाहोंकी स्थिरता* और पवित्रता कैसी मानी जाती है, इन सब बातोंका भी उल्लेख किया है । स्वीडनबोर्ग फिर कहते हैं कि स्वर्ग और नरककी देव-भाल करनेके बाद फिर संसारमें ईसाके द्वारा ही पहुँचाए गए और यात्राके फलरूपमें उनकी नियुक्त “नए जेरुसलीम” के “पेंगुम्बर” पद पर हुई । स्वर्गमें इनकी मुलाकात बहुधा शरीर छोड़ें हुए जीवोंसे भी हुआ करती थी । इनके कथनानुसार जीव मृत शरीरको भी उस समय तक नहीं छोड़ता जब तक शरीर सड़-गलकर जिन भूतोंसे बना था वे अपने अपने कारणोंमें लीन नहीं हो जाते ।

वाल्टेर (Voltaire)
१६६४-१७८८

यह अज्ञेयवादी था । जीवके अमरत्वको यद्यपि नहीं मानता था तो भी कभी-कभी उसका विचार हो जाता था कि न्यायव्यवस्था

अमरत्व स्थापना चाहती है । वह ईश्वरका विश्वास, जनताके आचार-सुधारका रक्षासाधन समझ कर रखता था और ऐसा विश्वास रखनेमें, जीवके अमरत्वका मानना उसके लिए

* स्वर्गमें विवाहोंकी स्थिरताका कथन, पश्चिमी संसारमें विवाहकी अस्थिरता किस प्रकार “तलाकों” की बढ़ोतरीका कारण बन रही है, उसके दूर करनेका प्रस्तावमात्र प्रतीत होता है । स्वीडनबोर्गका यह स्वर्गारोहण मुहम्मद साहब की “मैराज” सम्बन्धी यात्रासे मिलती-जुलती बात प्रतीत होती है ।

अनिवार्य-सा ही था। फिर भी वह कहता है कि ईश्वर तथा जीव की सत्ता, क्या और किस प्रकारकी है, यह अज्ञात है।

प्राकृतिक अणुओंको इन्द्रियमय मानता था,
बुफन| Buffon | इसलिये जीव और ईश्वर दोनों उसके लिए
१७०७—१७८८ अनावश्यक-से थे।

इसने “बुफन” के नास्तिकवादको उन्नत
डिडरोट Diderot | किया। शरीरके भीतर ज्ञानतन्तुओंके विल-
१७१२, १७८४ क्षण कार्यका ज्ञान प्राप्त करनेसे गहरा प्रभावित था, परन्तु इच्छाशक्तिकी स्वतन्त्रता और जीवकी अमरता का विरोधी था।

बरन डी. हालबेक Baron d'Halbach | प्रकृतिवादी था। इसने
१७७० ई० में एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उसका उद्योग यह था कि प्रकृति और शक्तिके मिवाय संसारमें कोई स्थिर वस्तु नहीं है। जीव शरीरका अंश है, अर्थात् ज्ञान तन्तुओंसे भिन्न कोई वस्तु नहीं।

तीसरा परिच्छेद

लॉक ईश्वर, जीव और प्राकृतिक तीनोंकी सत्ता
लॉक Locke † मानता था। उसका कथन है कि जीवात्मा
१६३२, १७०४ का सारा ज्ञान अनुभवसे प्राप्त होता है और इस जन्मके अनुभवोंसे पूर्व आत्माकी अवस्था ऐसे कागज़की

*System de-la Nature by Barond Halbach.

† पश्चिमके परीक्षात्मक तर्कका जन्मदाता समझा जाता है।

तरह होती है जिसपर कुछ लिखा हुआ न हो। जीवात्मा में वह ६ प्रकारकी शक्तियाँ मिश्रित अनुभवोंके बनानेके लिए मानता है (१) अलब्धि (२) स्मृति (३) विवेक (४) भेदाभेद विचार (५) सम्पर्क (६) व्यापकत्व।

इनमेंसे प्रथमकी पाँच शक्तियाँ वह कहता है कि पशुओंमें भी होती हैं परन्तु छठी शक्ति केवल मनुष्योंमें पाई जाती है। वह कहता है कि प्रकृतिके विषयमें हम इससे अधिक नहीं जानते कि आकार-विस्तार आदि गुणोंका आधार है और सम्बेदनसे उसका ज्ञान होता है, आत्मासम्बन्धी हमारा ज्ञान यह है कि प्रत्यक्ष, स्मृति, सुख, दुःख आदिका वह स्रोत है। द्रव्यका शुद्ध स्वरूप हम नहीं जानते। वह कहता है कि जीवकी हस्तीमें सन्देह करना ही उसकी हस्तीका प्रमाण है।

परमात्माके सम्बन्धमें वह कहता है कि वह जगतका रक्षयिता है, और कारण तथा कार्यके विचारसे उसकी सत्ता जानी जाती है। मुख्य और गौण गुणोंका विचार करते हुए वह कहता है कि मुख्य गुण ही किसी प्राकृतिक पदार्थकी सत्तारूप हो सकते हैं और गौण गुण आत्मा में मुख्य गुणोंके कारण उत्पन्न हुआ करते हैं। जैसे फूलका विस्तार (मुख्य गुण) फूल में है परन्तु गन्ध और रंग (गौण गुण) जीवमें उत्पन्न होते हैं। वह कहता है कि जीव अपने शुद्ध-स्वरूपमें प्राकृतिक है अथवा अप्राकृतिक यह हम नहीं कह सकते।

बरकले (Berkeley)

(१६८५—१७५२)

बरकले आत्मा और परमात्माकी सत्तामें विश्वास करता है, परन्तु उसे प्रकृतिकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकृत नहीं है। वह कहता है

कि जीवात्मा एक अमिश्रित पदार्थ है इसलिए उसका विच्छेद नहीं हो सकता यह आवश्यक नहीं कि उसका सदैव शरीरसे सम्बन्ध रहे। शरीरके नष्ट हो जानेपर भी वह बाक़ी रहता है। वह अमर है।

परमात्माको वह निमित्त कारण और सन्पूर्ण ज्ञानको उसके कार्योंका परिणाम बतलाते हुए उसे नित्य और सर्वव्यापक ठहराता है। वह कहता है कि गौण गुणकी भांति मुख्य गुण भी जीवात्मा हीमें हैं। वह जीवकी अब्यज्ञता और उसके बहुसंख्य होनेमें विश्वास करता है।

ह्यूमका मत है कि मनुष्यका आत्मा अपनी
 ह्यूम (Hume) अवस्थाओंसे भिन्न किसी वस्तुको नहीं जान
 (१७४१-१७७६) सकता। वह कहता है कि जिसप्रकार बाह्य जगत्-
 का सारा ज्ञान गुणोंका ज्ञान है, उसीप्रकार आन्तरीय जगत्-
 सम्बन्धी हमारा समस्त ज्ञान अवस्थाओंका ज्ञान है। उसकी
 सम्मतिमें द्रव्य अथवा शास्त्रकी कोई सत्ता नहीं, साग जगत्
 अवस्थाओं की का समूह है। इसप्रकार ह्यूम शून्य अथवा द्रव्या-
 भाववादी था। वह कहता है, जिसप्रकार प्रकृतिने हमें कर्मोंद्वियों
 का व्यवहार सिखलाया उसीप्रकार प्रकृतिने हमारी आत्मामें एक
 सहज बुद्धि उत्पन्न की है, जिसके द्वारा हम आगे जा सकते
 हैं, और पिछले ज्ञानकी सहायतासे भविष्यत् निर्माण कर
 सकते हैं। ह्यूमकी शिक्षामें जीवकी स्वतन्त्र सत्ताका कोई
 विधान नहीं। अब उसके अनुयाई जीवको ज्ञान धारावत्
 समझते हैं।

काण्ट (Kant) काण्टकी रचनाओंमें विचार और वितर्ककाल १७२४—१८०४ को उन्नतिके शिखरपर पहुँचा दिया था। काण्टकी समीक्षा तीन भागोंमें विभक्त हैं:—

(१) शुद्ध बुद्धिकी समीक्षा ।

(२) व्यावहारिकी बुद्धि ।

(३) नियामक बुद्धि ।

शुद्ध बुद्धिकी समीक्षाके आधारपर कांट कहता है कि ज्ञानकाण्डका एक भाग बाहरसे आता है दूसरा भीतरसे। बाहर (प्रकृति) से मिला ज्ञान द्रव्य कहलाता है, उस द्रव्यको आकृति जीवात्मा देता है, इन्हीं द्रव्य और आकृतिके मिलनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है। वैज्ञानिक परिभाषाओंमें कांट ज्ञानका विवेचन इसप्रकार करता है कि ज्ञान संयोजक और नैसर्गिक वाक्य है। द्रव्यको आकृति जीव देता है, वह आकृति-देश और काल है। देश और काल उस ऐनकके दो शाशे हैं जिनके द्वारा जीव प्रत्येक अनुभवको देखता है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस देश और कालकी ऐनकसे अनुभवके रूपमें क्या परिवर्तन हो जाता है। समस्त अनुभव ज्ञान, देश और कालसे प्रतिबद्ध है। जिसप्रकार बाहरकी सामग्री (प्रकृति) को देश और कालकी आकृति देनेसे अनुभव बना था, उसीप्रकार मन उन अनुभवोंसे सम्बन्ध जोड़कर “ज्ञान” बनता है। उपर्युक्त आकृतियोंको कांट “ज्ञाननियम” कहता है, और इसप्रकार आकृति देकर सम्बन्ध स्थापित करके ज्ञानका निर्माण करनेके द्वारा आत्मा दृश्य जगत् में अपने नियमोंकी स्थापना करके उसे निर्माण करता है। इन्हीं नियमोंका विस्तार करते हुए कांट कहता है कि मनप्यविवश है

कि प्रकृति जीव और परमात्मामें विश्रान्त करे परन्तु पदार्थ बुद्धि का विषय नहीं है, इसलिए इन्हें बुद्धि-द्वारा * जान नहीं सकते । व्यावहारिकी बुद्धिकी परिक्षा करने हुए वह कहता है कि सन पदार्थोंकी जानकारीके लिए हमें कृति (इच्छा) की शरण लेनी चाहिए । कांटका यह मुख्य सिद्धान्त है कि आत्मिक शक्तियोंमें बुद्धि नहीं, किन्तु कृति प्रधान है, और यही अन्य समस्त शक्तियोंका आधार है । कृतिकी समीक्षा करते हुए वह कहता है कि “निस्सन्देह आत्मा और परमात्मा नित्य है” कृति से, वह कहता है कि बुद्धिसे उत्पन्न हुए सन्देहोंका नाश होता है । और कृति ही से आचार और धर्मकी रक्षा होती है, आचार सम्बन्धी नियमोंका विवेचन करते हुए जो परिणाम उसने निकाला है वह यह है और यही कांटका वास्तविक सिद्धान्त है ।

१. जीवात्मा नित्य है, स्वतन्त्र है और अमर है ।

२. परमात्माकी सत्ता है, वह नित्य है, जगत्का रचयिता है, और कर्मफलदाता है ।

कांट अनंत भावी जीवनोका विधायक था, उसका विचार था कि पर्याप्त समय उन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए मनुष्योंको मिल सके जिनकी पूर्ति अत्यन्त कठिकतासे होती है ।

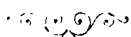
इङ्ग्लैंडके सबसे बड़े विचारकने अनेक खांजों सर आइज़िक न्यूटन और अन्वेषणाओंके बाद १६८७ ई० में अपनी

* काण्टने शुद्ध बुद्धिकी परीक्षा परिणामसे प्रकृति, जीव और परमात्माकी सत्तामें सन्देह नहीं किया है किन्तु बुद्धिके सामर्थ्यकी सीमा प्रकटकी है ।

प्रसिद्ध पुस्तक “प्रिंसिपिया” (Principia लिखा था, जिस में समस्त ग्रहों और नक्षत्रोंमें आकर्षण शक्ति होनेका निरूपण किया गया है। उसी पुस्तकके एक परिशिष्टमें उसने अपना विश्वास प्रकट किया है कि यह समस्त प्राकृतिक जगत् जिसका उसने स्वाध्याय करके अनेक नियम खोजे हैं, उस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् प्रभुका रचा हुआ है।



छठा अध्याय



योरपकी १६ वीं शताब्दी

पहला परिच्छेद

दार्शनिक

योरपकी १९ वीं शताब्दी, अद्वैतवादसे प्रारम्भ होती है, उसका विवरण इस प्रकार है:—

जीवात्मा जगत्को बनाता ही नहीं किन्तु फीचटे (Fichte) (१७६२—१८१४) उसका उत्पादक भी है आत्माके सिवाय और कोई सत्ता नहीं।

आत्माका तत्त्व कृति है यही समग्र अस्तित्व है। आत्माका स्वभाव है कि अपने ज्ञानमें अनात्माको उत्पन्न करके उसे अपने से पृथक् समझे। यह पृथक् समझना भ्रम है, वास्तवमें पृथक् और कुछ नहीं।

परमात्माको पृथक् समझना ही भूल है। परमात्मा आचार नियमसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है। वह पुरुष जो कर्म करते हुए कर्तव्यका ध्यान रखता है आस्तिक है, कर्तव्यकी उपेक्षा करके सुख चाहना नास्तिकता है। उसकी सम्मति में मनुष्य रचयिताका रहस्यपूर्ण है।

शैलिंग (Schelling)

१७०—१८४४

शैलिंग का मत है कि सत्य पदार्थ न आत्मा है न अनात्मा (प्रकृति) प्रत्युत एक और वस्तु है जिसे निरपेक्ष कहते हैं, यही आत्मा और अनात्मा दोनोंका स्रोत है। वह कहता है कि प्रत्येक विचारमें प्रतिज्ञा-प्रति-प्रतिज्ञा और संयोग तीन अंग होते हैं। इसीके अनुसार विचारके केन्द्र दृश्य झगतमें प्रथम स्थूलपन होता है। दूसरी श्रेणीमें कृतिका प्रकाश होकर अहंकार उत्पन्न होता है। तीसरी श्रेणीमें जीवनका प्रकाश होता है। परन्तु ये तीनों प्रकृतिमें विद्यमान हैं और सारा जगत जीवित है, अन्यथा जीवनकी उत्पत्ति न होती।

ज्ञानसे कृतिका पद ऊँचा है परन्तु ब्रह्मके साक्षात्कारका हेतु सौन्दर्य विवेचन शक्ति है। यह शक्ति ज्ञान और कृतिके द्वैतका नाश कर देती है। सौन्दर्य विवेक और धर्म एक ही वस्तु है। तर्कसे हम परमात्माको चिंतन करते हैं, और सौन्दर्य विवेकसे दर्शन। परन्तु फिर उनका दूसरा मत इस प्रकार है कि परमात्मा एक पुरुष था उसने चेटा की। इस चेटाके समय वह चेतन न था, वह कहता है कि संसारमें जं दुख और पाप है वह ब्रह्मकी, पुरुष बननेसे, पहली अवस्थ है। यह कुछ बननेकी चेटा है। परमात्मामें यह नियः उसके प्रेममें डूबा रहता है। मनुष्यमें स्वतन्त्र होकर पापक कारण बनता है।

हेगल (Hegel)

१७७०—१८३१

हेगल कहता है कि “निरपेक्ष” हमारे ज्ञा का विषय है। क्रिया और जीवन निरपेक्ष ही है उसको द्रष्टा भी कहते हैं। जीव

बुद्धिका प्रकाश है। बाह्य जगत्में बुद्धि अचेतन है परन्तु हमारी आत्मामें चेतन। जगत्के सारे पदार्थ इसी एक निरपेक्षके प्रकाश हैं। एक प्रकाश विकासकी एक अवस्थाका है दूसरा दूसरी का। उत्तम प्रकाशके साथ निकृष्ट भी विद्यमान रहता है। अजीवित प्राकृतिक जगत् वनस्पतिके उत्पत्ति के पीछे नाश नहीं हो जाता, न वनस्पति पशुओंकी उत्पत्तिके बाद और न पशु मनुष्योंकी उत्पत्तिके बाद नष्ट हो जाते हैं किन्तु बाकी ही रहते हैं।

जीवात्माके सम्बन्धमें उसका मत है कि जिनने जीव जगत्में हैं वे सब “निरपेक्ष” प्रत्ययके नाना रूप हैं, जलतरंग जिस प्रकार समुद्रसे पृथक् नहीं इसीप्रकार जीव भी निरपेक्षसे भिन्न नहीं किन्तु उसीके बहुरूप और आकार हैं वाग्नविक सत्ता इस निरपेक्ष ही की है।

हीने (Heine) के साथ हुए शास्त्रार्थमें हेगलने एक आक्षेपका उत्तर देते हुए कहा था “उस सीमासे बाहर जिसमें मिटाने, नाश होने, मरने आदिके विचार सम्मिलित हैं, जीव उठाया जाता है स्पष्ट निश्चयकी भांतिसे नहीं।”

मनुष्यका जीवन इच्छाका प्रकाश
 शोपनहार (Schopenhauer) १७७०—१८३९
 है। इच्छा त्रुटियोंके दूर करने के लिए, करते, हैं, त्रुटि दुःखोंका धूल है। जीवन और जगत् दोनों दुःखमय हैं, विषयकी तृप्ति से अपनेको शान्त करनेकी इच्छा, घृतसे अग्निके बुझाने

*Erdmann's History of philosophy. English translation Vol. III p. 28.

की इच्छाके सहश है। निर्वाण जीवनका आदेश है। जीव-नाद्देश्य, जीवनका विस्तार करना नहीं, अपितु जीवनका बन्धनों से मुक्त करना है। परन्तु आत्महत्यासे उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। आत्महत्या पाप है। शोपनहार हिन्दू त्याग-वादियोंके जीवनको आदर्शजीवन मानता है। वह जगतकी रचनाके सम्बन्धमें कहता है कि सृष्टिका उत्पादक नियम चेतन द्रष्टासे भी गहरा है। वह नियम इच्छा ही है। प्रकृति का आकर्षण, मनुष्योंकी इच्छाएँ, इसीके प्रकाश हैं। यही इच्छा जड़ जगतमें यान्त्रिक शक्तिके रूपमें काम करती है, जीवित अचेतन जगतमें आंगिक आवेगशीलता और चेतन जगतमें आत्मिकोद्देश्यके रूपमें प्रकाशित होती है। यह इच्छाको ज्ञानसे भी ऊँचा दर्जा देता है और कहता है कि जब हम सत्यका माक्षान दर्शन करते हैं तो प्रकट हो जाता है कि उसका तत्त्वज्ञान नहीं किन्तु इच्छा ही है।

पशुओंमें ज्ञान सदैव इच्छा ही के आधीन रहता है परन्तु मनुष्य अपने ज्ञानको इच्छासे मुक्त भी कर सकता है यही उसकी विलक्षणाता है। अर्थात् वह ऐसी कल्पनाओंका भी निर्माण कर सकता है जो उसके शरीर बुद्धि आदिके लिए आवश्यक नहीं जैसे चित्रकारी।

शोपनहार उपनिषदोंको उच्च और आदर्शकी दृष्टिसे देखता था वह कहता है कि “संसारमें कोई पाठ इतना लाभ-दायक और उच्च बनानेवाला नहीं जितना उपनिषदोंका है। उपनिषदोंसे मुझे जीवनमें शान्ति मिली है, और मृत्यु समय भी यह मेरे लिए शान्तिका स्रोत होगी” ;

रुडोल्फ हर्मन लोज़ (Loze)
१८०६-१८८०

लोज़के जीव सम्बन्धी विचार लाइ
पनिट्सके विचारसे मिलते-जुलते
हैं, लोज़ जीवकी स्वतन्त्र सत्ता
और उसकी अमरताका पोषक था। उसका विचार था कि
चेतनाका कार्य जड़शक्तियोंसे साधित नहीं हो सकता, इसलिए
जीवका मानना अनिवार्य है। लोज़के सम्बन्धमें यह भी कहा *
जाता है कि यद्यपि वह जीवको अमर बतलाता था, परन्तु यह
अमरता सब जीवोंके लिए नहीं थी। केवल ऐसे जीवोंको वह
अमर होनेका अधिकारी समझता था जो स्वयं अपनी उच्चमूल्यता
का अनुभव करने लगें, और उसका मत था कि इस अनुभव-
द्वारा जीव अमर हो सकते और होते हैं।

रोइस
Prof. Royce of Harvard

रोइसके जीव सम्बन्धी विचार लोज़
से मिलते-जुलते हैं। उसने अपने
विचार स्वरचित पुस्तक 'अमरत्व
विचार' † में इसप्रकार प्रकट किए हैं:—

(१) ब्रह्माण्ड ज्ञानशक्ति सम्पन्न है। जीवनमें ईश्वरीय इच्छा
अनुपम गीतिसे प्रकटकी गई है।

(२) स्वतन्त्र जीवनकी प्रत्येक आभा भी कुलके अनुपम

* Erdmann's History of Philosophy Vol.
111 p. 309,

† Conception of immortality by. Prof.
Royce p. 78-80.

होंनेसे अनुपम होनी चाहिए और वह कुछ इसप्रकारकी होनी चाहिए, जिसे अहंकार प्रकट हो।

(३) प्रचलित जीवनमें यद्यपि हम लगातार अपनी सत्ताके प्रकट करनेके लिए यत्नवान् होते हैं तथापि ज्ञान प्राप्तिके साधन जो हमारे अधिकारमें हैं उनसे न तो वास्तविक अभिमानी जीव जाना जाता है और न प्रकट किया जाता है।

(४) तां भी हमारा जीवन दिव्यजीवनके साथ एकत्व रखनेके कारण अन्तमें वास्तविक वैयक्तिक जीवन होगा।

(५) इसलिए हम अपने लिए जैसा कि हम अपने आन्तरिक प्रयत्नका अनुभव करके एक दूसरेसे प्रकट करते हैं, एक वास्तविक और बहुविध व्यक्तित्वके चिह्न हैं जो हमपर अभी प्रकट नहीं हुए हैं और न इस तथा आगामी जीवनमें जो जीवन और मृत्युके मध्यमें प्राप्त होंगे, जबतक हमारे अधिकार ज्ञानोपाजन करनेके प्रचलित साधनोंतक परिमित रहेंगे, प्रकट हो सकते हैं।

(६) अन्तमें बहुविध वास्तविक व्यक्तित्व, इस समय जिस को सत्ताका (कथन-मात्रसे) प्रकाशित कर सकते हैं, ऐसे जीवनमें जिन्हें बाह्य शून्यवाद स्वीकार कर सकता है प्रकट होगा, उसी समय हम अन्तिम सत्य और ईश्वरसे हमारा क्या सम्बन्ध इन दोनों विषयोंका अनुभव कर सकेंगे। इन विषयों का बोध इस समय हमें उसीप्रकार नहीं होता है जिस प्रकार अन्धे दर्पणमें कोई वस्तु नहीं दिखाई देती।

गुस्टाव थियोडोर फेकनर
Lechmar [१८०१-८८७]
फेकनरके जीव और ईश्वर सम्बन्धी विचार ये हैं:—जिस प्रकार जीवात्मा शरीरके व्यापारों और अवस्थाओंको संचितकी एकतामें इकट्ठा कर रहा है उसी प्रकार परमात्मा समस्त सत्ता और भावोंका एक्य है। समस्त प्रकृति ईश्वरका शरीर है। नक्षत्र वृक्ष आदि सब सात्मक और सजीव हैं। मृत और निर्जीवसे जीव नहीं पैदा हो सकता, इस लिए यदि पृथ्वी निर्जीव होती तो उससे जीव किस प्रकार पैदा हो सकते। मनुष्य की आत्मा मध्यमें है उससे नीचेकी श्रेणीमें वृक्षादिकी आत्मा है, और ऊपर ग्रह, नक्षत्र आदिकी आत्मा है। इन सब आत्माओंका एक्य चित्स्वरूप परमात्मामें होता है। वैज्ञानिकोंके अनुसार चित्तके अतिरिक्त सब कुछ अन्धकारमय है पर यह बात सर्वथा असंगत है क्योंकि रूप रस शब्द आदि जीव जगत चित्तशक्तिनिष्ठ आभासमात्र नहीं हैं। ये पारमार्थिक ईश्वरीय ज्ञानके अवयव हैं।

आत्मा और शरीर अयुतसिद्ध अर्थात् नित्य परस्पर-युक्त हैं न निरात्मक शरीर हो सकता है न निःशरीर आत्मा ही। विलियम जेम्स* ने फेकनरके विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं। “फेकनर कहता है कि हम सब पृथ्वीके व्यक्ति पृथ्वी जीवकी इन्द्रियां हैं। हम उसके विषय ग्रहणसमर्थ जीवनको उस समय तक बढ़ाते रहते हैं जबतक कि हमारा जीवन समाप्त नहीं हो जाता। वह (पृथ्वीका जीव) हमारे विचारोंको ठीक उसी समय जब वे उत्पन्न होते हैं ग्रहण करके उन्हें अपने विशाल विद्यमण्डल

* A Pluralistic Universe by. W. James.

में ले लेता है और लेकर उन्हें स्वीकृत तत्त्वोंमें सम्मिलित कर देता है। जब हममेंसे कोई मरता है तो यह मरना पृथ्वीकी एक आंख फूट जानेके सदृश है क्योंकि जितने विचार मरनेवाले के द्वारा और प्राप्त नहीं हो सकते परन्तु मरनेवालेसे सम्बन्धित स्मृति और विचार महान् पार्थिव जीवनमें सदैव विविकृत रहते हैं और जिसप्रकार जीवित पुरुषके विचार स्मृतिमें एकत्र होकर नए सम्बन्ध और विचार उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार वे भी उत्पन्न होते रहते हैं। जीव अमरत्वके सम्बन्धमें फेकनर के यही विचार हैं”।

जर्मनीका अन्तिम दार्शनिक जो १९वीं एडवर्ड वनहाट मान शताब्दीके अन्तमें हुआ, दुःखवादी था। इसके दार्शनिक विचार लोज और फेकनरसे मिलते-जुलते हैं, इसको ईश्वर और जीवकी सत्ता स्वीकृत है। वह कहता कि मूर्त-द्रव्य अणुशक्तियोंकी परम्परा रूप हैं। शरीरकी स्थिति स्वाभाविक और अचेतन है। सभी अवयवोंके कुछ उद्देश्य हैं जिनका स्पष्ट ज्ञान अंगोंका नहीं है, सुख दुःखका मूल ज्ञान नहीं है? अज्ञानपूर्वक ही इनका भी उद्भव है यहां तक कि किस नाड़ीसे और मस्तिष्कके किस अंशके उत्तेजनसे क्या व्यापार होता है और कैसी चितवृत्ति होती है, यह मनुष्य स्वयं नहीं जानता। स्वभावताः ये व्यापार होने हैं पर स्वभाव अचेतन है। चेतनाशक्तिका कार्य केवल निषेध, परीक्षा, नियम, परिमाण तुलन, योजन, वर्गीकरण, अनुमान आदि हैं। वे अन्तमें कहता है कि शुद्ध और दुःखी संसारी जीवको ईश्वरके अभिमुख होकर मुक्तिका यत्न करने ही में वास्तविक शान्ति और सुख है

न कि संसारका बखेड़ा बढ़ानेमें । तथापि जबतक ऐसी अवस्था नहीं आती तबतक दुःखके भयसे कर्म नहीं छोड़ना चाहिए ।

मनोविज्ञानका प्रसिद्ध विद्वान् । अनेक विलियम जेम्स William James पुस्तकोंमें इसके अनेक विचार मिलते हैं जिनका अति सूक्ष्म विवरण इस प्रकार है । यह जीवके अमरत्वमें विश्वास रखता था कभी इस विषयको मुख्य समझता था कभी गौण । “प्रत्येक मनुष्य से पृथक् परन्तु विशेष रूपमें निरन्तर उसके साथ ही, एक उससे अधिक बड़ी शक्ति रहती है जो उससे और उसके आदर्श से सहानुभूति रखती है” ।*

“जेम्स सत्ताकी एक और नाप” में विश्वास रखता है और बार-बार अपनी पुस्तकमें उसका कथन करता है । वह कहता है “चेतनाका विलक्षण विस्तार, बेसुध करनेवाली अंगोष्ठार्मकी तरहकी वस्तु विशेष (Anaesthesia) के प्रयोगसे होता है” ।

एक दूसरी पुस्तक † में मनुष्यके जीवनपर विचार करते हुए वह कहता है कि आत्मिक जीवन सर्वथा मस्तिष्कके आधीन नहीं है, और यह कि “समस्त प्राकृतिक आनुभाविक जगत् समय का अप्रकट रूप है और वही अपरिमित विचारको जो मुख्यतया सत्य हैं, असंख्य अंशोंमें विभक्त करके परिमित चेतनाका

*Varieties of Religious Experiences by W. James.

† James' Book on Human Immortality.

प्रवाह बहा देता है, उन्हींको हम अपना-अपना जीव कहते हैं” जैम्स अपने इसी विचारको अधिक स्पष्ट करनेके लिए प्रसिद्ध कवि शैली (Shelly) का एक पद्य उद्धृत करना है जिसका भाव यह है “जीवन अनेक रंगीन शीशोंके शिखरवत है और नित्यताकी श्वेत ज्योतिकों मलिन करता है” * वह फिर आगे कहता है कि “जब अन्तमें मस्तिष्कका काम सर्वथा बन्द हो जाता है अथवा (मनुष्य) मर जाता है, तब वह “परिमित चेतना प्रवाह” आज्ञानुवर्ती होकर इस प्राकृतिक जगत्में सर्वथा चला जाता है। परन्तु वह मुख्य सत्ता, जिसने चेतना प्रदान की थी, चेतना प्रवाह के प्राकृतिक जगत्में रहनेपर भी (दूसरे) अधिक वाग्नावकता रखनेवाले जगत्में निर्दाप बाकी रहता है वह अब भी है और आगे भी रहेगा अवश्य हम उसके बाकी रहनेके ढंगोंमें अनभिज्ञ रहते हैं” ।

अपनी एक और पुस्तक† में वह अपना झुकाव, किसी प्रकारके एक अपौरूप जीवनमें विश्वास रखनेकी ओर प्रकट करता हुआ कहता है कि उससे हम वास्तविक जानकारी न रखते हुए भी अनभिज्ञ हो सकते हैं। इसी विचारको वह एक उदाहरण देकर स्पष्ट करता है “जिस प्रकार कुत्ते और बिल्ली हमारे पुस्तकालयोंमें रहते हुए पुस्तकों देखते और हमारी बातचीत सुनते

* शैलीके शब्द यह हैं: —

“Life like a dome of many coloured glass
Stains the white radiance of eternity.”

† A Pluralistic Universe by W. James p.307.

हुए भी उनमें अनभिज्ञ रहते हैं इसी प्रकार हम संसारमें हैं ।”

ओलिवर वेंडेल होम्स
Oliver Wendell Holmes

होम्सने अपनी पुस्तक “विचार और
आन्तरिकमें यज्ञव्यापार” * नामकमें

अपने एक विलक्षण अनुभव और
परीक्षणका उल्लेख किया है:—“एक बार मैंने ‘ईश्वर’ की पूरी
मात्रा श्वास-द्वारा इस विचारके साथ ऊपर चढ़ा ली कि चेतनाके
लौटानेके साथही जो विचार मस्तिष्कमें हों उन्हें लेखवद्ध किया
जावे । मेरा मस्तिष्क विजयोत्सवमें सम्बन्धित वीरतापूर्णसुगीले
गानमें गुञ्जायमान हो गया । अनन्तत्वका परदा उठ गया था ..
इसलिए सब भेद खुल गया । (गानके) कुछ शब्दोंने मेरी बुद्धि
को ऊँचा करके दिव्य जीवोंकी बुद्धिके सदृश कर दिया । फिर,
मैं अपनी असली हालतमें आ गया । मुझे विचार याद थे जो
उस बीचमें उठे थे अतः शीघ्रतासे डेस्कके पास जाकर उन्हें
लिख लिया, वे शब्द अब तक मेरे हृदयमें प्रकाशित हो रहे हैं,
और वे ये थे:—“बच्चे हँस सकते हैं बुद्धिमान् चिन्तन करेंगे”।
उस समय मेरा मस्तिष्क तारपीनकी तीव्रगन्धसे भरा हुआ
सा था ।

ई० एच० पी० हेनस
E. S. P. Havness

“जीवके अमरत्व सम्बन्धी विश्वास” नामक
पुस्तकमें “जीवन” पर विचार करते हुए
लिखता है “प्राणियोंके जीवन साधारण

* Mechanism in thought and morals by
O. W. Holmes.

† अंगरेजीके शब्द यह हैं:—“Children may smile ;
the wise will ponder.”

अग्निके सदृश हैं, एक पात्र-सहित जिसमें कुछ कोयले हैं। उपमाके विवरणमें जाकर हम “जीवन” को गर्मी और “चिंतना” को ज्वाला कहते हैं। जब अग्निका प्रज्वलित होना प्रारम्भ होता है तो हम उसकी गर्मी और ज्वाला दोनोंका बहुत थोड़ा विचार करते हैं, अग्निकी इस अवस्थाको हम बालकपनके अनुकूल पाते हैं, अग्निके तीव्र होनेपर हम ज्वाला देखते हैं जिसका तात्पर्य यह है कि वायु कोयलेमें इतनी गर्म हो गई है कि अग्नि को पकड़ने लगती है। कतिपय विरोधी हेतुओं और घटनाओंसे कोयले एकत्र होकर दब गए, अग्नि बुझ गई और ज्वालाएँ भी समाप्त हो गईं, इस अवस्थाको हम अकालमृत्यु कहते हैं, परन्तु इसप्रकारकी दुर्घटनाओंको छोड़कर साधारण अवस्थामें अग्नि उस समयतक प्रज्वलित रहेगी जबतक कोयले बाकी रहेंगे। जब कोयले समाप्त होंगे तो ज्वालाएँ भी समाप्त होजायँगी और अग्नि भी। हाँ कुछ गरम राख अवश्य बाकी रहेगी और वह भी थोड़ी देरमें ठंडी हो जायगी, इस उपमामें कोयला वायु और गर्मी मात्र, ज्वालाओंके हेतु हैं, यह आवश्यक नहीं, सम्भव है कि किसी और स्थानपर ज्वालाओंके प्रकट होनेके हेतु कुछ और भी हों, परन्तु उसके जाननेके साधन हमारे पास नहीं हैं। यह घटना कि ज्वाला कोयले और गर्मीके मेल ही से रह सकती है आनुपगिक परिवर्तन (Concomitant or Variatious) का रूप है। *

* The Belief in Personal Immortality by.
E. S. P. Harness p. 60 and 61.

डॉक्टर टैगार्ट
Dr. M. C. Taggart

केम्ब्रिजका दार्शनिक, आत्माके अमरत्व को स्वीकार करता है। उसने अमरत्वके त्रिशंभियोंको उत्तर देनेके लिए एक पुस्तक लिखी है। पुस्तकमें आत्मा और शरीरपर विचार करते हुए लिखा है कि “यदि एक आदमी एक मकानमें बन्द कर दिया जावे तो खिड़कीके शीशेकी पारदर्शिता, आवश्यक अवस्था उसके आकाश प्रदर्शनकी होगी, परन्तु इससे यदि कोई यह परिणाम निकाले कि यदि वह मकानके बाहर होता तो आकाश न दिखाई देता क्योंकि देखनेके लिए खिड़कियोंके शीशे नहीं हैं, यह बुद्धिमत्ताका परिणाम न होगा” * इस पुस्तकमें जीवके अनादित्वका भी समर्थन करनेके लिए एक अध्याय रक्खा गया है, जिसमें उसने जीवके अनेक जन्म होनेकी बात कहते हुए स्वीकार किया है कि पूर्व जन्मोंकी स्मृति आवश्यक नहीं। अनेक जन्मोंके सम्बन्धमें पुस्तक रचयिताके शब्दोंसे जो भाव निकलता है, इसप्रकार है:—परिवर्तन, † प्रयास और मृत्युकी प्रत्यावृत्ति सीमारहित है, अथवा यह हो कि यह क्रम स्वयं नष्ट होकर उस पूर्णतामें मिल जावे तो समय और परिवर्तन दोनोंको अतिक्रम करता है। इसप्रकारका अन्त सम्भव है कि आ जाये परन्तु किसी अवस्थामें भी वह समीप नहीं हो सकता”।

* Some Dogmas of Religion by Dr. M. C. Taggart p. 105.

† Do “ “ “ p. 138.

जी. लोइस डिकिंसन
J. Lowes Dickinson

डिकिंसनने एक पुस्तक “धर्म और*
अमरता” नामका लिखकर जीवकी
अमरताका समर्थन किया है। वह कहता
है कि यह कहना कि हम मृत्युके बाद बाकी नहीं रहते,
स्वमताभिमानमात्र है और साथ ही यह कहना कि मरनेके बाद
हम बाकी रहते हैं या नहीं, इसका जानना असम्भव है, और
जाननेका दावा करना दुराग्रह अथवा मूर्खता है” पुस्तकमें
बनलाया गया है कि कोई व्यक्ति इस एक जन्ममें अपने आदर्श
का प्राप्त नहीं कर सकता और अपनी शक्यताका अनुभव कर
सकता है इसलिए जीवका अमरत्वविधान अनिवार्य है।

पादरी मेकाइल मेहर
Father Michael Mehar

मे मनोंविज्ञान पर एक पुस्तक लिखी
है। पुस्तकके आरम्भमें एक अध्याय
जीवके अमरत्व विषयके लिए भी
अर्पण किया है। इस अध्यायमें उन्होंने “लुकरेटियस”
(Lucretius) और उसके शिष्योंपर यह अपवाद लगाया है
कि मृत्युके बाद प्राणीकी क्या अवस्था होगी, इस चिन्तासे
वचनेके लिए उन्होंने मृत्युके बाद फलाफल प्राप्तिकी प्रत्येक
पद्धतिसे अपनेको पृथक् रक्खा है। पादरी साहबका कथन है
कि इसप्रकारकी किसी पद्धतिके न स्वीकार करनेका फल यह
होगा कि मनुष्योंमें सदाचारका विचार व्यर्थ-सा हो जायगा।
इस कथनके बाद पुस्तकमें जीवकी स्वतन्त्र सत्ता, उसमें सादगी

* Religion and Immortality by G. L. Dickinson.

और आत्मतत्त्वका होना, प्रमाणित करते हुए, बलपूर्वक उसकी पृथक्ता प्रमाणितकी गई है। अध्यायके अन्तमें पादर साहब ने यह भी कह डाला है कि जीवको ईश्वरने उत्पन्न किया है और वही उसे नष्ट भी कर सकता है। पुस्तकके अन्तिम पृष्ठ पर यह भी बतलाया गया है कि पशुओंका जीवन प्राकृतिक शरीरमें भिन्न नहीं है अपितु शरीरपर ही निर्भर है और शरीर के नाश होनेके साथही उसका भी नाश हो जावेगा *

बरेटेंड रसल
Bertrand Russell

इंग्लैंड "दर्शनोद्देश्य" नामक पुस्तकमें लिखा है कि यह प्रश्न कि हम "आत्मसत्ता" से जो विचार और अनुभवोंसे पृथक् है, अनभिज्ञ है, बड़ा कठिन है और निश्चित रीतिसे इस विषयमें कुछ कहना बुद्धिमत्ता न होगी। जब हम आत्मतत्त्वका जाननेके लिए यत्नवान् होते हैं तो सदैव हमारे मस्तिष्कमें कोई-न-कोई विचार उठते अथवा किसी-न-किसी अनुभवकी स्मृति-जागृति हो जाती है परन्तु जिसे हम "मैं" कहते हैं उसका कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता जिसके द्वारा विचार अथवा अनुभव होते हैं। सम्भवतः आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है परन्तु निश्चित रीतिसे इस विषयमें कुछ कहना उचित नहीं है †

१८६५००

* Psychology by Michael Mehor p. 500.

† Problems of Philosophy by B. Russell
p. 78 and 80.

दूसरा परिच्छेद

योरपकी १६वीं शताब्दीका विज्ञान (साइंस)

और आत्मासम्बन्धी विचार ।

डब्ल्यू के० क्लीफोर्ड
W. K. Clifford

इसका मत है कि चेतना और उसके द्वारा जो परिवर्तन मस्तिष्कमें होते रहते हैं, उनके नियम नियत और परिमित हैं और उनके अनुकूल परिणाम अवश्यम्भावी हैं। चेतना एक मिश्रित वस्तु अणुओंके संयोगसे बनी है जिसको हम “बोधस्रोत” कहते हैं, मस्तिष्क भी एक मिश्रित वस्तु है और वह भी अणुओंके संयोगका परिणाम है जिसको हम “सन्देशतन्तुस्रोत” कहते हैं। व्यक्तिगतबोध सदैव व्यक्तिगत सन्देशतन्तुके साथ रहता है, अथवा यों कहिए “संदेशतन्तुस्रोत” के साथ रहता है। यदि सन्देशतन्तु स्रोत सूख जावे तो क्या इसका यह फल न होगा कि बोधस्रोत भी सूख जावे ? और इसप्रकार सूख जानेपर फिर बोध स्रोत चेतना को प्रकट न कर सकेगा * ।

प्रोफ़ेसर मस्टरबर्ग Professor
Musterberg

“मानसिक कार्य मस्तिष्कके कार्यों पर निर्भर है” इस वादकी स्थापनाके लिए मस्टरबर्ग लिखता है

* Prof clifford's lectures and Essays vol.
p. 247-249.

यदि बहुरक्त-प्रवाहसे मस्तिष्कके अवयव निकम्मे हो जावें तो उसका परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति अन्धा या बहरा हो जाता है। इसी प्रकारसे मस्तिष्कके निकम्मे हो जानेसे वह बुद्धि-भ्रष्ट (पागल) हो जाता है। यदि शिरपर भरी चोट लग जावे जिससे मनुष्य वेसुथ हो जावे तो उसका जीवन ही समाप्त हो जाता है। रसायनिक तत्वोंसे मस्तिष्कको प्रभावित करनेसे हमारी वृत्ति और भाव दोनों बदल जाते हैं। मनुष्यके मन और बुद्धिका पूर्ण विकास मस्तिष्ककी पूर्णताके साथ ही होता है। एक अज्ञानी पुरुषका मानसिक जीवन विकास रहित मस्तिष्कसे सम्बन्धित होता है *। एक दूसरे स्थानपर लिखा है कि वे वैज्ञानिक जो मस्तिष्कके व्यापारवादसे जीवके अमरत्व सिद्ध होनेकी आशामें उन घटनाओंका अवलम्ब ढूँढ़ते हैं जो शरीरशास्त्रसे निरूपित नहीं हो सकतीं, उसी भूमिपर है जिसपर ऐसे ज्यांतिविद् ठहरें हुए हैं, जो अपने दूरदर्शक यन्त्रोंसे ब्रह्माण्डमें ऐसी जगह खोजना चाहते हैं, जहाँ आकाश न हो। वही शून्य स्थान ईश्वर और शरीररहित अमर जीवोंके लिए हो सकता है †

अपने एक पुस्तकमें ‡ रौमेन्सने लिखा है
रोमेन्स [Romanes] कि "एडीसनके लेम्पोंमें प्रकाशको, जो दीपकसे निकल जाता है सामान्यतः कह सकते हैं कि एक

* Psychology & Physiology by Prof. Muste-
rberg p. 41

† Do. p-91

‡ Romanes. Mind. motion & Monism p.29&30

मैकिण्डमें कतिपय कम्पनोंका जो कार्बनमें उठते हैं अथवा उसके शीतोष्णका परिमाण है क्योंकि कम्पनोंका इतना मान कार्बनमें नहीं हो सकता सिवाय इसके कि उसका शीतोष्ण-मापक यन्त्र इतने दरजेका बनाया जावे जितनेसे हमारे नेत्रों तक प्रकाश पहुँचता है। इसी उदाहरणमें मस्तिष्क अथवा मनकी क्रियाओंसे एक विचार माला उत्पन्न होती है। इच्छाको उदाहरणमें आप प्रकाशकी जगह समझना चाहिए जो मनद्वारा मस्तिष्कमें उत्पन्न होती है। ठीक उसीप्रकार जैसे प्रकाश शीतोष्ण-द्वारा कार्बनसे उत्पन्न होती है। और जिसप्रकार प्रकाश फोटोग्राफीके कार्योंका हेतु होता है उसीप्रकार इच्छा शारीरिक क्रियाओंका हेतु होती है। जिसप्रकार एक विशेष प्रकारकी प्राकृतिक गति जो कार्बनमें उत्पन्न होकर फोटोग्राफीका कारण बनती है उसीप्रकार एक विशेष प्रकारकी प्राकृतिक गति जो शारीरिक क्रियाओंका हेतु होती है, बिना इच्छाके उत्पन्न नहीं हो सकती। इसका परिणाम यह है कि इच्छा यदि एक और मस्तिष्कमें एक विशेष प्रकारकी गति उत्पन्न करती है तो दूसरी ओर उसी गतिके द्वारा शारीरिक क्रियाओंका भी हेतु होती है। रोमैन्सके मतमें इच्छा ही प्रत्येक कार्यका मूल कारण है और इसी आधारपर उसका मत है कि “मनोवैज्ञानिक तत्त्व” ही प्रत्येक घटनाका निर्णायक है। वह यह भी कहता है कि मन “गतिमान् प्रकृति” से भिन्न और कुछ नहीं है।

हर्बर्ट स्पेंसर
Herbert Spencer

प्रसिद्ध अज्ञेयवादी, आत्मा और पर-
मात्मा यहां तक कि विज्ञान (साइन्स)
के मूल कारणको भी मनुष्यके लिए

अज्ञेय बतलाता है। उसका कथन है कि रूप परिणामवाद जिस प्रकार प्राकृतिक शक्तियोंमें काम करता है उसी प्रकार मानसिक शक्तियोंमें भी। रूप परिणामवाद किसप्रकार व्यवहृत होता है और किसप्रकार स्थिति शक्तियां गति, उष्णता, अथवा प्रकाश चेतनाका रूप धारण कर लेती हैं और किसप्रकार आकाशस्थ कम्पनोंके लिए यह सम्भव है कि बांध उत्पन्न करें जिसे हम ध्वनि अथवा शब्द कहते हैं, अथवा किसप्रकार रसायनिक परिवर्तनोंमें शक्तियां मस्तिष्कमें प्रकट होकर भाव उत्पन्न करती हैं ये सब गुप्त रहस्य हैं। जिसका पता लगाना असम्भव है, अवश्य प्राकृतिक शक्तियोंके रूपान्तर परिणामकी अपेक्षासे यह गहन-भेद नहीं है *।

जोज़िफ मेकेव
J. Meeabe

मेकेबने अपनी एक पुस्तकमें लिखा है † कि गतिशक्तिके आयुधागार मस्तिष्ककी त्वचा में कमसे कम ६०० मिलियन ‡ खरब

(Million) परमाणुओंके ढांचेका अनुमान किया जाता है।

परमाणुओंसे अणु अप्रकट विधिसे बनते हैं और अणुओं से इसीप्रकार गुप्त विधिसे कोष (घटक) बनते हैं। और इन कोषोंसे शरीरका ढांचा ऐसी अद्भुत रीतिसे बनता है कि यह निर्माण व्यवस्था हमको आश्चर्यके अथाह समुद्रमें डाल देती है इस शरीर मन्दिरके निर्माण अर्थात् छोटे-बड़े अवयवों

* First Principles (2nd Edition) by H. Spencer p. 217

† Evolution of mind by J. Meeabe p. 15&16

‡ एक मिलियन दस लाखका होता है।

के मिलनेके लिए एक तरल पदार्थ प्रयुक्त हुआ है, जिसके एक कणमें एक सहस्र टनकी योग्यता है, और उसमें उतनी शक्ति काममें आई है जो १० लाख घोड़ोंकी शक्ति रखनेवाले बालगृहसे ४० मिलियन वर्षोंमें उत्पन्न हो सकती है । एक ओर तो यह महान रहस्यपूर्ण कार्य, और यह हृदयहारिणी शक्तता दूसरी ओर हम अभी तक यह भी नहीं जान सके हैं कि मस्तिष्क क्या कर सकता है और क्या नहीं । परन्तु “टिंडल” (Tyndall) बार-बार कहा करता था कि “यह कहना कि हम मस्तिष्कसे मन या चित्तका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते, स्वमताभिमान मात्र है” ।

अस्तु जबतक हम मस्तिष्ककी रस क्रिया और ढाँचका कुछ अच्छा ज्ञान न प्राप्त कर लेवें हमको दोनों ओरके अभिमानपूर्ण मतोंसे पृथक् रहना चाहिए । सम्प्रति मस्तिष्क एक ऐसी तमः पूर्ण गुफा है कि उसमें व्यवच्छेदकों और शरीर विद्या के पण्डितोंके दीपक, मस्तिष्ककी गुप्त समस्याओंको सुलझाने की जगह और उलझन बढ़ा रहे हैं ।

मस्तिष्कके लिए यह कहना कि वह क्या-क्या विशेष कार्य कर सकता और क्या नहीं उस समयतक सर्वथा अयुक्त हांगा, जबतक हम उसकी निर्माण व्यवस्थाको इतना थोड़ा जानते रहेंगे जितना कि इस समय जानते हैं । हम मस्तिष्क और चित्तके कार्योंके अर्थवैयरीत्यका ही, उनको भिन्न-भिन्न समझकर, विवरण

* वैज्ञानिक संसारकी गणितमें अरब और खरब छोटेमे छोटे अंक समझे जाते हैं ।

नहीं दे सकते हैं कि एक मानात्मक और दूसरा गुणात्मक है। यदि चित्त गुणात्मक ही हो तो भी गुणात्मक वस्तुओं के बहुतसे कार्य अन्तर्में मानात्मक वस्तुओं का रूप ग्रहण करते हैं, अथवा कमसे कम हल करने के लिए यह प्रश्न खुला हुआ है। ऐसी अवस्थामें (न जानते हुए भी) उन ही भिन्नता का विवरण पौराणिक कल्पनाओं से बढ़कर न होगा, जो प्रायः अप्रतिष्ठित होती हैं।

जॉन टिण्डल (John Tyndall)
१८२०—१८९३ ई०

चेतना-व्यापार पर विचार करते हुए टिण्डल का कथन* है कि वह स्रोत कोई अलौ-

किक सत्ता नहीं है, किन्तु एक अनेन्द्रियिक शक्ति है; अर्थात् टिण्डल के मतानुसार समस्त शक्ति जो वनस्पति अथवा प्राणि संसारमें है। उस सबका केन्द्र सूर्य है ... मनुष्य अथवा पौधोंमें कोई उत्पादक शक्ति (जीव) नहीं है। समस्त शक्ति जो मनुष्य और पशुओं के अवयवोंमें पाई जाती या उनसे प्राप्त की जाता है अथवा वह शक्ति जो काष्ठ अथवा कोइले के जलाने से प्राप्त होती है; उसके उत्पन्न होने का वास्तविक साधन सूर्य ही है। कुछेक अंश तक सूर्य के ठण्डा होने का विवरण देते हुए टिण्डल सौर्य शक्तिका विवरण इस प्रकार देता है, कि प्रकाश और गर्मी की शक्ति अपने को इस रूपमें प्रस्तुत करती हैं कि उस नवीन शक्तिको यान्त्रिक शक्ति से सर्वथा भिन्न वस्तु कहा

जा सकता है परन्तु ये दोनों शक्ति स्वतन्त्र हैं एक दूसरेसे नहीं प्राप्त की जातीं। साधारण काष्ठका “शीतोष्ण” जलती हुई अग्नि तक पहुँचाया जा सकता है। एक चतुर लुहार लोहको पीटकर उसमें अग्निकी चमक पैदाकर देता है, इसप्रकार वह अपने स्थूल यन्त्र हथोड़े ही से प्रकाश और गर्मी दोनों पैदा कर देता है। यह साधन यदि उन्नत अवस्थामें पहुँचाया जावे तो उससे सूर्यका प्रकाश और गर्मी उत्पन्न हो सकती है इसप्रकार जब प्रकाश और गर्मी जड़ प्रकृतिके माध्यमसे उत्पन्न हो सकते हैं, तो इस प्रकार उत्पन्न हुए प्रकाश और गर्मीसे जीवन शक्ति भी उत्पन्न हो सकती है, जिसका आधार, मानना पड़ेगा, कि यान्त्रिक कार्य ही है... सूक्ष्म रासायनिक कार्यसे सूर्यके द्वारा ही पौधोंकी उत्पत्ति होती है। मनुष्य और पशुओंके जीवनोत्पत्तिके लिए जो सूक्ष्म रासायनिक कार्य होते हैं वे कुछ गूढ़ हैं।

हम बनस्पति खाते हैं और ऑक्सिजनको श्वास-द्वारा अपने भीतर भेजते हैं। हमारे शरीरमें ऑक्सिजनके प्रवेशसे जिसे सूर्य ही ने कार्बन और हाइड्रोजनमें पृथक् किया था, वह गर्मी पैदा होती है जिसे “जीवनोष्णता” कहते हैं और जिससे प्राणियों के आकार विकसित होते हैं। आणविक शक्ति भिन्न-भिन्न आकारोंको बनाती है। यह शक्तिभी सूर्य ही से आती है कार्बन और ऑक्सिजनको पृथक् करते हुए यह शक्ति कुछ इस प्रकारकी हो जाती है कि एक मूरतमें गोभीका पौधा पैदा करदेती है, तो दूसरीमें बाँझका पेंड़। इसके विपरीत कार्बन और ऑक्सिजनके पुनः संघातकी कार्य्य प्रणालीसे वही शक्ति एक मूरतमें मेढकका और

दूसरीमें मनुष्यके शरीरका आकार बना देती है। पशु और मनुष्य शरीरके निर्माणमें जो प्रकृति व्यय होती है वह जड़ है। इन शरीरोंका कोई ऐसा अंश नहीं है जो प्रारम्भमें चट्टानों, जल और वायुसे न लिया गया हो। इन्हीं वस्तुओंमें भिन्न-भिन्न परिवर्तन होकर शरीरके समस्त चेतन और अचेतन भाग बन जाते हैं। इसप्रकार उसके मतमें जीवात्माकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। परन्तु अन्तमें उसे स्वीकार करना पड़ा कि इस बातको उदारतासे स्वीकार कर लेना चाहिए कि इस समयतक रसायनवेत्ता कोई ऐसा परीक्षण नहीं कर सके हैं कि जिससे जीवन शक्तिकी उत्पत्ति प्रमाणित होती हो।

‘हक्सलेने अपने जगत प्रसिद्ध व्याख्यान थामस हेनरी हक्सले “जीवनके प्राकृतिक आधार” में जो Thoms Henry Huxly उसने १८८६ ई० में दिया था ‘कललरस’ की बनावटपर विचार करते हुए लिखा है कि समस्त प्रकारके कललरसोंमें, जो अबतक जांच गए हैं, चार मूल तत्व कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन और नाइट्रोजन पाए जाते हैं। उनका सम्मेलन अत्यन्त गूढ़ है। इसी कारण इस संयोगके सम्बन्धमें यह निश्चित नहीं हो सका है कि किस-किस मात्रामें कौन वस्तु इसमें सम्मिलित है। इसी संयोगका “प्रोटीन” नाम भी दिया है। परन्तु ठीक रीतिसे हम नहीं जानते कि प्रोटीन किन-किन वस्तुओंके संयोगसे किस प्रकार बना है। कललरस यद्यपि बनस्पति और प्राणियोंके शरीर दोनोंमें पाया जाता है, परन्तु दोनोंमें एक विलक्षण अन्तर देखा जाता है कि बनस्पति तो कललरस खनिज वस्तुओंके मिश्रित रूपोंसे स्वयं बना लेती

है, परन्तु प्राणियोंमें यह योग्यता नहीं है। वे कललरसके लिए वनस्पतिशोपर निर्भर रहते हैं। दोनोंमें यह अन्तर क्या है, यह भी अभी तक अज्ञात है। उसने फिर लिखा है कि उपर्युक्त चारों मूल भूत निर्जीव हैं। इनमेंसे सब कार्बन और ऑक्सिजन विशेष मात्रा और अवस्थामें मिलते हैं, तो कार्बोनिक एसिड उत्पन्न करते हैं। ऑक्सिजन और हाइड्रोजनसे जल बनता है, और नाइट्रोजन और कुछ अन्य * मूल भूत जब मिलते हैं तो नाइट्रोजिन्स सॉल्ट† पैदा करते हैं। ये तीनों मिश्रित वस्तुएँ व किसी विशेष ‡ रीतिसे मिलते हैं जो अपनेसे भी अधिक दुर्बोध वस्तु कललरसको पैदा करते हैं। और इसी रससे जीवनके दृश्य प्रकट होते हैं। वह इसी व्याख्यानके एक दूसरे भागमें कहता है कि यदि कार्बोनिक एसिड, जल और नाइट्रोजिन्स सॉल्टको पृथक् करके उनके स्थानमें उस कललरसको सममात्रामें ले-ले, जो प्रथमसे वर्तमान कललरसके प्रभावसे प्रभावित हो, तो क्या स्थितिमें कुछ भेद § पड़ जायगा ? §

* सारे व्याख्यानमें इस अन्य मूल भूतका पता हक्सलेने नहीं दिया, बिना इस मूल भूतके बतलाए, कललरसके लिए भी, यह नहीं कल्पना की जा सकती कि उसके समस्त मूल भूतोंको हक्सले जानता था, चेतनाका ज्ञान तो दूरकी बात थी।

† वह विशेष रीति भी हक्सलेको अन्त तक नहीं मालूम हुई।

‡ अवश्य पड़ जायगा, यदि अन्तर न पड़ेगा तो प्रथमसे वर्तमान कललरसके प्रभावसे प्रभावित (under the influence of preexisting living protoplasm) के अर्थही क्या हुए।
§ Lectures and Essays by T.H. Huxley p 47, 53.

हक्सलेने एक और पुस्तक “पशुओंके वर्गीकरण” नामक भूमिकामें लिखा है * “न पाशविक जगत्में ऐसा अन्य वर्ग है जो अधिक प्रशंसनीय रीतिसे इस उत्तमतया स्थापित वादको कि “जीवन शरीर रचनाका “हेतु है परिणाम नहीं” + और जिसे जॉन हंटरने बहुधा समर्थन किया है, स्पष्ट करता हो, क्योंकि तुच्छ कोटिके जन्तुओंमें शरीर रचनाके नाम योग, नाममात्रको भी कोई बात, नवीन आविष्कृत यन्त्रोंकी सहायता पूर्वक खुरद्वीनोंके द्वारा देखनेसे भी प्रकट नहीं हुई है ..यह आकार और इन्द्रियशून्य जन्तु है, जिनके शरीरके अवयव भी परिमित रूपसे नहीं विभक्त हैं, तो भी उनमें आवश्यक लक्षण और गुण चेतनाके पाए जाते हैं’ ।

डार्विनके सिद्धान्त ।

अपने ग्रहण सिद्धान्तके आधारपर डार्विनने निम्न बातें निर्धारित की हैं:—

(१) एकही यानिके जीवोंकी अन्तः प्रकृतियोंमें भी कुछ-न-कुछ व्यक्तिगत विभिन्नता होती है और “स्थिति सामञ्जस्य” के नियमानुसार उनमें भी ठीक उसीप्रकार फेरफार हो जाता है । जिस प्रकार शरीरके अवयवोंमें ।

*Classification of animals by T. H. Huxley
page 10.

† अंग्रेजीका वाक्य इसप्रकार है “Life is the cause and not the consequence of organisation ”

(२) इस परिवर्तनसे जो विशेषताएँ (स्वभाव परिवर्तनके कारण) उत्पन्न हो जाती हैं, वे आगे होनेवाली सन्ततियों भी अंशतः प्राप्त होती हैं और इस प्रकार वंशपरम्परा क्रमसे उत्तरोत्तर अधिक प्रवर्द्धित रूप प्राप्त करती जाती हैं ।

(३) ग्रहण धर्मके अनुसार मनोवृत्तिकी जो-जो विशेषताएँ सबसे अधिक उपयोगी होती हैं, वे रक्षित रहती हैं जो स्थितिके अनुकूल न होनेके कारण उपयोगमें नहीं आती, नष्ट हो जाती हैं ।

(४) इस रीतिसे मनोवृत्तिकी जो अनेक विभिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती हैं उनसे अनेक पीढ़ियोंके पीछे उसी प्रकार नई-नई अन्तः प्रवृत्तियोंकी सृष्टि होती है, जिस प्रकार अवयवोंके भेदसे नए आकारके जीवोंकी । प्रवृत्ति दो प्रकारकी होती है (१) मूल (२) उत्तर ।

मूल प्रवृत्तियाँ वे हैं जो अचेतन क्षांभके रूपमें मनोरसमें जाव की आदिम अवस्थाहीसे रहती हैं । विशेषकर आत्मरक्षा वंशरक्षा (प्रसव और शिशुपालन) की प्रवृत्ति । सजीव द्रव्यकी ये दोनों प्रवृत्तियाँ क्षुधा और प्रीति (समागमकी वासना) सर्वथा अज्ञानकी दशामें उत्पन्न होती हैं, बुद्धिका इनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता । उत्तर प्रवृत्तियोंका क्रम और है, आरम्भमें तो ये बुद्धिके उपयोग-द्वारा विचार और संकल्प-द्वारा ज्ञानकृत उद्दिष्टकर्म-द्वारा उत्पन्न हुई, पर पीछे धीरे-धीरे वे इतनी मँज गई कि अज्ञानकी दशामें भी प्रकट होने लगी । यहां तक कि परम्पराके विधानसे वे आगे की पीढ़ियोंमें स्वभाव सिद्ध-सी हो गईं ।

उन्नत जीवोंकी अज्ञानकृत क्रियाएँ जो शरीर धर्म कहलाती

हैं (पतक मारना आदि) पूर्वज जीवोंमें ज्ञानकृत थीं, पर पीछे स्वभाव सिद्ध प्रवृत्तियोंमें दाम्बिल हो गईं ।

हैकलका मत

शरीर और जीव दोनोंका आकृतिक आधार कललग्रस है । यह एक चिपचिपा और कुछ दानेदार पदार्थ है । समस्त प्राणियोंके सूक्ष्म घटक इसीके होते हैं ; यह चार मूल द्रव्योंका मिश्रण है :—

(१) नाइट्रोजन, (२) ऑक्सिजन, (३) हाइड्रोजन (४) कार्बन । इनके सिवाय जल और लवणका भी इसमें मेल होता है ।

प्राणियोंके समस्त अवयव त्वचा, मांस, हड्डी, बाल, सींग नाखून, दांत, मांसपेशी और धमनियां इत्यादि, इसी कललग्रस से बनी हैं । प्राणियोंके जीवनके आधार भूत द्रव्यको मनोरस कहते हैं । यह कललग्रस निर्मित अवयवोंका समुदाय मात्र है । “रासायनिक विश्लेषणसे इनके दो भाग होते हैं, जिनसे वह बना है (१) अण्डसार रस, (२) अंगारक । अण्डसार रस भी एक गाढ़ा चिपचिपा पदार्थ है, जो अण्डोंकी जर्दी और जीवोंके रक्त आदिमें रहता है, और ऑक्सिजन कार्बन, नाइट्रोजन, और हाइड्रोजन और कुछ गन्धकके मेलसे बना होता है । समस्त चेतन व्यापारोंका मूल यही मनोरस है ।

सबसे पहले पुरुष और स्त्री घटक (वीर्य प्राणियोंका शरीर निर्माण और रजके अणु) अपने केन्द्रों सहित मिल कर एक हो जाते हैं । गर्भाशयके भीतर बहुतसे झुट्ट कीटाणु गर्भाणु (स्त्री घटक) को घेरते हैं, पर केवल एक ही उसके भीतर केन्द्र तक घुसता है । घुसनेपर दोनोंके केन्द्र एक अद्भुत शक्ति

द्वारा, जिसे घ्राणसे मिलती-जुलती एक प्रकारकी रासायनिक प्रकृति समझना चाहिए, एक दूसरेकी ओर वेगसे आकर्षित होकर मिल जाते हैं। इसप्रकार पुरुष और स्त्रीके सम्बेदनात्मक अनुभव-द्वारा, जो एक रासायनिक प्रेमाकर्षणके अनुसार होता है, एक नवीन “अंकुर घटक” उत्पन्न हो जाता है जिसमें माता-पिता दोनोंके गुणोंका समावेश होता है।

इस अंकुर (मूल) घटकोंके उत्तरोत्तर विभाग-द्वारा बीज कलाओंकी रचना, द्विकलघटकी उत्पत्ति तथा और-और अङ्गोंका विधान होता है। और इसप्रकार भ्रूणपिंड क्रमशः बढ़ते-बढ़ते बालकके रूपमें पहुँच जाता है।

बालक गर्भान्तर्गत पूर्ण अवयवोंका प्राप्त कर लेनेपर भी चेतना रहित ही रहता है। बल्कि उत्पन्न होनेके बाद जबतक बालक बोलने नहीं लगता उस समयतक भी उसमें चेतना नहीं होती। “प्रेयर” (Preyer) के मतानुसार चेतनाका विकास उसमें उस समय होता है, जब वह बोलने लगता है।

जीवनके आरम्भमें प्रत्येक प्राणी एक अत्यन्त चेतनाका विकासक्रम सृक्ष्म घटकोंके रूपमें होता है। फिर दो (पुरुष-स्त्री) घटकोंके मेलसे अंकुर घटककी उत्पत्ति होती है। (जैसा ऊपर कहा जा चुका है) दोनों बीजघटकोंमेंसे प्रत्येकमें एक घटकात्मा होती है, अर्थात् दोनोंमें एक विशेष रूपकी सम्बेदना और गति होती है।

गर्भके विधानके समय दोनों घटकोंके कललरस और बीज (केन्द्र) ही मिल कर एक नहीं हो जाते, बल्कि उनकी घटकात्माएँ भी परस्पर मिल जाती हैं, अर्थात् दोनोंमें जो निहित

या अव्यक्त गति शक्तियां होती हैं, वे भी एक जीवन शक्तिकी योजनाके लिए मिलकर एक हो जाना हैं। अंकुरघटककी वह नवयोजित शक्ति ही बीजात्मा है।

अतः प्रत्येक मनुष्यके शारीरिक और मानसिक गुण माता-पितासे ही प्राप्त होते हैं। वंश क्रमानुसार माताके गुणोंका कुछ अंश गर्भाण्ड-द्वारा और पिताके गुणोंका कुछ अंश श्रुद्र कीटाणु-द्वारा प्राप्त होता है।

सम्पूर्ण मनोव्यापार कलरसमें होनेवाले परिवर्तनोंके अनुसार होते हैं। कलरसके उस अंशका नाम, जो मनो व्यापारोंका आधारस्वरूप प्रतीत होता है, मनोरस है, जैसा ऊपर कहा गया है। उस (मनोरस) की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। आत्मा या मनको हम कलरसमें हुए अन्तर्व्यापारोंकी समष्टि मात्र समझते हैं। उसी समष्टिको मनोरस कहते हैं। आत्मा अथवा मनोरसकी क्रियाएँ शरीरके द्रव्य वैकृत्य धर्मसे सम्बद्ध हैं।

जीवात्माका कार्य, मनोरसकी कुछेक रासायनिक योजना और कुछेक भौतिक क्रिया हुए बिना नहीं हो सकता।

समस्त जीव सम्वेदनग्राही हैं और अपने चारों ओर सम्वेदन स्थित पदार्थोंका प्रभाव ग्रहण करते हैं और शरीरकी स्थितिके कुछ परिवर्तनों-द्वारा उन पदार्थोंपर भी प्रभाव डालते हैं।

प्रकाश, ताप, आकर्षण विद्युदाकर्षक, रासायनिक क्रियाएँ और भौतिक व्यापार सबके सब सम्वेदनात्मक मनोरसमें क्षोभ या उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। मनोरसके सम्वेदनकी क्रमशः अवस्थाएँ हैं: --

(१) जीवन विधानकी प्रारम्भिक अवस्थामें समस्त मनोरस सम्वेदनग्राही होती है और बाहर स्थित पदार्थोंसे उत्तेजना ग्रहण करके कार्य करता है । क्षुद्रकोटिके जीव और पौधे इसी अवस्थामें रहते हैं ।

(२) दूसरी अवस्थामें शरीरपर विषय विवेक रहित इन्द्रियों के पूर्वरूप कललरसके सुतड़ों और इन्द्रियोंके रूपमें प्रकट होते हैं । ये चक्षु और स्पर्शेन्द्रियके पूर्वरूप होते हैं जो उन्नत अणुजीव और क्षुद्र जन्तुओं और पौधोंमें पाए जाते हैं ।

(३) इन्हीं मूल विधानोंसे विभक्त हो कर इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं ।

(४) चौथी अवस्थामें समस्त सम्वेदना विधानों (इन्द्रिय व्यापारां) का एक स्थानपर समाहार होता है । इस समाहार से अचेतन अन्तः संस्कार उत्पन्न अर्थात् इन्द्रिय सम्वेदनके स्वरूप अंकित होते हैं ।

(५) अंकित इन्द्रिय सम्वेदनाका प्रतिबिम्ब सम्वेदना मूल जालके केन्द्र स्थलमें पड़ता है, जिससे अन्तः साक्ष्य या स्वान्तर्वृत्ति बोध उत्पन्न होता है, जो मनुष्यों और उच्चकोटिके पशुओं में पाया जाता है ।

समस्त जीवोंमें एक 'स्वतः प्रवृत्ति गति' होती है । सजीव मनोरसमें कुछ ऐसे आन्तरिक कारण होते हैं, जिनसे उसके अणु अपना स्थान बदलते हैं । ये कारण अपनी सत्ता मनोरसके रासायनिक संयोग ही में रखते हैं । मनोरसकी स्वतः प्रवृत्ति गतियोंका कुछ तो ज्ञान परीक्षणोंसे हुआ है, और कुछ गतियाँ उनके कार्योंका देखकर समझी गई हैं ।

ये स्वतः प्रवृत्ति गति ५ अवस्थाओंमें पाई जाती है ।

(१) भुद्र जीवोंकी प्रारम्भिक अवस्थामें वह गति अंगवृद्धि की अवस्थामें पाई जाती हैं ।

इस गतिको हम परीक्षणों-द्वारा जान नहीं सकते, किन्तु उसके फल अंग वृद्धिको देखकर केवल उसका अनुमान कर सकते हैं ।

(२) बहुतसे उद्भिदाकार सूक्ष्म जन्तु आगेकी ओर एक लसीला पदार्थ निकालकर शरीर ठेलते हुए रेंगते या तैरते हैं ।

(३) बहुतसे भुद्र समुद्रीय अणु जीव कभी घटकस्थ वायुको निकाल कर और कभी तरलाकर्षक शक्तिके द्वारा अपने गुरुत्व में अन्तर डालकर पानीमें नीचे जाते या ऊपर उठते हैं ।

(४) बहुत कालमें पौधे, जैसे लज्जालु (छुई-मुई), अपने शरीरके बनावमें फेरफार डाल कर पत्तियों तथा और अवयवों को हिलाते हैं ।

(५) आकुञ्चनगति-सजीव पदार्थोंके बाहरी अवयवोंकी स्थितिमें जो अन्तर पड़ता है, वह शरीरस्थ द्रव्योंके आकुञ्चन और प्रसारणके द्वारा पड़ा करता है । यह आकुञ्चनात्मक गति चार प्रकार की देखी जाती है:—

(क) जलमें रहनेवाले अस्थिराकृत अणुजीवोंकी-सी गति ।

(ख) घटकोंके भीतर कललरसकी वैसीही गति ।

(ग) रोई या सुतड़ेवाले अणुजीवों, शुक्रकीटाणुओंकी कुटिल गति ।

(घ) मांसपेशियोंके सञ्चालनकी गति जो अधिकतर प्राणियोंमें देखी जाती है:—

जीवन, सम्बेदन और गति (जिनका ऊपर प्रतिक्रिया वर्णन हुआ है) से पैदा हो जाता है। सम्बेदन और गतिके संयोगसे जो मूल या आदिम मनोव्यापार उत्पन्न होता है उसे प्रतिक्रिया कहते हैं।

प्रतिक्रियाकी ७ अवस्थाएँ देखी जाती हैं:—

(१) क्षुद्र अणुजीवोंमें बाह्य जगत्की उत्तेजना (पाप, प्रकाश, विद्युत् आदि) से केवल वह गति उत्पन्न होती है, जिसे अङ्गवृद्धि और पोषण कहते हैं:—

(२) डोलने फिरनेवाले अणुजीवोंमें बाहरकी उत्तेजना शरीरतलके प्रत्येक स्थानपर गति पैदा करती है, जिससे आकृति बदलती रहती हैं।

(३) उन्नत कोटिके अणुजीवोंमें दो अत्यन्त सादे अवयव, एक स्पर्शेन्द्रिय, दूसरी गतिकी इन्द्रिय देखी है। ये दोनों इन्द्रिय कललरसके बाहर निकले हुए अंकुरमात्र हैं।

स्पर्शेन्द्रियपर पड़ी हुई उत्तेजना घटकस्थ मनोरस-द्वारा गति की इन्द्रिय तक पहुँचती है और उसे आकुञ्चित करती है।

(४) मूँगे आदि अनेक घटक जीवोंका प्रत्येक सम्बेदन सूत्रात्मक और पेशीतन्तुयुक्त घटक, प्रतिक्रियाका एक-एक कारण है। इसके ऊपर एक मर्मस्थल और भीतर एक मर्मस्थल और भीतर एक गत्यात्मक पेशीतन्तु है मर्मस्थल छूतेही पेशीतन्तु सिकुड़ जाती है।

(५) समुद्रमें तैरनेवाले कीटोंमें बाहर सम्बेदनाघटक और चमड़ेके भीतर पेशीघटक होते हैं। इनके बीचमें मिलाने-

वाला एक मनोरस निर्मित सूत्र है, जो घटकसे दूसरे तक उत्तेजना पहुंचाता है ।

(६) बिना रीढ़वाले जन्तुओंमें दो-दोकी जगह तीन-तीन घटक मिलते हैं । तीसरा स्वतन्त्र घटक सम्बन्ध कारक सूत्रके स्थानमें है, उसे मनोघटक या सम्वेदन ग्रन्थि घटक कहते हैं । इसीके साथ अचेतन अतः संस्कार उस घटक ही में पैदा होते हैं । उत्तेजना सम्वेदनाग्राही घटकसे मध्यस्थ मनोघटकमें होकर पेशी घटकमें पहुँचती है, जहाँसे कियोत्पादक पेशी घटकमें पहुंचकर गतिको प्रेरणा करती है ।

(७) रीढ़वाले जन्तुओंमें तीनके स्थानमें चतुर्घटकात्मक करण पाया जाता है सम्वेदन घटक और कियोत्पादक घटक मिलते हैं बाहरी उत्तेजना पहले सम्वेदनाग्राही मनोघटक फिर संकल्पात्मक घटक और फिर अन्तमें आकुंचन शील पेशी घटक में जाकर गति उत्पन्न करती है । ऐसे अनेक चतुर्घटात्मक करण और नए-नए मनोघटकोंके संयोगसे जटिल चेतन अन्तःकरण पैदा होता है ।

प्रति क्रियाके उपर्युक्त विवरणोंसे स्पष्ट हो गया कि वही आदिम मनोव्यापार है । प्रति क्रिया चेतनाका अभाव होता है । उत्तेजना पहुँचनेसे (बारूदके सदृश) गति उत्पन्न हो जाती है । चेतना केवल मनुष्य और उन्नत जीवोंमें मानी जा सकती है, उद्भिदों और क्षुद्र जीवोंमें नहीं । उद्भिदों और क्षुद्र जीवोंमें उत्तेजना पाकर जो गति उत्पन्न होती है, वह प्रतिक्रियामात्र है, अर्थात् संकल्पित अथवा अन्तःकरणकी प्रेरित क्रिया नहीं है ।

इन्द्रियोंकी क्रियासे प्राप्त बाह्य विषयका
अन्तःसंस्करण जो प्रतिरूप भीतर अंकित होता है, उसे
अन्तःसंस्कार या भावना कहते हैं। अन्तःसंस्कार चार रूपमें
देखा जाता है:—

(१) घटकगत अन्तःसंस्कार क्षुद्र एक घटक अणु जीवोंमें
अन्तःसंस्कार समस्त मनोरमका सामान्य गुण होता है।

एक प्रकारके अत्यन्त सूक्ष्मगोल सामुद्रिक अणु जीव कहते हैं
जिनके ऊपर आवरणके रूपमें एक पतली चित्र विचित्र खोपड़ी
होती है। इस खोपड़ीकी चित्रकारी सबमें एक-सी नहीं होती
भिन्न-भिन्न होती है। खोपड़ीकी रचना और चित्रकारीके विचार
से इस जीवके हजारों उपभेद दिखाई पड़ते हैं किसी एक विशेष
चित्रकारीवाले जीवसे विभाग-द्वारा जो दूसरे एक घटक जीव
उत्पन्न होते हैं उनमें भी चित्रकारी बनी मिलती है। इसका
कारण केवल यही बतलाया जा सकता है कि निर्माणकर्ता
कललरसमें अन्तःसंस्कारकी वृत्ति होती है और परत्व, अपरत्व
संस्कार और उसके पुनरुद्भावकी शक्ति होती है।

समूह पिंड बनाकर रहनेवाला एक
(२) तंतुजालगत अन्तःसंस्कार घटक अणु जीवों और स्पंज आदि
सम्बेदन सूत्र रहित क्षुद्र अनेक घटक जीवों तथा पौधोंके तन्तु
जालमें हमें अन्तःसंस्कारकी दूसरी श्रेणी मिलती है। इसमें
बहुतसे परस्पर सम्बद्ध घटकोंका सामान्य मनोव्यापार देखा
जाता है। इन जीवोंमें किसी एक इन्द्रियोंके उत्तेजनसे प्रति
क्रिया मात्र उत्पन्न होकर नहीं रह जाती, बल्कि तन्तु घटकोंके
मनोरसमें संस्कार भी अंकित होते हैं।

(३) सम्बेदन सूत्र ग्रंथिगत अचतन अन्तःसंस्कारः—यह उन्नत कोटिका अन्तःसंस्कार अनेक छोटे जन्तुओंमें देखा जाता है। इसका व्यापार मनोघटक ही में होता है। यह उन्हींमें प्रकट होता है जिनसे प्रति क्रियाके लिए त्रिघटात्मक करणका विकास होता है। अन्तःकरणका स्थान संवेदनाघटक और पेशीघटकके बीचका ‘मध्यस्थघटक’ होता है।

(४) मस्तिष्कघटक गत चेतन अन्तःसंस्कार।

उन्नत जीवोंमें अन्तर्बोध या चेतना मिलने लगती है। वह सम्बेदनके मध्य भागमें एक विशिष्ट करणकी विशेष वृत्ति है। उन्नत जीवोंमें अन्तःसंस्कार चेतना होते हैं; अर्थात् उनका बोध भीतर होता है। इस अन्तर्बोधके साथ-साथ ही चेतन अन्तःसंस्कारकी योजनाके लिए मस्तिष्कके विशेष-विशेष अवश्य स्फुरती होती हैं, तब अन्तःसंस्कार उन वृत्तियों या व्यापारोंके योग्य हो जाता है, जिन्हें विचार बुद्धि और तर्क कहते हैं।

स्मृति अन्तःसंस्कारोंसे सम्बद्ध है, जिसपर सारे उन्नत स्मृति मनोव्यापार अवलम्बित हैं। बाह्य विषयोंके इन्द्रियोंपर जो प्रभाव पड़ते हैं, वे मनोरसमें अन्तःसंस्कारके रूपमें जाकर ठहर जाते हैं और स्मृति-द्वारा पुनरुद्भूत होते हैं।

अन्तःसंस्कारोंकी श्रेणियोंके अनुसार स्मृतिके विकासके भी चार दर्जे हैं।

(१) घटक गत स्मृति। स्मृति संजीवन द्रव्यका एक सामान्य गुण है” इवैल्ड हेर्निग (Ewald Hornig) ने ३० वर्ष हुए यह महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रकट किया था। इसीको मैंने

विकासवादके अनुसार सिद्ध किया है और दिखलाया है कि “अचेतन स्मृति कललणुकी एक सामान्य और व्यापक वृत्ति है। क्रियावान् कललरसके इन मूल कललाणुओं ही में पुनरुद्भूति होती है: अर्थात् इन्हींमें स्मृति शक्ति आदि रूपमें रहती है। निर्जीव द्रव्य अणुओंमें नहीं, यही सजीव और निर्जीव सृष्टिमें अन्तर है। वंशपरम्परा ही कललाणुकी धारणा या स्मृति है। एक घटक अणुजीवोंकी आदिम स्मृति उन कललाणुओंकी अणुआत्मक स्मृतिके योगसे बनी है जिनके मेलसे उनका एक घटकात्मक शरीर बना है। एक अणु जीवकी जो विशेषताएँ हांती हैं, वे उनसे उत्पन्न दूसरे अणुजीवोंमें रक्षित रहती हैं। यही ऐसे जीवोंकी स्मृति है।

(२) तन्तुगत स्मृति घटकोंके समान घटकजालमें भी अचेतन स्मृति पाई जाती है उसके उदाहरण क्षुद्र जन्तुओंके व्यक्तिगत शरीर और वृक्षोंके पितृ परम्परामें पाए जाते हैं।

(३) उन्नत जीवोंकी चेतनारहित स्मृति है, जिनमें सम्बेदन सूत्रजाल रहते हैं। यह अचेत स्मृति उन अचेतन अन्तःसंस्कारों की पुनरुद्भावना है, जो कुछेक सम्बेदनसूत्र श्रेणियोंमें सञ्चित हांते जाते हैं।

(४) चेतन स्मृतिका व्यापार मनुष्यादि उन्नत प्राणियोंके कुछेक मस्तिष्क घटकोंमें होता है। वह व्यापार अन्तःसंस्कारों का प्रतिबिम्ब पड़नेसे होता है। क्षुद्र पूर्वज जन्तुओंमें स्मृतिके जो व्यापार अचेतन रहते हैं, वे ही उन्नत अन्तःकरणवाले जीवों में चेतन हो जाते हैं।

अन्तः संस्कारोंकी
शृङ्खला या भाव-
योजना

यह आदिरूपमें अचेतन रहती हैं, और
“प्रवृत्ति” कहलाती हैं; फिर क्रमशः उन्नत
जीवोंमें चेतन होकर बुद्धि कही जाती है।
जिस हिसाबसे अधिकाधिक अन्तःसंस्कारों

की योजना होती है, और जिसप्रकार ‘शुद्ध बुद्धिकी विवेचना’
से यह योजना व्यवस्थित होती जाती है, उसी हिसाबसे अन्तः-
करणकी वृत्ति पूर्णताको पहुँच जाती है। स्वप्नमें इस विवेचना
के न रहनेसे पुनरुद्भूत संस्कारोंकी जो योजना होती है उससे
अलौकिक दृश्य दिखलाई देते हैं। यही अव्यवस्था विकल्पित
रचना इन्द्रजाल, भूत, मृतपुरुषोंकी आत्माओंका साक्षात्कार,
इलहाम आदि अनेक सन्धपरम्पराओंका कारण है।

वाणीकी योजना भी न्यूनाधिक क्रमसे सभी जीवोंमें
भाषा पाई जाती है। यह नहीं है कि एकमात्र मनुष्य ही को
प्राप्त हो। यह पूर्ण रूपसे सिद्ध हो गया है कि भिन्न-
भिन्न मनुष्य जातियोंकी जितनी समृद्ध भाषाएँ हैं, सबकी सब
सीधी-सादी, कुछेक आदिम भाषाओंसे धीरे-धीरे उन्नति करती
हुई बनी हैं।

अन्तःकरणके व्यापार
कहलाते हैं, मस्तिष्कके व्यापारों और
शरीरके दूसरे व्यापारों, जैसे हृदयकी धड़कन, इन्द्रियोंके
क्षोभ और पेशियोंकी गतिके बीचका सम्बन्ध, अच्छी तरह

* हैकलकी कल्पनाएँ भी इसी अव्यवस्थाका परिणाम प्रतीत
होती हैं। (ग्रन्थकार)

स्पष्ट हो जाता है। समस्त उद्वेग, इन्द्रिय सम्बेदन और गति इन्हीं दो मूल व्यापारोंके योगसे प्रतिक्रिया और अन्तःसंस्कारों-द्वारा बने हैं।

राग और द्वेषका अनुभव इन्द्रिय सम्बेदनके अन्तर्गत और उनकी प्राप्ति और अप्राप्तिका उद्योग गतिके अन्तर्भूत हैं।

“आकर्षण” और “विसर्जन” इन्हीं दोनों क्रियाओंके द्वारा “संकल्प” की सृष्टि होती है जो व्यक्तिका प्रधान लक्षण है।

मनोयोग भी विस्तार मात्र है।

संकल्प मनोरसका एक व्यापक गुण है। जिन जीवों संकल्प में प्रतिक्रियाका त्रिघटात्मक करण अर्थात् सम्बेदना ग्राहक घटक और क्रियात्पादक घटकके बीचमें एक तीसरे मनोघटककी स्थापना होती है उन्हींमें संकल्प नामक व्यापार देखा जाता है। क्षुद्र जीवोंमें यह संकल्प अचेतना रूपमें रहता है। जिन जीवोंमें चेतना होती है अर्थात् इन्द्रियोंकी क्रियाका प्रतिबिम्ब अन्तःकरणमें पड़ता है उन्हींमें संकल्प उस कोटिका देखा जाता है जिसमें स्वतन्त्रताका आभास जान पड़ता है।

मनुष्यादि समस्त जीवोंके मनोव्यापार एक मान-मनोव्यापार सिक यन्त्र या करणके द्वारा होते हैं। इस यन्त्रके तीन मुख्य विभाग हैं:—

(१) बाह्यकरण या इन्द्रियां जिनसे सम्बेदन होता है।

(२) पेशियां जिनसे गति होती है।

(३) सम्बेदन सूत्र जो इन दोनोंके बीच मस्तिष्क रूपी प्रधान करणके द्वारा सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

मनोव्यापारके साधनके इस भीतरी (मानसिक) यन्त्रकी उपमा तारसे दी जाया करती है। सम्बेदन सूत्रतार हैं। इन्द्रियां छोटे स्टेशन हैं। मस्तिष्क मंदर स्टेशन है। गतिवाहक सूत्र संकल्पके आदेशको केन्द्र या मस्तिष्कसे बहिर्मुख गति-द्वारा पेशियों तक पहुँचाते हैं, जिनके आकुञ्चनसे अङ्गोंमें गति होती है। सम्बेदन वाहक सूत्र इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त सम्बेदनोंको अन्तर्मुख गतिसे मस्तिष्कमें पहुँचाते हैं।

मस्तिष्क या अन्तःकरण रूपी मनोव्यापार केन्द्र ग्रन्थिमय होता है। इन सूत्र ग्रन्थियोंके घटक सजीव द्रव्यके सबसे समुन्नत अंश हैं। इनके द्वारा इन्द्रियों और पेशियोंके बीच व्यापार सम्बन्ध चलता ही है। इसके सिवाय भाव ग्रहण, बाध और विवेचन आदि अनेक मनोव्यापार भी होते हैं।

सम्बेदन सूत्रोंके सिवाय गति सूत्र भी मस्तिष्क तक गए हैं, जिनके द्वारा क्रियाकी प्रेरणा होती है।

अन्तःकरणका केन्द्र मस्तिष्क है।

चेतना एक प्रकारकी अन्तर्दृष्टि है, वह दो प्रकार की होती है (१) अन्तर्मुख (२) बहिर्मुख अन्तर्मुख चेतनाका क्षेत्र संकुचित होता है, उसमें हमारे इन्द्रियानुभव, संस्कार और संकल्प प्रतिबिम्ब होते हैं।

चेतनाका परिज्ञान हमें चेतना ही के द्वारा हो सकता है। उसकी वैज्ञानिक परिक्षामें यही बड़ी भारी अड़चन है। परोक्ष भी वही और परीक्ष्य भी वही हैं। द्रष्टा अपना ही प्रतिबिम्ब अपनी अन्तःप्रकृतिमें डालकर परीक्षणमें प्रवृत्त होता है, अतः

हमें दूसरोंकी चेतनाका परीक्षात्मक बोध तो पूरा कभी हो नहीं सकता । चेतना सम्बन्धी दो प्रकारका वाद है (१) सर्वातिरिक्त अथवा आत्माकी शरीरसे भिन्न स्वतन्त्र सत्ताका होना (२) शरीर धर्मवाद अथवा शरीरके मेलका परिणाम । जड़ार्द्रैतवाद दूसरे वादका पोषक है ।

चेतनाका अधिष्ठान मस्तिष्कके भूरे मज्जापटलका एक विशेष भाग है । “फ्लेशज़िंक” (Paul Flechsing of Leipzig) एक जर्मनके वैज्ञानिकने सिद्ध किया है कि मस्तिष्कके भूरे मज्जा क्षेत्र इन्द्रियानुभवके चार अधिष्ठान या भीतरी गोलक हैं जो इन्द्रिय सम्बेदनाको ग्रहण करते हैं:—

(१) स्पर्श ज्ञानका गोलक मस्तिष्कके खड़े लोथड़ेमें, (२) घ्राणका सामनेके लोथड़ेमें, (३) दृष्टिका पिछले लोथड़ेमें, (४) और श्रवणका कनपटीके लोथड़ेमें है ।

इन चारों भीतरी इन्द्रिय गोलकोंके बीचमें चार विचारके गोलक हैं, जिनके द्वारा भावोंकी योजना और विचार आदि जटिल मानसिक व्यापार होते हैं ।

तुरन्तके उत्पन्न बच्चेमें चेतना नहीं होती । प्रेयर नामक शरीर वैज्ञानिकने दिखलाया है कि, चेतना बच्चेमें उस समय स्फुरित होती है जब वह बोलना आरम्भ करता है* । क्रमशः चेतनाका विकास होता है:—

* यदि कोई मनुष्य गूँगा ही पैदा हो और अन्तकाल तक न बोल सके तो क्या उसमें चेतना उत्पन्न ही न होगी और वह इंट पत्थरकी भांति जड़ ही रहेगा ? (ग्रन्थकार)

प्रथम, १० वर्षकी अवस्थातक ज्ञानकी वृद्धि और चेतना का विकास शीघ्रतासे होता है।

द्वितीय, १० वर्षकी अवस्थातक चेतनाकी वृद्धि होती रहती है, परन्तु पूर्णताको नहीं पहुँचती।

तृतीय, १० वर्षकी अवस्थातक चित्तार परिपक्व और चेतनापूर्ण होता है।

चतुर्थ, १० वर्षकी अवस्था तक परिपक्व चेतनाका फल मनुष्य चखता है *।

६० वर्षके बाद शिथिलता प्रारम्भ होकर क्रमशः बढ़ती जाती है।†

मेयर्सका उल्लेख “पश्चिमी अध्यात्मवाद संघ” के कार्य विवरणोंमें अनेक जगह आया है, आगे के पृष्ठोंमें उसके मतकी आभा प्रकाशित होगी। यहाँ संक्षेपसे उसके स्थिर किए हुए सिद्धान्तोंका उल्लेख किया जाता है। ये सिद्धान्त उसने अपने ४० वर्षकी खोजके बाद स्थिर किए थे। उसने अपनी खोजोंका सविवरण उल्लेख अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “मनुष्यके व्यक्तित्व” (Human Personality) नामकी दो जिल्दोंमें, किया है। उसके स्थिर किए हुए सिद्धान्त ये हैं:—

(१) मनुष्यका व्यक्तित्व शरीरकी मृत्यु होनेके बाद बाकी रहता है, निषेध नहीं हो जाता।

* यह पुस्तक इसी अवस्थामें लिखा जा रहा है।

† हैकलने इसी अवस्थामें अपनी पुस्तक (Riddle of the Universe) लिखा था जिसमें आत्मसत्ताका निषेध किया गया है।

(२) इसप्रकार शरीर छोड़े हुए व्यक्ति (जीवात्मा) में वही विचार, उद्वेग, अनुभव, स्मृति, मानसिक और सदाचार सम्बन्धी सामर्थ्य, मृत्युके बाद पूर्ववत् बाकी रहते हैं। वह मृत्यु के बाद न तो देव हो जाता है और न असुर, किन्तु उसी अवस्थामें और वही रहता है जो मृत्युसे पहले था अन्तर केवल इतना हो जाता है कि उसके साथ स्थूल शरीर बाकी नहीं रहता।

(३) विशेष अवस्थाओंमें यह शरीर रहित व्यक्ति पृथ्वीस्थ जीवित (सशरीर) प्राणियों (मनुष्यों)से संलाप कर सकता है।)

प्रोफेसर शेन स्टोन
Prof. Shan Stone
1906 A. D.

वान हेलमोण्ट (१५७७-१६४४) के समयसे अब (१९०६) तकके लेख और परीक्षण आदि जो विज्ञान-द्वारा किए गए थे, देखनेके बाद, “शेन स्टोन” अपनी सम्मति इसप्रकार

देते हैं:—

“सब कुछ जो हम उचित रीतिसे कह सकते हैं, वह यह है कि पुष्ट हेतु इस बातके विश्वास करनेके लिए नहीं है कि रसायनशालामें आजतक भी चेतना जड़ प्रवृत्तिसे उत्पन्न कर दी गई हो। *

जीवनको शरीरके मेलका परिणाम
रौबर्ट केनेडी डंकन (Robert Kennedy Duncan 1911 A. D.)
बतलानेके सम्बन्धमें डंकन का मत इस प्रकार है:—शरीर एक

यन्त्र है जिसमें प्रत्येक पेशी, ग्रंथि और तन्तुओंके कार्य रासायनिक नियमानुकूल होते हैं। वह विश्वास प्रतिदिन बढ़ रहा

*Materialism by Dareh Dinsha Kanga P. 37 and 38.

हैं। यदि जीवनसे अभिप्राय किसी ऐसी अन्यात्म-सत्तासे है, जो इन रासायनिक कार्योंमें हस्तक्षेप करती हो, तो उसकी सत्ता से उचित रीतिसे इनकार किया जा सकता है। परन्तु जीवन से यदि ऐसी अध्यात्म-सत्ता अभिप्रेत है, जो शरीरमें रह कर बिना उसके कार्योंमें बाधक हुए, परिमित रूपमें शारीरिक कार्यों को नियमित अनुशासित करती हैं, तो हम सम्भवतः उसकी सत्ता से इनकार नहीं कर सकते और उसकी सत्ताकी स्वीकृति विज्ञान के विरुद्ध भी नहीं है।*

डा० जैप (Dr. Jap. The president of the Chemical Section, डाक्टर जैप प्रधान रसायन विभाग लण्डन London) ने ब्रिटिश एसोसिएशन के एक अधिवेशनमें जो १८१९ ई० में संघठित हुआ था, "जीवन" पर व्याख्यान देते हुए जीवन (जीवात्मा) के कार्योंपर एक प्रवर्तकके कार्यसे उपमा देकर कहा था । † कि एक प्रवर्तकका कार्य यह होता है कि वह अपने ज्ञान और इच्छाको प्रयोगमें लाता हुआ, उद्देश्यमें कार्य करता है जिससे कि परिमित फल प्राप्त हो। फिर कहते हैं कि प्रवर्तक (जीव) नियमन शक्तिको जो फलसे सम्बन्धित होती है, जीवित शरीरपर काममें लाता है, और स्पष्ट रूपसे अपना आशय इस प्रकार प्रकट करता है कि जीवनके कार्योंकी केवल यान्त्रिक व्याख्या निश्चित रीतिसे अधूरी रहेगी।

*materialism p. 38 and 39.

† „ 39.

जिनकी पुस्तक * बम्बई यूनिवर्सिटीमें बी. प्रोफेसर कौहेन एस्. सी. के. विद्यार्थियोंको पढ़ाई जाती है, Prof. Cohen अपन पुस्तकमें नील, अंगूरकी चीनी मद्यसागर आदिके कृत्रिम बनाई जानकी बात कहते हुए, लिखते हैं कि सफेदी सर्व स्वीकृति जीवित शरीरका उपादान, सम्भव है कि एक दिन रासायनिक संयोगसे बन सके, परन्तु यह बात याद रखनी चाहिए कि जीवित व्यक्तियोंके शरीरोंके अत्यन्त गूढ़ संयोग और साधारण जीवित घटकके मध्यमें असीम अन्तर इस समय भी है. और सम्भावना है कि भविष्यतमें भी रहेगा ।

तीसरा परिच्छेद

आत्मा सम्बन्धी खोज और पश्चिमी अध्यात्मसंघ)

Psychical Research and Spiritualism

आत्मा सम्बन्धी खोज करनेके लिए पश्चिमी देशोंमें “अध्यात्म संघ” के नामसे सभा बनी हैं, जिनके खोजके प्रकार भिन्न होते हुए प्रायः सभी प्राकृतिक हैं । इन खोजोंको कुछेक सज्जन आशा, कुछेक निराशा की दृष्टिसे देखते हैं । आशावादियोंने आत्माकी सत्ता प्रमाणित करनेके लिए कतिपय साधन खोजे हैं । उनमेंसे मुख्य-मुख्य ये हैं :-

* 'Theoretical Organic Chemistry by Professor Cohen.

(१) फ्लेन्चिट । (२) स्वयंचलद् यन्त्रोंके लेख (३) उज्ज्वल स्वप्न । (४) परिचित ज्ञान । (५) भूतोपसृष्टि गृहों में भूत अथवा पिशाचोंकी उपस्थिति आदि विषय जो “परिचि-
तज्ञान” से विदित नहीं होते ।

फ्लेन्चिट

“फ्लेन्चिट” एक यन्त्र है, जो अब उतना प्रचलित नहीं है जितना आरम्भमें था । यह एक हृदयाकार सपाट लकड़ी दो छोटे-छोटे पहियों पर ठहरी हुई होती है, और एक पेंसिल भी उसके साथ जुड़ी रहती है । एक साफ़ मेज़पर एक कागज़ रख कर उस पर यह यन्त्र रक्खा जाता है और सपाट लकड़ी पर एक या दो पुरुष हाथ रखते हैं । थोड़ी देरमें वह लकड़ी घूमती है और पेंसिलसे कागज़पर कुछ चिन्ह अथवा अक्षर बन जाते हैं । जिनके लिए समझा जाता है कि वे किसी शरीरसे भिन्न वस्तु (आत्मा) का कार्य है । टुकेन महाशयने अपने एक पुस्तक * में फ्लेन्चिटकी सत्ता प्रकट करते हुए उसे तन्तु-प्रकृतिका परिणाम बताया है और यह कि वह “स्वयं प्रस्ताव” की अवस्था होती है ।

हेनस महाशयने फ्लेन्चिटके सम्बन्धमें अपनी एक अनुभव कथा लिखी है । १६०२ में उन्होंने उसका परीक्षण किया था । फ्लेन्चिट प्रयोग उनसे सम्बन्धित एक देवी करती थी, जिनकी एक कन्या परीक्षण तिथिसे दो तीन वर्ष पूर्व मर चुकी

* Evidence for the Supernatural by Tucket
p. 89 and 90.

री। प्लेन्चिट-द्वारा कतिपय वे बातें बतलाई गईं, जो मृत कन्या प्रौर उनसे हुई थीं। उसके बाद उन (हेनस) के एक मृत ग्रमरीकन मित्रकी आत्मा बुलाई गई, जो सेफ़रोय पर्वतसे गिर कर १६२६ में ३० वर्षकी आयुमें मर चुका था। हेनसका कथन है कि इन्होंने इस अपने मित्रकी आत्मासे पूछा कि पहाड़से गिरनेके समय उसकी आयु क्या थी। उत्तर मिला कि ३३ वर्षकी, जब कि आयु ३० वर्षकी थी। हेनसने कहा कि आयु तो ३० वर्षकी थी। तब प्लेन्चिटने उत्तर दिया कि मरते समय ३० वर्षकी आयु थी, परन्तु अब ३३ वर्षकी है। इसपर हेनसने कहा कि अब तो (१९०२ में) आयु ३६ वर्ष की होनी चाहिए। उस पर उस (आत्मा) की आंगसे अप्रसन्नताके चिन्ह प्रकट हुए। तब हेनसने पूछा कि अच्छा उस पहाड़ का नाम क्या है जिससे वह गिरा था, तो मालूम हुआ कि बुलाई हुई दोनों आत्माएँ अप्रसन्न होकर चली गईं।*

स्वयं चलद् यन्त्रके लेख।

मेयर्सने एक पुस्तक † के स्वयं चलद् यन्त्रके लेख शीर्षक में इस यन्त्रकी लेखन प्रणालीका वर्णन करते हुए, उसे एक प्रकार स्वयं संचालक यन्त्र बतलाया है, साथ ही उसने यह भी स्वीकार किया है कि यन्त्रकी स्वयंमेव बाह्यगतिसे यह प्रमाणित नहीं होता कि जो कुछ लिखा जाता है, उसका पूर्वरूप लेखक (प्रयोगक)

*The Belief in Personal Immortality. by E. S. P. Haynes p. 93 and 94.

† Human Personality by mayers. p. 27.

के मस्तिष्कमें नहीं था। मेयर्सका कथन है कि अधिक सूत्रों में यन्त्रका लेख ठीक सिद्ध होता है। और किसी वस्तुके सम्बन्धमें अनेक ऐसी विलक्षण बातें मालूम हो जाती हैं जो और प्रकारसे मालूम न होतीं। परन्तु विपक्षियोंका कथन उपर्युक्त कथनके सर्वथा विरुद्ध है। एक विपक्षी कहता है कि एक बार वह आंखें बन्द करके बैठ गया और सामने रखे हुए कागज़पर कलम को इच्छानुसार चलनेके लिए छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि कुछ अनर्गल और ऐसी ही बातें लिखी गईं कि जिनका पूर्वरूप उसके मस्तिष्कमें मौजूद था। वह यह भी कहता है कि १० मिनट इस प्रकार व्यय करनेकी जगह यदि वह पूरा दिन इसी अभ्यासमें व्यय करता, तो परिणाम और भी सन्तोष-जनक निकलता।

इस यन्त्रके सम्बन्धमें एक बहुमूल्य परीक्षण मेयर्सने किया था और वह इस प्रकार था कि उसने एक पत्र लिख कर और कई लिफाफोंके भीतर उसे बन्द करके ऊपरसे मुहर लगादी, और उसे अपने बैंकरके पास इस अभिप्रायसे छोड़ दिया कि पत्रमें अंकित विषय यन्त्र-द्वारा मालूम किया जावे। वीरल देवी (Mrs. Verrall) द्वारा यन्त्रसे पत्रका विषय जाना गया और एक सभामें प्रकट कर दिया गया, परन्तु उसी सभामें जब असल पत्र १३-१२-१००४ को बैंकसे वह लिफाफा मंगाकर खोला गया, तो उसका विषय यन्त्र-द्वारा वर्णित विषय से सर्वथा भिन्न निकला। इस परीक्षणके विरुद्ध सर ऑलिवर-लॉजने अपने एक पुस्तकमें अनेक ऐसे उदाहरण दिए हैं, जो यन्त्रके लेखको प्रमाणित करते हैं। एक उदाहरण उपर्युक्त

पुस्तकसे यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

एक बार “मोसेज” महाशय डाक्टर स्पीगके पुस्तकालयमें बैठे स्वयं चलद् यन्त्रके अदृश्य लेखकसे बात कर रहे थे ।

नोट—वह अदृश्य लेखक पहले “फिन्यूइट” (Phinuit) परन्तु और “रेक्टर” (Ractor) अपना नाम बतलाता है ।

उनका एक प्रश्नोत्तर इस प्रकार है:—

मोसेज—मुझे बतलाया गया है कि आप पढ़ सकते हैं क्या यह ठीक है और क्या आप कोई पुस्तक पढ़ सकते हैं ?

नोट—मोसेज अपना प्रश्न मुखमें कहते थे रेक्टरका उत्तर स्वयं चलद् यन्त्र से लिखा जाता था । मोसेज का कथन है कि स्वयं चलद् यन्त्रको लेख प्रणाली बदल गई क्योंकि पहले कोई और लिखता था अब उसका अदृश्य लेखक रेक्टर हैं ।

रेक्टर—हां, कठिनता से ।

मोसेज—क्या आप कृपा करके एनील्ड (Aeneild) के प्रथम पुस्तककी अंतिम पंक्ति लिखेंगे ?

रेक्टर—प्रतीक्षा करो—(फिर उसने लिख दिया)
“Omnibas errantem terris at fluctibus aestas”

मोसेज—(यह ठीक था) ठीक ऐसा ही है.... क्या आप पुस्तक कोष्ट तक जायेंगे और दूसरे कोष्टके अन्तिम पुस्तक के ९४ वें पृष्ठका अन्तिम वाक्य पढ़ेंगे ? (मोसेजने लिखा है कि उन्होंने यह प्रश्न अनायास कह दिया था उनको मालूम भी नहीं था कि वह कौनसी पुस्तक है जिसके पढ़नेको उन्होंने कह दिया था) ।

थोड़ी देरके बाद यन्त्रने ये लिख दिया :—

I will curly prove by a short historical narrative, that Popery is a novelty, and has gradually arisen or grown up since the primitive and pure time of Christianity, not only since the apostolic age, but even since the lamentable union of Kirk and state by 'Constantine.'

नोट—पुस्तक निकालकर जांच करनेसे विदित हुआ कि रेक्टरका लेख शुद्ध है केवल एक भूल उसमें यह थी कि लेखमें “account” की जगह “narrative” लिखा गया था।

जिस पुस्तकका यह उद्धरण है उसका नाम था “Roger's Antipopriestian”

‘लॉज महाशयने इस यन्त्रके सम्बन्धमें अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है:—“वे अवशिष्ट जीव, जो निकट भविष्यतमें इस पृथ्वी पर थे और अब मर चुके हैं, कभी-कभी और कठिनता के साथ ऐसे मध्यवर्ती यन्त्र-द्वारा, जो उनके अधिकारमें दिए जाते हैं, हमसे संलाप करते हैं। वह यन्त्र रचना निमित्त पुरुष माध्यमकी मस्तिष्क तन्तु होती है जब निमित्त पुरुष अस्थायी रीतिसे अपने मस्तिष्कसे काम लेना बन्द कर देता है तब वे अवशिष्ट जीव उससे काम लेते हैं। इस उद्देश्यसे कि अपने विचार उसमें भरें, और वही उनके इस प्रकार भरे हुए विचार प्राकृतिक जगत्में संलाप अथवा लेख द्वारा प्रकट होते हैं। और अवशिष्ट

इस प्रकार ऐसे प्राकृतिक साधनों (मन्त्रिकादि) के काममें लाने ही को जो वास्तवमें उनके नहीं हैं, स्वयं चलद-यन्त्र कहते हैं।*

उज्ज्वल स्वप्न

पश्चिमी अध्यात्मवादका एक अंग उज्ज्वल स्वप्न भी है, जिसमें उसके अनुयाई अलौकिक घटनाओंके ज्ञान प्राप्ति की सम्भावना स्वीकार करते हैं। सर ऑलिवर लॉजने लिखा है † कि ज्ञान तो अवश्य किसी माध्यमके-द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु उस (माध्यम) का ज्ञान हमको कुछ भी नहीं है, और किस प्रकार यह अलौकिक ज्ञान हम तक पहुँचता है यह बात भी अभी तक अप्रकट है। सर ऑलिवर लॉज तथा अन्य अध्यात्मवादियों ने इस वादके स्थापनार्थ अनेक घटनाएँ उपस्थित की हैं, जिनमें से उदाहरणार्थ लॉज महोदयकी वर्णित एक घटना यहां लिखी जाती है।

“पादरी इ. के. इलियट जब अटलांटिक महासागरमें एक जहाज़ पर जा रहे थे, जहां तार और चिट्ठी नहीं पहुँच सकती थीं, उन्होंने १४ जनवरी १८८७ को अपनी दिन-पत्रिकामें लिखा है कि “पिछली रात्रिमें मुझे स्वप्न हुआ कि मेरे चचा एच. इ. का पत्र आया है, जिसमें मुझे मेरे प्यारे भाई की, ३ जनवरीको मृत्यु होने की, सूचना दी है। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरा भाई स्वीटज़र्लैंडमें बीमार अवश्य था, परन्तु उसका अंतिम समाचार, जो इंग्लैंड छोड़ते समय मुझे मिला था, यह था कि

* Survival of man by Sir Oliver Lodge P. 106

† “ ” ” ” P. 112

अब वह अच्छा है। जब मैं अपनी यात्रा समाप्त करके इंग्लैंड वापस आया तो जैसा कि मुझे प्रतीक्षा थी, मुझे पत्र मिला जिसमें ३ जनवरीको भाईकी मृत्यु होनेकी सूचना मुझे दी गई थी*।

“परचित्तज्ञान”

एक चित्तके दूसरे चित्त पर, उन साधनोंमें, जिनका ज्ञान इस समय तक विज्ञानको नहीं है, कार्य करनेको “परचित्तज्ञान” कहते हैं †।

माइर्सकी सम्मति है कि मानुषिक मस्तिष्कका बड़ा भाग अप्रकाशित है और वह अप्रकाशित भाग न केवल अपनी किन्तु पूर्वजोंकी भी स्मृतियोंका पुंज है। इसीको उसने उत्कृष्ट चेतना का नाम दिया है। माइर्सका यह वाद सेमुएल बटलर (Samuel Butler) के अज्ञान स्मृतिवादसे मिलता-जुलता है। माइर्सने इस वादका विवरण इस प्रकार दिया है † “वर्षोंसे यह बात अधिक और अधिक मात्रामें सोची और समझी जाती रही है कि किसप्रकार एक व्यक्तिका जीवन, पूर्वजोंके अनुभवोंका, अज्ञात परिवर्तनयुक्त, विषम रूप है। जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त रंग रूप, कार्य और प्रकृति आदिमें हम उन्नत जीवनोंका, जो पृथ्वीपर करोड़ों वर्षसे प्रादुर्भूत होते रहे हैं, रूपान्तरमात्र है

* Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 106 and 107,

† अर्थात् दो जीवित पुरुषों अथवा एक मृत और दूसरे जीवित पुरुषोंके चित्तमें, बिना किसी बाह्य और ज्ञान साधन के, विचार परिवर्तनकी विधि परचित्तज्ञान कहलाती है।

Human personality by Meyers Vol. I p. 16

निरन्तर विस्तृत परिस्थितिके साथ सम्बन्धित होनेसे क्रमशः चेतनाका द्वार अपना स्थान छोड़ता-सा गया। जिसका प्रभाव यह हुआ कि चेतनाकी वह धारा, जो एक बार हमारी सत्ताके मुख्य भाग में प्रवाहित होती थी, अधिकतर बन्द-सी हो गई। हमारी चेतना, विकासके एक दर्जे पर पहुँचे, आसार (संसार) समुद्रमें, एक लहरके सदृश है, और लहर ही के सदृश वह न केवल बाह्य सत्ता रग्वती है, किन्तु अनेक तहोंवाली भी है। हमारा आत्मसंयोग न केवल सामयिक संघात है किन्तु अस्थिर भी है और वह चिरकालीन अनियमित विक्रामका परिणाम है। और अबतक भिन्न-भिन्न अवयवोंके सीमित श्रमसे युक्त है।” मस्तिष्कका ठीक ज्ञान न होनेसे मस्तिष्कके नाम अथवा कामसे सम्बन्धित जो बात भी कही जाती है, कोई दूसरा पुरुष जो उस बातको न भी मानता हो, निश्चित रीतिसे उसका प्रतिवाद नहीं कर सकता। यही हेतु है जिससे परचित्तज्ञान सम्बन्धी विश्वास पश्चिममें बढ़ रहा है। इस विषयसे सम्बन्धित अनेक पुस्तक जिनमें परचित्तज्ञानके अनेक परीक्षणोंका उल्लेख है, प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हींके आधारपर दो एक परीक्षण यहाँ लिखे जाते हैं। वैरेट की पुस्तक † में एक घटना जो इस वादकी पोषक है, अंकित है, और वह इस प्रकार है:—

“फ़रवरी १८९१ ई० में एक एमेरीकन कृषक, घरसे २०० मीलकी दूरी पर “डूबक” नामवाले नगरमें, अचानक मर गया। पुराने वस्त्र जो वह पहन रहा था वहीं फेंककर उसका पुत्र शवको

घर ले आया। अपने पिताका दुःखदायी मृत्यु समाचार सुनकर उसकी पुत्री बेहोश हो गई और कई घंटे उसी अवस्था में पड़ी रही। जब उसे सुध हुई तो उसने कहा “कहाँ हैं पिताके वस्त्र ? वे अभी मेरे पास आए थे। सफेद कुरता और अन्य काले वस्त्र और सैटिनके स्लीपर पहने हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि घर छोड़नेके बाद उन्होंने बिलोंकी एक लम्बी सूची अपने खाकी कुरतेके भीतर लाल कपड़ेके टुकड़ेसे सी ली थी; वह और रुपया भी उसीमें है” दफन करते समय जो वस्त्र शव (लाश) को पहनाए गए थे, वे वही थे जिनका विवरण लड़कीने दिया था। और लड़कीको इन वस्त्रोंके पहनानेका कुछ भी ज्ञान न था। इसके सिवाय कुरतेकी भीतरवाली जब और रुपयोंका हाल उसे और न अन्य किसीको मालूम था। लड़कीको सन्तुष्ट करने के लिए उसका भाई “डूबक” गया, जहां उसका पिता मरा था। वहां उसने पुराने वस्त्र पाए जो एक छप्परमें रक्खे थे। कुरते की भीतरी जबमें वह लम्बी सूची भी बिलोंकी मिली जो ३५ डालरके थे, और ठीक उसी प्रकार लाल कपड़ेके टुकड़ेसे सिले थे जैसा लड़कीने बतलाया था। जबके टांके बड़े और अनियमसे लगे थे जैसे किसी पुरुषने सिए हों।” प्रोफेसर बेरेटने इस घटनाके आधारपर परचित्तज्ञानकी सत्यता पर विश्वास किया था। मेइर्सने भी इस घटनाका सविवरण उल्लेख करते हुए इस वाद की पुष्टि की है* एक दूसरे परीक्षणका भी उल्लेख किया जाता है। यही परीक्षण सर ऑलिवर लॉजने किया था और

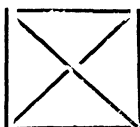
उन्होंने ही इसी अपने एक पुस्तकमें † अंकित किया है। परीक्षण का विवरण इस प्रकार है:—

“दो पुरुष अपने विचार, एक तीसरे पुरुषमें जिसकी आंखें अच्छी तरह कपड़ेसे बांध दी गई थीं, पहुँचानेके लिए बैठे। एक मोटे कागज़के एक ओर एक शकल वर्णकार  इस प्रकारकी बना दी गई थी और कागज़की दूसरी ओर दो व्यस्त रेखाएँ + इस प्रकारकी खींच दी गई थीं। वे दोनों पुरुष एक मंज पर आमने-सामने बैठे और दोनोंके बीच में वह कागज़ इस प्रकार रक्खा गया था कि एक पुरुष अपने ओरवाले एक चित्रको और दूसरा अपने ओरवाले चित्र को देखता रहे। परन्तु उन दोनोंको भी यह जाननेका अवसर नहीं। दिया गया था कि कागज़के दूसरी ओर क्या है। तीसरे पुरुषको जो “ग्रहण क्षभ” था और जिसकी आंखोंसे पट्टी बँधी थी, वहीं मंजके पास बिठलाया गया और तीनोंके बीच में कोई दो फुटका खुला अन्तर रक्खा गया था। दोनों पुरुष अपने-अपने सामनेके चित्रोंको संलग्नताके साथ इस विचारसे देखने लगे कि उन्हें ग्रहण क्षभके हृदयमें चित्रित कर दें। थोड़ी देरके बाद उस ग्रहण क्षभने इसप्रकार कहना शुरू किया—

“कुछ हिल रहा है और मैं एक चीज़को ऊपर और दूसरी को नीचे देख रहा हूँ। साफ-साफ दोनोंको नहीं देख सकता” तब वह कागज़ जिसपर चित्र खिंचे थे छिपा दिया गया और ग्रहण

† The Survival of man by Sir Oliver Lodge
p. 28-29.

क्षमकी आँखोंमें पट्टी खोल कर कहा गया कि जो चीज़ें उसके विचारमें आई थीं उन्हें कागज़पर लिख देवे । उसने एक चित्र इस प्रकारका खींच दिया” लॉजका कथन है कि यह परीक्षण अनेक पुरुषोंकी उपस्थितिमें किया गया था । उन पुरुषोंमें कुछ वैज्ञानिक भी थे । और यह कि परीक्षणने सफलतासे सिद्ध कर दिया कि एक ही समयमें न केवल एक किन्तु दो पुरुषोंके विचार भी एक तीसरे पुरुषमें डाले जा सकते हैं । सर आर्लिवर लॉजने यह भी लिखा है कि वैज्ञानिक होनेकी हैसियतसे वे इस परचित्तज्ञानका कोई हेतु नहीं दे सकते, सम्भव है कि इसका सम्बन्ध आकाश (ईश्वर) से हो । यदि यह सिद्ध हो गया तो अवश्य यह वाद् भौतिक विज्ञानकी सीमामें आ जायगा । लॉजने इसका वैज्ञानिक हेतु देनेका यत्न किया है और वह इसप्रकार है* “एक दर्पणको एक अक्षाप्र (धुरी) में इसप्रकार जड़ दो कि जिससे वह कुछ हिलजुल सके । उससे कुछ दूरी पर फोटोग्राफीका कागज़ और उसीका मध्योन्नत कांच रक्खो, यदि सूर्य की किरणें आइने पर पड़ेंगी और कागज़ आदि सब व्यवस्थाके साथ रक्खे हुए होंगे तो परिणाम यह होगा कि उस कागज़पर एक रेखा खिंच जायगी और इसी प्रकार प्रत्येक खटकेसे जो दर्पणको दिया जायगा, रेखा खिंचती जायगी । सूर्य और उस दर्पणके मध्यमें कोई तार अथवा अन्य इसी प्रकारका कोई प्राकृतिक माध्यम सूर्यकी किरणें और



आकाशके सिवाय कहीं है । इसी प्रकार दो मस्तिष्कोंमेंसे जिनमें आनुरूप्य सम्बन्ध हो और जो एक दूसरेसे पृथक् हो, एकको उत्तेजना देनेसे दूसरा प्रभावित होगा” आनुरूप्य सम्बन्धका तात्पर्य भौतिक विज्ञानमें लॉजके कथनानुसार, यह है कि जिस प्रकार रेलके स्टेशनोंपर सिगनल देनेके लिए खम्भों में हाथ लगे होते हैं और दूरी पर लगे हुए एक दूसरे यन्त्र को हिलानेमें जिस प्रकार ऊपर या नीचे करने के लिए उमें हिलाते हैं । उसी प्रकारका प्रभाव वह उस हत्थमें उत्पन्न कर देता है और उसी प्रभावके अनुसार वह नीचे अथवा ऊपर हो जाता है तो उस यन्त्र और हाथमें समझा जायगा कि आनुरूप्य सम्बन्ध है। यह हिलानेका खटका, जो उस यन्त्रसे हत्थ तक पहुँचता है और जिसका माध्यम जोड़ेंकी शृङ्खला अथवा कोई रस्सी हांती है, एक सैकिडमें तीन मीलकी चालसे जाता है । सर ऑलिवरने अपने पुस्तकमें यह भी लिखा है* कि इङ्ग्लैण्ड और हिन्दुस्तानका अन्तर आनुरूप्य सम्बन्धमें बाधक नहीं हो सकता । जिस प्रकार इङ्ग्लैण्डमें तारकी मशीन खटखटानेसे तिहरानकी मशीन प्रभावित होकर वैयाही खटका पैदा कर देती है, इसी प्रकार मानसिक विचार परिवर्तन इङ्ग्लैण्ड और हिन्दुस्तानके बीच ऐसे साधनोंसे, हो सकता है जो इस समय तक ज्ञात नहीं है ।”

विलियम जेम्स प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक भी इस वादके समर्थक हैं । उन्होंने और सर ऑलिवर लॉजने दिवङ्गत आत्माओंको बुलाने और उनसे बात करनेकी बात भी अपने-अपने पुस्तकोंमें

लिखी है। इसी प्रकार बुलाई हुई एक “रूह” ने कहा कि “कुछ निजू कागज़-पत्र हैं जिन्हें मैं देखना नहीं चाहती *। बुलाई हुई आत्माओंकी कतिपय विलक्षण बातें भी लॉजने लिखी हैं। एक रूहकी कविताका उल्लेख किया है † एक रूहके आने और हँसनेका कथन किया गया है ‡ एकने आकर विलियम जेम्स को “अत्यन्त स्वमताभिमानी” कह डाला § एक “रूह” ने आकर अपनी स्थितिका वर्णन इस प्रकार किया है “हम सब तेजोमय आकाशमें बना हुआ शरीर रखते हैं जो हमारे रक्त और मांसके शरीरके भीतर रहता है” ¶ माइर्स भी जिनके कतिपय लेख पहले दिए गए हैं, मर जानेके बाद एक सिजविक नामी पुरुषकी पत्नी-द्वारा बुलाए गए। उन्होंने आकर उस देवीसे अनेक बातेंकी, उनमेंसे एक यह भी थी:- -

“प्रिय देवी, तुम्हें भविष्यतमें मृत्युका भय अथवा कुछ सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि वह कुछ नहीं है और मरनेके बाद निश्चित रीतिसे सज्ञान जीवन रहता है” ।

भूतप्रेतवाद

पश्चिमी विद्वान् जो आत्माके अमरत्वके पोषक हैं उनमेंसे कुछेक इस वादके भी पोषक हैं। उनका विचार है कि प्राणी

* Survival of man by Sir O. Lodge p. 162.

† “, , ,” p. 161.

‡ Survival of man by Sir O. Lodge p. 162.

§ “, , ,” p. 162.

¶ “, , ,” p. 190.

“, , ,” p. 216.

जब मरता है तो वह प्राकृतिक शरीरसे भिन्न रहता है और उसे बुलाया भी जा सकता है, और उससे बातचीत भी की जा सकती है। इस प्रकारसे उनके बुलाने और बातचीत करनेके अनन्त उदाहरण दिए जाते हैं उनमेंसे एक उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जाता है।

“मेडम सरतविली” डच राजदूतकी विधवा थी और स्ट्राक हाँल्म नगरमें रहती थी। पतिकी मृत्यु हो जानेके बाद उनमें एक सुनारने चाँदीके दाम माँगे जो उनके पतिने क्रयकी थी। मेडमको विश्वास था कि उनके पतिने अपने जीवनकालमें रुपया चुका दिया था परन्तु सुनारकी रसीद नहीं मिलती थी। मेडम ने “स्वीडनवर्ग” नामी पुरुषको जो मृतजीवोंको बुलाने और उन से बातचीत करनेमें सिद्धहस्त समझा जाता था, बुलाया और उससे कहा कि उनके मृत पतिकी आत्मासे रसीदका हाल पूछ दें। तीन दिनों के बाद स्वीडनवर्गने पूछकर मेडमको उत्तर दिया कि चाँदीका रुपया चुकाया जा चुका है और रसीद उस आल्मारीमें है जो ऊपरके कमरेमें है। मेडमने उत्तर दिया कि उस आल्मारीके सब कागज़ देख जा चुके हैं उसमें रसीद नहीं मिली। स्वीडनवर्गने यह सुनकर बतलाया कि उनके पतिके आत्माने बतलाया था कि आल्मारीकी बाईं दराज़ खींचनेके बाद एक तख्त दिखाई देगा, उसे खींच लेना चाहिए। तब एक गुप्त कोष्ठ निकलेगा उसमें डचराज सम्बन्धी कुछेक निजपत्र हैं और वह रसीद भी। इस गुप्त कोष्ठका हाल मेडम नहीं जानती थी अतः वे कतिपय अन्य पुरुषोंके साथ जो उस समय वहाँ उपस्थित थे वहाँ गई, और बतलाई हुई विधिसे आल्मारी खोली तो उसमें

वह गुप्त कोष्ठ निकल आया और उसमें बतलाए हुए कागज़ और रसीद भी निकली* ।” सर ऑलिवर लॉज, जिनके पुस्तकसे यह घटना ली गई है, इस वादके भी समर्थक हैं। वे कहते हैं कि कल्पना करो कि भूत-प्रेतोंकी कोई सत्ता (प्राकृतिक) नहीं और वे केवल चित्त संस्कार अथवा छाया मात्र हैं जो ग्राहकके मस्तिष्कमें पडा है और जो उस संस्कार अथवा छायाके अनुरूप है जो किसी दूसरे पुरुषके मस्तिष्कमें पहलेसे था और जब तक तीसरे व्यक्ति-द्वारा पहले व्यक्ति (ग्राहक) के मस्तिष्कमें परिवर्तित किया गया है † । यही हेतु है जो वे भूतोंके दिखलाई देनेका दे सकते हैं ।

प्रोफ़ेसर वेगेटन इस वादको व्याख्या इस प्रकार की है:—

“अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं जिनसे पहले दो की भाँति यह बात प्रकट होती है कि भूतकालिक घटना, जो विशेष-विशेष व्यक्तियों पर घटित हुई थीं अथवा अब होती हैं। प्राकृतिक दृष्टियों अथवा स्थानों पर, जिनसे उन व्यक्तियोंका सम्बन्ध था, कुछ इस प्रकारकी अपनी छाप लगा छोड़ जाती है कि उनकी छाया अथवा गूँजका उन पुरुषों को अनुभव होने लगता है जो अब वहाँ रहते हैं। और जो चलेन्द्रिय अथवा मूढ़ प्रकृतिवाले होते हैं। यद्यपि यह वाद मातिशय और विज्ञानके उपयोग-सा प्रतीत होता है परन्तु भौतिक विज्ञान अथवा आत्मिक खोजकी सीमासे इसके अनुरूप उदाहरणोंकी कमी नहीं है। एक सिक्केका एक कानके टुकड़ेपर कुछ देर के लिए रख दो, उसके बाद हटाने

*Survival of man by Sir Oliver Lodge p 96.

†Survival of man by Sir Oliver Lodge p 78

पर कुछ चिन्ह-सा काँच पर रह जाता है। उस काँचको श्वास से प्रभावित करनेमें वह सिका दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार लकड़ी, काँइला अथवा अन्य किन्हीं वस्तुओंके टुकड़े, फोटोग्राफीके प्लेट पर रखने और कुछ देरके बाद हटानेसे, उनके चिन्ह प्लेट पर रह जाते हैं और प्लेटको नियमानुसार विकसित करनेसे वही वस्तु दिखाई देने लगती है इससे और इस प्रकार अन्य दृश्योंके हेतु भौतिक विज्ञानसे दिए जा सकते हैं। परन्तु आत्मजगत्में इस प्रकारके किसी उदाहरणसे यह (भूत) वाद प्रमाणित नहीं किया जा सकता”*



*Psychical Research by Prof. Barret p. 197 and 198.

सातवां अध्याय

पश्चिमी विज्ञानकी २०वीं शताब्दी ।

पहला परिच्छेद

डॉक्टर मोमेरी जीवके अमरत्वको न केवल
डॉक्टर मोमेरी अपने लिए स्वीकार किया है किन्तु उनको आग्रह
Dr. Momerie है कि अन्य भी उसे स्वीकार करें—उन्होंने अपने
एक पुस्तकमें लिखा है “जीवके अमरत्वकी अस्वीकृति ईश्वरका
अपमान करना है अमरत्वका विश्वास एक ऋण है और ग्व-
यिता ऋणवद्ध है कि हमें चुकावे और चुकाने ही में उसकी
प्रतिष्ठा है । यदि हम अमर नहीं हैं तो वह सदाके लिए अपमानित
रहेंगा”* फिर एक दूसरे स्थानपर लिखा है “क्या यह सम्भव
है कि जब तुम्हारा शरीर पंचत्वको प्राप्त हो तो वह तुमको भुला
देवे और तुम आत्मजगतमें न जा सको ? यदि वह (ईश्वर)
अंतमें उपजी घासको भी नष्ट नहीं रखता तो क्या इससे भी

उत्तम वस्त्रोंसे वह तुम्हें न ढकेगा ? * वे फिर लिखते हैं कि “अमरत्व ईश्वरके रचना कार्यकी, जो महत्ता काटियोंमें आश्चर्यजनक और दिव्य रीतिसे हो रहे हैं, सम्भव पराकाष्ठा है। इसी पुस्तकमें “मोमेरी” ने इस बात पर विचार करते हुए कि शरीर छोड़नेपर जीव जब आत्मजगतमें जावेंगे तो बिना शरीर के होंगे और बिना शरीरके किसप्रकार अपने साथियोंको पहचान सकेंगे, लिखा है कि वे “आवाजसे एक दूसरेको पहचान लेंगे † । उसकी सम्मति है कि जिसकी अकालमृत्यु हो जावेगी उनके लिए पुनर्जन्म आवश्यक होगा क्योंकि मनुष्य जातिके लगभग सभी उच्च विचारकोंने उसे स्वीकार किया है ‡ ।

सातमोंडने ईसाई-मतका वर्तमान रूप प्रकट डॉक्टर सालमोंड करनेके लिए एक पुस्तकमें लिखा है और उसमें अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की है कि “जीव अपनी प्रकृतिके लिहाजसे मरणशील हैं और (मरने पर शरीर के साथ) नष्ट हो जावेगा सिवाय उस सूत्रके कि इस साधारण कार्यप्रणालीमें ईश्वर हस्ताक्षर करें” इसलिए सालमोंड जीवके अमरत्वको “सांवाधिक अमरत्व” लिखता है परन्तु भावी जीवनके विश्वासको ‘मार्वात्रिक-विश्वास’ बतलाता है । ईसाई-मतका मत, जीवके बुद्धिपूर्वक विश्वास आदिसे न पाकर

* Sermons on immortality Dr. Momerie p. 39

† “ ” p. 39

‡ Do. p. 78 पर बिना शरीरके आवाज कहाँसे आवेगी ?

§ “ ” p. 87

¶ Christian Doctrine of Immortality p. 485

सालमोंड लिखता है कि “सत्यमत” अपनी परिमित शिक्षा देगा और प्रत्येक कठिनताका उत्तर देनेका संकल्प न करेगा ... जिस बातका निष्पेक्ष करनेके लिए ईसाकी सम्मति न मिलेगी उसमें वह चुप रहनेही पर सन्तोष करेगा और जो बात मनुष्य के इस अथवा भावी जीवनसे सम्बन्धित अन्धकारमें है उसे वह अनादि सर्वज्ञके लिए यह समझ कर छोड़ देगा कि इसमें वह गुप्त रखना चाहता है * ।

ने अमरत्वके सम्बन्धमें लिखा है कि डबल्यू. एल. क्लर्क “अमरत्वके लिए निर्णायक साक्षी नहीं (न्यूयार्क) है ... और जो है वह न्यूनाधिक परिमित है” । “मनुष्य, मनोविकार और मनोभावमें कितना आत्मिक-बल है, इसमें अनभिज्ञ नहीं है “आत्मिकबल शरीर मूलक है” यह बात विश्वास करने योग्य नहीं है और इसपर भी विश्वास नहीं किया जा सकता कि मनुष्यकी सत्ता और पराक्रम नष्ट होनेके लिए है” । अन्तमें वह लिखता है कि मनुष्य यहाँ मर कर जीना सीख रहा है। ‡

राइसने १८७४ ई० में एक पुस्तक जीवके प्रोफेसर राइस सम्बन्धमें लिखकर अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि जीवन अप्राकृतिक और निरवयव है । वह

* Christian Doctrine of Immortality by Dr. Salmond p. 514

‡ An outline of Christian Theology by Dr. W. N. Clarke p. 192—198.

लॉज (Lodge) से इस विषयमें सहमत है कि अमरत्वके लिए कोई आध्यात्मिक प्रमाण नहीं है। उसका मत है कि सम्भव है कि मस्तिष्कका एक प्रतिरूप समस्त अंकित स्मृतियोंके साथ आकाशमें हो परन्तु यह कल्पितवाद इस मन्तव्यके विरुद्ध है कि मस्तिष्कका सम्बन्ध इस अंशमें आकाशमें और कि वह विद्युत्कणोंके समुदाय रूप परमाणुओंका संघात है।*

१९०३ में जीवके सम्बन्धमें साइमने साइम आस्ट्रेलिया एक पुस्तक प्रकाशित की थी पुस्तकमें जीवके अप्राकृतिक होनेके विरुद्ध अपना मत प्रकट किया था और यह भी लिखा था कि औरके समयसे प्रायः सभी लोगों ने जिन्होंने इस विषयको मनन किया, अध्यात्मवादको जीवके अमरत्वका पोषक नहीं समझा। परन्तु पुस्तकमें फिर एक तर्क उपस्थित किया गया है कि सृष्टि के प्रत्येक कार्यमें नियम, उद्देश्य, और अवरोध पाए जाते हैं। हमारे धार्मिक आवेग और नैसर्गिक बुद्धि दोनों स्वाभाविक और जगत सम्बन्धित विकास के परिणाम हैं। जीवके अमरत्वका विश्वव्यापी विश्वास नैसर्गिक बुद्धि पर निर्भर है। तर्क बहुधा असत्य सिद्ध होता है परन्तु नैसर्गिक बुद्धि असत्य नहीं होती। इससे सिद्ध होता है कि जीव अमर है। वह फिर कहता है कि “यदि जीवने अपना वर्तमान शरीर बना लिया तो वह एक दूसरा भी बना सकता है,” जिसका तात्पर्य यह है कि वह आवागमनको भी मानता है।

* Christian truth in age of Science by Prof. Rice of Wesley University p. 279 -283.

उसके मतानुसार स्मृति एक असाधारण शक्ति है और उसे कीटक के रूपमें शरीरमें उपस्थित रहना चाहिए क्योंकि वही पैतृक संस्कार गर्भमें लाती है और वह स्वप्नमें यहाँ तक कि मरते समय भी सुस्पष्ट रहती है। और इस प्रकार मर जाने के पश्चात् भी किसी दूसरी परिस्थितिमें बाकी रहती है। सायमने एक और भी तर्क उपस्थित किया है कि जब * चेतन-अणु बिना चक्षुके देख, बिना श्रोत्रके सुन, और बिना ज्ञान तन्तुओंके अनुभव कर सकता है तो उससे उच्चकोटिका वस्तु मनुष्यका जीवात्मा क्यों उसीके सदृश सब कार्य नहीं कर सकता। यदि जीवने, उसके विचारानुसार कीटाणुसे यह शरीर बना लिया तो वह अवश्य इस शरीरसे पृथक् होनेकी योग्यता रखनेवाली वस्तु है †।

इसने लिखा है कि “विकासवाद उस प्रवृत्ति न्यूमैन स्मिथ का नाम है जो पूर्णताकी ओर मुँह रखती है, (अमेरिका) और यहाँ पूर्णताको प्राप्त नहीं कर सकती इसलिए आवश्यक है कि ऐसी परिस्थितिमें भेजा जावे जो उसकी आत्मीयताके अधिक अनुकूल हो। यह आवश्यक नहीं कि वहाँ

* Book on the Soul by Dr. Syme quoted by Mr. Hayness in his book on Immortality p. 119-120

† मोनाड (चेतन-अणु) जिसका यहाँ संकेत किया गया है जीवन विद्यानुसार (Biology) एक अत्यन्त सूक्ष्म अमिश्र प्राणि सम्बन्धी रचना है जिसे जीवन-विद्याके विद्वान् (Biologists) जानते हैं। वास्तवमें मोनाड देखना—सुनना है या नहीं इसमें

वह बिना शरीरके रहें वहाँके प्राकृतिक साधन और परिस्थिति अधिक आह्लादप्रद होगी×××जीव और शरीरका सम्बन्ध बहुत मामूली और सुगम परिवर्तनीय है। स्थिर और अपरिवर्तनीय नहीं। मनुष्य शरीरका प्रारम्भ एक बिन्दुसे होता है जिसे सूक्ष्म दर्शक यंत्रके बिना नहीं देख सकते और जिसमें जीवकी हाजत शरीरके अनुकूल ही होती है। यदि शरीर कीट का है तो जीव भी कीट ही होगा और इसी प्रकार भविष्यन्में शरीरानुकूल उसकी अवस्था रहेंगी × × ×। शरीरके नाशसे किसी व्यक्तिके उन सम्बन्धीका नाश नहीं होता जो ब्राह्म जगतमें है × × ×अवशिष्ट जीवनका मूल व्यक्तिकी उन्नत अवस्था पर निर्भर है। प्राकृतिक नियम अधिकतर जाति पर दत्तावधान रहते हैं परन्तु मनुष्यता व्यक्तित्वको लक्ष्यमें रखती है। इस लिए हम विश्वास नहीं कर सकते कि यह बहुमूल्य व्यक्तित्व नाश हो जावेगा ×× मनुष्यमें जीनेकी इच्छा ज्वालावन है यह भला किम प्रकार प्राकृतिक साधनोंसे बुझाई जा सकती है*।

एच रोल्ली

सोल्लीने १६०५ ई० में एक पुस्तक प्रकाशित करके जीवके अमरत्वका समर्थन किया है। इसका मुख्य हेतु उमने यह दिया है कि प्राकृतिक शरीरोंकी रचना कुछ काल तक काम देनेके लिए होती है। किन्हीं सूरतोंमें वह समय थोड़ा होता है किन्हींमें बहुत। परन्तु नियत समय बीतने पर स्वाभाविक रीतिसे वह नष्ट हो जाते हैं, परन्तु जीव उससे

* Through Science to faith by Mr. Newman Smith p. 262 and 263.

सर्वथा पृथक् है क्योंकि चेतना, चित्त, और आदेशके विकासका कोई अवधि नहीं है *

ने एक नाटकीय मृत्यु और जीवनके सम्बन्धमें एडवर्ड कारपेन्टर १९१२ ई० में प्रकाशित किया था। जीवके अमरत्वका विचार करते हुए उसने लिखा है कि "सीरियाके जंगलोंमें एक पौधा होता है जिसका नाम "जरीची" है और वह एक प्रकारका गुलाब है। उसका विस्तार 'डेसी' (डिज़लैण्ड का एक फूल) की भाँति है और लगभग वैसाही फूल भी उसपर आता है। सूखी ऋतुओंमें जब उसकी जड़ों पर पानी की भिड़ी रेतके सदृश हो जाती है तो उस गैलीली भूमि की पकड़से अपने को बचानेकी उसे चिन्ता होती है और वह अपने जड़ आदि समस्त अवयवोंको गेंदकी भाँति वायुके वेगमें घुमाता है। वायु उसे मैदानोंकी ओर उड़ा ले जाती है। वह उस समय तक बराबर चलताही जाता है जबतक किसी आर्द्र और आश्रयदा भूमि को नहीं प्राप्त कर लेता है। वहाँ पहुँचकर उसकी जड़ उस भूमि को पकड़ लेती है और इसप्रकार वह पौधा हराभरा होकर फिर फूलित होने लगता है। इसी जरीची गुलाबके पौधेकी तरह मानुषी जीव अपनी जड़ खींचकर प्राकृतिक बन्धनसे अपनेका पृथक् कर लेता है और आकाशस्थ सूर्य नी जिसे वह विशेषता से अपने जीवनका हेतु समझता है, जब सान्ध्यकार हो जाता है तब भी जीव दृढ़ता और प्रसन्नतासे एक सज्जन गेंदके रूपमें

Know thyself by Mr. H. Solly.

† The Drama of Life and Death by Edward Carpenter p. 97 and 98.

होकर भावी घटनाओंके घटित होनेकी प्रतीक्षामें धूमता है।^१ उपर्युक्त विवरण देते हुए कारपेन्टरने जीवको “अनादि” “अमृत्यु” “मनुष्योंका जीव” “पशुओंका जीव” आदि कहा है। वह इस अनादि आत्माको एक प्रकारका “विश्वात्मा” अथवा “जातीयात्मा” कहता है। जीवात्मा अति सूक्ष्म, निरवयव और चरित्रके अत्यन्त सूक्ष्म अणुओंसे युक्त है। उसकी सत्ता अपने मित्रोंमें हम अच्छी तरह देखते हैं परन्तु फिर भी उसका वर्णन कर देना अत्यन्त कठिन है*। मृत्युके बाद जातीय (विश्व) आत्मा असंख्य प्राणियोंकी उत्पत्तिका हेतु होता है। नष्ट होने-वाली वस्तु केवल दृश्य शरीर है जो मृत्यु होनेपर छिन्न-भिन्न हो जाता है। फिर मनुष्य और पशुओंके जीवोंके सम्बन्धमें बतलाया गया है†। “पशुओं और मनुष्योंके प्रारम्भिक जीवन में विश्वात्मा” ही होता है और प्रत्येक व्यक्तिगत जीव उसीसे ठीक उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जैसे एक वर्धमान वृक्षकी कलियाँ उत्पन्न होती हैं और मृत्यु होनेपर उसी (विश्वात्मा) में लीन हो जाती हैं। जातीय आत्माके सिवाय और कोई व्यक्तिगत जीव जो मरनेके बाद बाकी रहता हो, उत्पन्न नहीं हुआ है”।

मानुषी जीवनके सम्बन्धमें कारपेंटर लिखता है‡ कि “जातीयात्मा इन सब अवस्थाओंमें व्यक्तिगत अनुभवोंको एकत्र करना, व्यक्तियोंके संयुक्त ज्ञानसे ज्ञानवान् होता और उनको

* Do p. 85.

† Drama of Life and Death p. 237.

‡ Drama of Life and Death p. 228

गणित स्मृतियोंसे सम्पन्न होता हुआ, आगे बढ़ता है। फिर अनुभव हैं ज्ञान और स्मृतिके उन्नत क्षेत्र, जो अपरिच्छिन्न और औत्सर्गिक रूपमें होते हैं कभी-कभी तीव्र, परिच्छिन्न और विस्तृत रूपमें होकर उस उत्पन्न व्यक्तिगत जीवोंमें चले जाते हैं। इस तरहसे एक प्रकारका आंशिक पुनर्जन्म होता है जिसके द्वारा स्मृति-रेखा और स्वभाव उत्तरोत्तर कालीन व्यक्तियों में जाते हैं और शायद इसी हेतुसे जीवके अमरत्व और पुनर्जन्म सम्बन्धी विचार निकाले जाते हैं। फिर एक और स्थानपर लिखा गया है कि “उत्तरोत्तर कालमें उन्नत होता हुआ व्यक्तिगत जीव दिव्यरूप ग्रहण करता है और अन्तःवर्ती सूक्ष्मशरीरको इतना उन्नत करता है कि वह फिर नष्ट नहीं होता। इसप्रकार इस उन्नत अवस्थाको प्राप्त करके मानुषी जीव पूर्ण रीतिसे पुनर्जन्मोंको प्राप्त होता है और अब वह अमर हो जाता है और जातीय आत्मामें लय होकर अब उसके नष्ट होनेका भय बाकी नहीं रहता”। कारपेन्टर जीवात्माकी सत्ता प्राकृतिक शरीरसे भिन्न मानता है*। इसप्रकार जीवका विवरण देते हुए पुस्तकके अन्तमें कारपेन्टरने आधुनिक पाश्चात्य अध्यात्मवादियोंकी शिक्षाको स्वीकार किया है, अर्थात् जीवोंका फोटो लेना, उनको तोल लेना आदि विषयोंको वह सम्भव मानता है, उसने जीवकी तोल ३ से एक औंस तक लिखी है। उसने फिर एक प्रोफेसरकी परीक्षाके आधारपर लिखा है कि “मानुषी जीवकी तोल एक औंसका कोई भाग है परन्तु

उसका रूप उसको आवृत्ति और लम्बाई-चौड़ाई मनुष्य शरीरके सदृश है और जब वह पूर्णताको प्राप्त कर लेगा तो उसकी ऊँचाई बहुत होगी अर्थात् वह ३५ से ३८ मील † तक पृथ्वी पर ऊँचा होगा”

कृष्ण वैज्ञानिक जीवन और शरीर दोनोंका
 उर्वर आत्माके
 रसमय प्रकाश प्राकृतिक आधार कलतरसको बतलाते हैं। यह
 तत्त्व केवल ४ मूल द्रव्योंका संयोग है। उन
 मेंसे तीन वायव्य द्रव्य हैं (१) नाइट्रोजन (२) हाइड्रोजन (३)
 ऑक्सिजन और चौथा द्रव्य कार्बन है। प्राणियोंके समस्त
 अवयव त्वचा, मांस, अस्थि, बाल, रीढ़, नाखून, दांत, मांस
 पेशी, शिरा धमनी इत्यादि इन्हीं मूल द्रव्योंमें बनते हैं।
 किसी-किसी अवयवके निर्माणमें थोड़ी मात्रामें गन्धक, फास्-
 फोरस चूना अथवा सिलिका (silica) भी प्रयुक्त होते हैं। ये
 समस्त अवयव प्राणियोंके भोजन वनस्पति और फल अथवा
 सिंह आदि मांसाहारियोंके भोजन मांससे बनते हैं। परन्तु ये
 भोज्य पदार्थ और समस्त वे अवयव जो प्राणियोंके शरीरोंमें
 और वे सज्जन वस्तुएँ जो वनस्पतियोंमें उत्पन्न होती हैं, उन
 सबके उत्पादन, यही ४ मूल द्रव्य होते हैं। इन मूल द्रव्योंमें भी
 प्रोफेसर एफ. जे. एलनके मतानुसार नाइट्रोजन मुख्य है। ये द्रव्य
 यद्यपि जड़ और निश्चेष्ट हैं परन्तु शक्तिके सञ्चारसे रासायनिक
 संयोगमें सम्मिलित हो जाते हैं।

नाइट्रोजन और हाइड्रोजनका संयोगही अमोनिया (Ammonia)
 है, यह अमोनिया अन्तरिक्षमें विद्युत् प्रवाहसे प्रकट होता है।

† तब दो तुलसीदास जी का कुम्भकरण सम्बन्धी वर्णन
 एक सा ही प्रतीत होता है।

अमोनिया और नाइट्रोजनके कतिपय अम्ल जो उपर्युक्त भांति उत्पन्न होते हैं, इन्हींके द्वारा नाइट्रोजन वनस्पतियोंका आहार होता है और वनस्पतियोंके द्वारा प्राणियोंके आहारका रूप ग्रहण करता है।

वनस्पतियाँ अपने पत्तोंके माध्यमसे ऑक्सजन और कार्बन डीऑक्साइड (Carbon Dioxide) को लकड़ीका भाग बनानेके लिए ग्रहण करती हैं। और जड़के द्वारा पानी जिसमें अमोनिया और नाइट्रोजनके कुछ अम्ल सम्मिलित रहते हैं ग्रहण करती हैं और इन्हींसे वनस्पतियोंमें कलत्तरस उत्पन्न होता है जो फिर समस्त वनस्पतियोंके निर्माणका हेतु बनता है। इन नाइट्रोजनसे बने मिश्रित वस्तुओंके लिए वनने से पूर्व अपेक्षित शक्तिके मिल जानेसे उनकी उत्पत्तिगगन मण्डलमें होकर वर्षाके द्वारा प्राणियोंमें पहुँच कर उच्च जीवित प्राणियोंकी उत्पत्तिकी लम्बी शृंखलाका प्रारम्भ करते हैं। नाइट्रोजनके शीघ्र प्रभावित होनेके गुण, और परिवर्तन होनेकी और उसके रुजहानकी न्यूनाधिकता, पृथ्वीतलके शीतोष्णकी मात्रा पर निर्भर हैं। प्रोफ़ेसर एलनके मतानुसार यदि पृथ्वीतलकी शीतोष्ण मात्रा जमे हुए पानी ७२ और १०४ के मध्यमें हो तो अत्यन्त आवश्यक घटनाएँ घटित और प्रदर्शित होती हैं परन्तु यदि यह मात्रा इन अंकोंके इधर-उधर हो जाय तो जीवनका गति मार्ग सर्वथा बदल जायगा।

जीवनके लिए एक और आवश्यक वस्तु गगनमण्डलमें कार्बनिक एसिड गैसका उचित मात्रामे होना है और इसीसे स्थावर और जंगम जगतमें प्रारम्भमें अंगार तत्व (कार्बन) ग्रहण किया जाता है। वृक्षोंकी पत्तियाँ नभमण्डलसे कार्बन गैसको लेती हैं और एक और विलक्षण द्रव्य “क्लोरोफ़िल

(Chlorophyll) से हरा रंग । इसप्रकार उपलब्ध कार्बनसे वृक्षोंका शरीर बनता है और सूर्य किरणोंके प्रभावसे ऑक्सिजन उनके शरीरोंसे बाहर हो जाता है । पत्तियाँ नभमण्डलसे कार्बन गैसको पृथक् करके “ग्रहण करनेमें आकाश (ईश्वर) की तरंगोंकी सहायता लेती हैं—यह कार्य आकाश तरंग ही कर सकती है ।

* चेम्बरकी इन्साइक्लोपेडिया (Article—“Vegetable Physiology in Chamber's Encyclopaedia”)में पत्तियों के इस कार्यका विवरण इसप्रकार दिया गया है:—“हमने देख लिया है कि किसप्रकार हरी पत्तियोंको भिन्नवायु, जल और विलीन लवण प्राप्त होते हैं और किसप्रकार वे आकाश तरंगोंको ग्रहण कर सकती हैं । इन तरंगोंका गतिमय शक्ति शुद्ध निरेन्द्रिय मिश्रनोंको विषम सेन्द्रिय मिश्रितोंमें परिणत करनेके लिए प्रयुक्त होती हैं जो श्वासोच्छ्वास क्रियासे पुनः अमिश्रित द्रव्योंके रूपमें वे परिवर्तित हो जाती है और संप्राभावशक्ति गति प्रयोगके (Kinetie) अवस्थामें जीवित शरीरों के अवयवोंमें वे आहार परिवर्तन कार्य जीवित कोशोंमें तीव्र गतिके साथ होते हैं । कललरस और कोशमार्ग-द्वारा यह प्रवाह, प्रत्येक दशामें और कोशोंके मध्यमें भी जो कललरसके मध्यमसे संयुक्त हो जाते हैं, प्रवाहित होता है वायु जो श्वासोच्छ्वास और परिपाक क्रियाओंमें प्रयुक्त हुआ और छोड़ दिया गया, भीतर और बाहर फैल जाता है और कललरस

कललरसके सम्बन्धमें डाक्टर वालेसका मत इस प्रकार है:†
 इस प्रकार जब थोड़ी मात्रामें गन्धक अणुओंके संस्थानों
 में सम्मिलित हो जाती है तो एक वस्तु जिसका नाम “प्रोटीड”
 है, बन जाती है।

प्रोफेसर डब्ल्यू. डी. हेलीवर्टन (W. D. Haliburton)
 के कथनानुसार यह प्रोटीड जंगम और स्थावर योनियोंका जीवि-
 तरस संस्कार शालाओंमें तय्यार होती है और और कललरसमें
 उपस्थित वस्तुओंमें सबसे अधिक आवश्यक है यह अणु (प्रोटीड)
 अत्यन्त विषम है और ५ और अधिकतर ६ या ७ मूल द्रव्योंसे
 मिश्रित है। इस मिश्रितका ठीक ठीक समझ लेना आवश्यक था
 परन्तु समझनेके लिए जो उद्योग किया जा रहा है उसकी
 चाल धीमी है। जब यह पूर्णतया समझ ली जावेगी तो शरीर
 विज्ञानके अनेक अन्धकारमय पहलुओं पर प्रकाश पड़ जायगा।
 कललरसमें एक अद्भुत गुण यह भी है कि जिससे वह अनेक
 सूक्ष्म भूतों का, जीवित प्राणियोंके भिन्न-भिन्न शरीर अवयवोंमें,

का प्रत्येक प्रदीप्त अथवा अप्रदीप्त कण संज्ञोभका केन्द्र बन
 जाता है। विशुद्ध कललरस भी इसीप्रकार कतिपय लाल किरणों
 और विशेषकर वनफर्शई किरणोंसे, जो “क्लोरोफिल” से संयुक्त
 होती हैं, प्रभावित होता है। ये किरणें विशेषकर लाल किरणों
 कार्बोनिक एसिडको पृथक् करके कार्बनको पचाती और ऑक्सिजन
 का वहिष्कार करती हैं”।

† Man's place in the Universe by Dr. A. P.
 Wallace p. 163.

विलीन कर देता है, और आवश्यकतानुसार उन्हें विशेष-विशेष कार्योंके लिए मांडूमांडू भी देता है ।

“सिलिका” वनस्पति परिवारके तनोंमें, चूना और मैंगनेशिया जंगम योनियोंकी हड्डियोंमें, लोहा रक्तमें पाया जाता है । उन चार मूलद्रव्योंके सिवाय जो कललरसके निर्माता हैं, अथि-कांश जङ्गम और स्थावर योनियोंके किसी-किसी भागमें गन्धक फ़्लूओरस, क्लोराइन, सिलिकन, सोडियम, पोटैशियम, कैल्सियम, मैंगनेशिया और लोहा पाए जाते हैं । और फ्लोराइन (Fluorine) आयोडीन (Iodine) ब्रोमिन (Bromine) लिथियम (Lithium) ताँबे, मैंगनीज़ (Manganese) और एलुमिनिय (Aluminium) भी विशेष अवयवोंमें न्यूनांशमें पाए जाते हैं, इन मूलद्रव्योंके अगु कललरसके प्रवाह-द्वारा जहाँ-जहाँ अपेक्षित होते हैं पहुँचा दिए जाते हैं और वहाँ जाकर ये सब जीवित प्राणियोंके शरीरके अवयवोंको ठीक उसी प्रकार निर्माण करते हैं जैसे ईंट, पत्थर, चूना, लोहा, लकड़ी, शीशा आदिके उपयोगी स्थानपर पहुँचनेसे एक भवन बन जाता है* । परन्तु यह वान ध्यानमें रखनी चाहिए कि इसप्रकार प्राणी और वनस्पतियोंके शरीर बनते नहीं किन्तु बढ़ते रहते हैं । उनका प्रारम्भ तो केवल एक घटकसे होता है । यह घटक भी शरीरके किसी भाग विशेषका निर्माण नहीं करता किन्तु समस्त शरीरको यथा भागशः बढ़ाया करता है । यह कार्यभी नमी और उष्णतासे प्रभावित कललरसका बनलाया जाता है

* इसी प्रकारका विवरण प्रोफ़ेसर एफ़. जे. एलनके पुस्तक (What is life by F. J. Allen) में भी दिया हुआ है ।

परन्तु आधुनिक शरीर वैज्ञानिक नहीं बतला सकते कि किस प्रकार एक घटक अथवा वीर्याणुसे समस्त शरीर बन जाता है। यह अभी अलौकिक कार्य समझा जाता है, यद्यपि उन्हें आशा है कि भावप्यमें यह गुप्त भेद खुल जायगा।

एक घटकसे शरीर बननेके अलौकिक कार्यसे ‘क्लर्क मैक्सवेल’ (Clerk Maxwell) का चकित कर दिया। वे कहते हैं कि पुनरुत्पादक घटकमें लाखों करोड़ों अणुओंके समान की तो जगह ही नहीं है जिनकी अपेक्षा शरीर निर्माणमें होती है। फिर किसप्रकार एक ही घटकसे समस्त शरीर बन जाता है? इस पर प्रोफेसर केंड्रिक (Pr. Kendrik) कहते हैं कि अब यह कल्पना कर लेनी चाहिए कि उत्पादक घटकमें अरबों ऐन्द्रियिक अणु रह सकते हैं। यह विवरण है जो अर्वाचीन शरीर वैज्ञानिक जड़ मूल भूतोंके चेतनामय शरीरके उत्पन्न होनेको देते हैं। परन्तु यह विवरण उससे अधिक समझमें आने योग्य नहीं है कि जो १७ वीं शताब्दीमें पत्थरकी कुलहाड़ी अथवा वमूला बनानेका दिया गया था, और वह इन प्रकार है:— १६४० ई० में “एड्रियानस टोलिस” (Adrianos Tollis) ने कुछ चित्र पत्थरके मामूली वमूलों और हथौड़ोंके देकर कहा था कि पदार्थ शास्त्रज्ञोंने बतलाया है कि आसमान पर उनका प्रादुर्भाव इस प्रकार हुआ बिजलीकी सदृश, चमकती हुई वाष्प गोलके रूपमें बादलोंमें शब्दतरंगसे एकत्रित हुई, अति वेगवती उष्णता उसके साथ थी। उसके साथ आर्द्रताके मेलने उसके हिलते हुए शुष्कभागको नोकीला बना दिया और दूसरा भाग जो स्थिर था घना हो गया। इस प्रकार वह उत्पन्न शस्त्र वाष्पके

प्रबल दबावसे बादलोंपर चोट मारता है और उस चोटका परिणाम यह होता है कि शब्द और प्रकाश अर्थात् गरज और चमक उत्पन्न होती है * ।

इसप्रकारकी तुल्यवृत्तियोंसे अचेतन मूलद्रव्योंसे चेतनामय शरीर उत्पन्न नहीं हो सकता । सच तो यह है कि अभी तक वैज्ञानिक इस बातको भी अच्छी तरह नहीं समझ सके हैं कि वृक्षोंमें जल (रस) किस प्रकार ऊपर चढ़ता है † फिर उससे कहीं गहनतम विषयों, शरीरके विकास, जीवन पुनरुत्पत्ति आदिको समझने और व्याख्या करनेकी तो कथा ही क्या ?

डॉक्टर वॉलेनने उपर्युक्त विवरण देकर परिणाम यह निकाला है कि चेतनाका प्रकृति आधार नहीं है किंतु वह प्रकृतिसे स्वतन्त्र है और उसकी उन्होंने कई श्रेणियां भा वतलाई हैं ‡ ।

* टाइगरने अपने पुस्तकमें इस कहानीको उद्धृत किया और उसका मज़ाक उड़ाया है । वह पूछता है कि ये शस्त्र (बमूला या कुल्हाड़ी) गोल तो नहीं होते । इसके सिवाय उनमें एक सूत्र भी होता है वह कैसा हो गया ? (Early History of Mankind by E. R. Tylor p. 227.)

† विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बोसने हालमें अपने एक आविष्कार-द्वारा बतलाया है कि किसप्रकार पानी वृक्षोंकी जड़ोंसे शाखाओंमें पहुँचता है ।

‡ World of life by Dr. Wallace.

सर ऑलिवर लॉज चेतनाका विचार करते हुए सर ऑलिवर लॉज ने लिखा है § कि वह वस्तु जो शरीरको प्रेरित करती है स्नायु है, स्नायुमें आवश्यक शक्ति है जिसको सोंद्योग करने के लिए उत्तेजना अपेक्षित होती है जिससे वह प्रकट उद्योग में परिणत होकर प्रयोजनीय कार्यमें लगे। जीवित शरीरमें स्नायुको प्रेरित करनेके लिए धमनि सूत्रोंका दुर्बोध प्रबन्ध है। वे जब अनेक प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारसे स्वयंसेव उद्दीप्ति होते हैं तो स्नायुओंमें संकोच पैदा करते हैं। धमनि सूत्रोंका उद्दीपन, आकस्मिक घटनाओंमें होता है या किसी यान्त्रिक कार्य से या वैद्युत अंकुशके उत्पन्न किए हुए उत्तापका परिणाम है, वैज्ञानिक इसे नहीं बता सकते। कहा जाता है कि जीवित प्राणियों में ऐसे मध्यवर्ती घटकसे जैसा कि मस्तिष्ककी त्वचा अथवा धवल द्रव्यमें है शक्तिके प्रभाव-द्वारा अधिक सार्थक और सुगम रीतिसे यह उद्दीपन उत्पन्न हो सकता है। धमनि सूत्रोंके उद्दीपन करनेका सरल साधन सूत्र ग्रन्थि घटकको भी बतलाया जाता है, जिससे स्नायुओंमें संकोच और उस संकोचसे क्रिया उत्पन्न होती है। परन्तु यह तारतम्य भी वैज्ञानिकों-द्वारा पूर्णतया समझा नहीं गया है। इसको सिद्ध स्वीकृति कर लेने पर भी प्रश्न यह होता है और यही वस्तुतः प्रश्न है कि वह क्या वस्तु है जो मस्तिष्कको उत्तेजना देती है और चाहती है कि अमुक कार्य किया जावे, और जो शक्तिका मस्तिष्कके उचित कोषसे मुक्त करती है। इसके लिए कहा जाता है कि कुछेक सूत्रोंमें तो वह वस्तु केवल

§ Survival of man by Sir Oliver Lodge P. 13 and 131.

प्रतिक्रिया है। अर्थात् वह आंशिक उत्तेजना है जो गोलाकार ज्ञान तन्तुओंके अन्तसे आती है। और वही सूत्रग्रन्थि घटक अथवा पृष्ठास्थि (रीढ़) तन्तुओंको उत्तेजित करती है जहाँसे वह उत्तेजना निकटवर्ती तन्तुओं और फिर बहिर्मुख धमनि सूत्रोंमें पहुँचती है। परन्तु यह स्पष्ट है कि इन अवस्थाओंमें चेतना उत्पन्न नहीं होती। आत्मिकतत्त्वका अभाव ही रहा। इन सब कार्य्य प्रणालीमें न तो ज्ञानकी उत्पत्तिका कहीं चिन्ह है न कहीं इच्छाका निशान। अचेतन प्रतिक्रियाको एक ओर छोड़कर परिमित रूपसे मेरा विचार यह है कि एक आत्मिकसत्ता चित्तमें है जो यह सब कार्य्य करती है। वही इच्छाको प्रभावित करती हुई निश्चय करती है कि अमुक कार्य्य तो तदनुकूल बाह्य जगत में कार्य्य होता है। उसी सत्ता-द्वारा उत्तेजना आत्मजगत्से प्राकृतिक जगतमें पहुँचती है और वही शक्तिको मस्तिष्कके केन्द्रमें मुक्त करती है”।

“यद्यपि यह कार्य्यप्रणाली इस समय गुप्त रहस्य-सी है परन्तु प्रत्यक्ष रीतिसे काममें आ रही है और बुद्धि पूर्वक है और अवश्य अन्तको एक दिन ज्ञानकी कोटिमें आवेगी” मस्तिष्क और चित्तपर विचार करते हुए लॉज कहते हैं कि “कहा जाता है कि मस्तिष्क ही चित्त है। यह इस लिए कहा जाता है कि यदि मस्तिष्क नष्ट हो जावे तो प्रतीत होता है कि चित्त भी नष्ट गया परन्तु वह नष्ट नहीं होता वह बाक़ी रहता है। अवश्य वह प्रकट नहीं होता क्योंकि वह यन्त्र (मस्तिष्क) जिसके द्वारा वह प्रकट हुआ करता था, नष्ट हो गया। मस्तिष्क चित्तका कार्य्यसाधक यन्त्र है .. जब यह अनुभव कर लिया

जावे कि चेतना शरीरकी अपेक्षा उच्चतर वस्तु है और शरीरसे पृथक् और उसकी चलानेवाली है तब स्वाभाविक रीतिमें मान लेना पड़ेगा कि शरीरके नष्ट होनेपर वह बाकी रहती है। यह कल्पना युक्तियुक्त न होगी कि मरने पर जीव भी मर जाता है। जीवकी आयु कतिपय वर्षोंकी ही नहीं है जिनमें वह पृथ्वी पर जीवित रहता है। जीव बिना शरीरके भी रह सकता है इसलिये यह निश्चिन्त है कि जीव अमर है। यह बात मैं वैज्ञानिक हेतुओंके आधार पर कह रहा हूँ *।

एक और स्थान पर लॉजने लिखा है कि “मैं इस बात के निश्चय करनेमें दोषमुक्त हूँ कि (मरनेके बाद शरीररहित जीवों और हमारे मध्य सहान सहयोग होना सम्भव हो गया है... मरनेके बाद जीवके बाकी रहने साक्षियाँ चिरकालसे मिलती चली आ रही हैं और अब स्वयं चलदयन्त्रके तैयारीसे वे निश्चय का रूप ग्रहण कर रही हैं पहली और एक मात्र बात (इन परीक्षाओंसे) जो हमने सीखी है वह जीवका अमरत्व है... स्मृति, शील, स्वभाव, शिक्षा, चरित्र और प्रेम ये सब और कुछ अंश तक आत्मावाद और लाभालाभका अनुराग जो मनुष्यके आवश्यक गुण हैं मरनेके बाद भी जीवमें रहते हैं †।

* Science and Religion by Seven Men of Science p. 23-25.

† Survival of man by Sir Oliver Lodge p. 231-235.

इङ्गलण्डके प्रसिद्ध वैज्ञानिक क्रूक्स सन् १८९७ सर विलियम क्रूक्स ई० में “ब्रिटिश ऐसोसिएशन” के सभापति Sir William (Crookes) निर्वाचित हुए थे। यह अधिवेशन त्रिस्टल में सङ्गठित हुआ था। अपने भाषणके अन्त में क्रूक्सने कहा था “मेरे वैज्ञानिक जीवनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध कार्य्य वह है जो मैंने गत वर्षोंमें आत्मिक खोजोंके सम्बन्धमें किया था। ३० वर्ष बीते कि मैंने अपना परीक्षण वृत्तान्त प्रकाशित किया था, जिसका फल यह था कि हमारे वैज्ञानिक ज्ञान की सीमासे बाहर एक शक्तिकी सत्ता है, जो ज्ञानपूर्वक प्रयुक्त होती है परन्तु यह ज्ञान उस साधारण ज्ञानसे विभिन्न है, जो मरणधर्म्मा प्राणियोंमें पाया जाता है। मेरे जीवन की इस घटनासे वे भलीभांति परिचित थे जिन्होंने यहां सभापति होनेके लिए मुझे निमंत्रित किया है” फिर इस बातको कहते हुए कि ये विषय (आत्माकी खोजसे सम्बन्धित) वैज्ञानिक अधिवेशनोंमें वादानुवाद किए जानेके अयोग्य नहीं हैं। उन्होंने अपने भाषणमें कहा कि “मैं अपने पूर्व प्रकाशित कथनों पर अब भी दृढ़ हूँ। उसमेंसे कुछ निकालना नहीं अपितु जोड़ना अवश्य है, मेरा विचार है कि अब मैं कुछ और अधिक देखता हूँ और जो कुछ विलक्षण दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं उनमें अविरोधकी झलक दिखाई देता है अर्थात् उन अव्यक्त शक्तियों और वैज्ञानिक नियमोंके मध्यमें कुछ लगाव-सा प्रतीत होता है” उन्होंने “परचित्तज्ञान” को निश्चित नियम बतलाने हुए कहा कि “विचार और प्रतिभाएँ एक मस्तिष्कमें बिना इन्द्रियों के माध्यमके परिवर्तित हो सकती हैं” उन्होंने टिण्डलके उस

कथनका प्रतिवाद करने हुए जो उसने २३ वर्ष पहले इसी एसो-
मियशनकी सभापतिकी स्थितिमें किया था कहा “एक उत्कृष्ट
पूर्वाधिकारिने इसी गद्दीमें आधांपित किया था कि उसने अनुभ-
वात्मक साक्षियोंकी सीमाका उल्लंघन करते हुए प्रकृतिमें समस्त
पार्थिव जीवनकी शक्ति और योग्यता होनेके विन्हा पाए, जो
अबतक उसकी अप्रकट शक्तियोंके अज्ञानमें गुप्त थे।” परन्तु
मैं इस कथनको उलटकर कहनेको तर्जिह देता हूं अर्थात्
मैं “जीवनमें समस्त प्रकृतिकी शक्ति और योग्यताओंको
पाता हूं।”

इंग्लैण्डके वैज्ञानिक सभाहमें जो
डॉक्टर जे. ए. फ्लीमिंग १९१४ ई० में मनाया गया था, दूसरे
दिनके व्याख्याता डॉक्टर फ्लीमिंग थे। इन्होंने इस व्याख्यान
में कहा था कि “हमें पूर्णतया निश्चय है कि ब्रह्माण्डमें एक सवि-
चार आत्मा है, जो स्वरूपमान जगतका चित्र रचनामें पूर्व अपने
मस्तिष्कमें रखती थी।” परन्तु जब हम न केवल बाह्य
जगत पर दृष्टि डालते हैं किन्तु मानुषी सत्ताको भी लक्ष्यमें
रखकर अपने हृदयोंको देखते हैं, तब हमको प्रतीत होने लगता
है कि न केवल ब्रह्माण्ड और उससे ऊपर एक चेतन शक्ति है,
किन्तु एक शक्ति है, जो हमारे चरित्रोंसे सम्बन्धित है। परन्तु
वह शक्ति हमारी (शरीरकी) नहीं है। इस बातको हम सब
जानते हैं कि हमारे भीतर एक शक्ति है जो हमको धर्माधर्मका
ज्ञान देती है और जो हम कुछ काम (अधर्मके) करते हैं तब
हमको व्याकुल बना देती है और जब कुछ दूसरे प्रकारके काम
(धर्म-सम्बन्धी) करते हैं हमको हर्षित कर देती है। इसी

शक्तियों हम अन्तःकरण कहते हैं। . . . दृढ़ताम यह बात प्रकट होती है कि परमात्माके द्वारा उमके अलौकिक निष्पन्न मनुष्योंमें, जब वे पाप करना चाहते हैं प्रकट होते हैं, और उन्हें उस बुराईमें वचानोंकी प्रेरणा करते हैं ... यह सिद्ध करनेके लिए यह पर्याप्त है कि नास्तिकवाद दर्शन और विज्ञान दोनोंके विपरीत है। सर फ्रांसिस बेकनने अपने एक निबन्ध में जो नास्तिकवाद पर लिखा गया था कि थोड़ा दार्शनिक ज्ञान मनुष्यको नास्तिकवादकी ओर झुकाता है। परन्तु जब वह दर्शन शास्त्रकी गहराईमें पहुँचता है तब उसका झुकाव धर्मकी ओर होने लगता है। जब मनुष्य निकटवर्ती प्रकट हेतुओंको देखता है तो कभी-कभी उन्हींमें चक्कर लगाता रह जाता है और आगे नहीं जाता परन्तु जब तक उनके भीतर घुसकर उनमें स्थित हेतुओंकी अलौकिक लड़ीको देखता है जो परस्पर सम्बन्धित और संयुक्त हैं तो उसे विवश होकर ईश्वरकी शरण लेनी पड़ती है”... .. व्याख्यानका उद्देश्य यह प्रकट करता है कि विज्ञान और धर्म न परस्पर विरुद्ध हैं न उनमें शत्रुता पाई जाती है और यह भी नहीं कि उन्हें एक दूसरेकी उपेक्षा हो किन्तु उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है अथवा यों कहना चाहिए कि एकही विस्तृत राज्यके दो विभाग हैं, एक बाह्य-विभाग है जिसमें मनुष्य प्राकृतिक नियमों और उनके ऊपर एक उत्कृष्ट शक्तियों देखता है। दूसरा आन्तरिक विभाग है, जिसमें मानुषीआत्मा दिखलाई देती है जो स्वाभाविक और साधारण ज्ञानकी अपेक्षा उच्चज्ञानसे काम ले रही है और जब आवश्यकता होने पर सहायतार्थ अपना हाथ फैलाती है तो सर्वनियन्तासे नक्त और सहायता प्राप्त करता

प्रोफेसर डब्ल्यू. बी.
ब्रादमर्ल
है" * भौतिक अथवा रासायनिक विज्ञान मनुष्यको सन्तुष्ट नहीं कर सकता। इनसे बढ़कर और कोई वस्तु है। हममेंसे प्रत्येक के हृदयमें कोई वस्तु है जो उच्च और मनुष्यका मनुष्य बनाने-वाले उद्देश्योंकी ओर प्रेरित करती है। परन्तु प्रत्येक वस्तुकी विज्ञानसे व्याख्या नहीं की जा सकती, वह वस्तु प्राकृतिक जगत् से ऊपरकी वस्तु ... और वही जोवात्मा है †

प्रोफेसर एडवर्ड हल
(Prof. Edward Hull)
"भूगर्भविज्ञान जगत्के शासक और रचयिताकी सत्ता प्रमाणित करता है। ६० वर्ष अर्थात् अपने शिक्षा कालसे अब तक भूगर्भविद्याका मैं बराबर ऐसा ही समझता और मानता चला आ रहा हूँ। भूगर्भविद्या बतलाती है कि एक समय था जब किसी प्रकारका जीवन पृथ्वीपर नहीं था। परन्तु अब जीवन मौजूद है इसलिए अवश्य उसका प्रारम्भ किसी समय हुआ होगा। इसके साथ ही यह बात भी है कि अभावसे अभाव ही उत्पन्न होता है इसलिए अवश्य जगत्के रच-यिताकी सत्ता माननी पड़ती है और उमीन प्राकृतिक जगत्

* Science and Religion by Seven men of Science p. 50-56.

† Science and Religion by Seven men of Science p. 70

रक्षा और जीवनको प्रादुर्भूत किया यह भी स्वीकार करना पड़ता है”* ।

प्रोफ़ेसर जी सिम्स
बुडहेड “यह असम्भव है कि एक भी प्रमाण इस बातका दिया जा सके कि जीवित तत्व अजीवित तत्वसे उत्पन्न हुआ, जहाँ जीवन नहीं है वहाँ जीवन पैदा भी नहीं किया जा सकता ... जगत्की कार्यप्रणाली पर नज़र डालते हुए जो अनुभव मुझे प्राप्त हुआ है यह है, कि समस्त इच्छाओं, शासकशक्तियों, बुद्धि और आत्मामें व्यक्तिगत भाव पाया जाता है। यदि हम छोटेसे बड़ी सब वस्तुओंके सम्बन्धमें विचार करें तो हमको एक शक्ति जो संसारमें सबसे बड़ी शासक और नियामक है, पाई जाती है परन्तु उसमें व्यक्तित्व पाया जाता है जीवन के प्रारम्भकी खोजमें हम यह विश्वास नहीं खो सकते कि जगत में एक सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ ईश्वरकी सत्ता है” †

प्रोफ़ेसर मिलर नय
थाम्पसन जो सच्चाई समस्त संसारके मतोंमें पाई जाती है और वास्तवमें सच्चाई है वे यह हैं—

(१) मनुष्यसे बड़ी शक्ति ईश्वरकी सत्ता, (२) आगामी जीवनकी हम्ती. (यद्यपि आमतौरसे नहीं), जीवकी अमरता,

Do.

p. 77 and 78.

† Science and Religion by. Seven men of Science p. 108-109

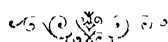
(३) मनुष्योंमें सदभाव न्याय, दया, कर्तव्यपरायणताका होना । इसी प्रकार विज्ञानके निश्चित नियम ये हैं:--

(१) प्रकृतिका अविनाशी होना, (२) कतिपय रासायनिक मौलिकोंकी नित्यता (३) रासायनिक संघातका स्थिर मात्रामें होना (४) शक्तिकी नित्यता --इस प्रकार धर्म और विज्ञान दोनोंकी सच्चाइयोंमें कहां विरोध है ?...

स्थिरता जिस प्रकार प्राकृतिक वस्तुओंमें पाई जाती है उसी प्रकार उसका आध्यात्मिक तत्त्वों (जीव+ईश्वर) में होना अनिवार्य है * ।



आठवां अध्याय



(भारतीय विद्वानोंके मत)

पहला परिच्छेद

— — — — —

(दर्शनकार)

गौतम न्यायदर्शनके रचयिता गौतममुनि ईश्वर, जीव और प्रकृतिकी स्वतन्त्र और नित्य सत्ता स्वीकार करते हैं। उनके दर्शनका सार यह है कि जीवको दुःख मिथ्या-ज्ञानसे प्राप्त होते हैं, मिथ्याज्ञानसे दोष, (राग और द्वेष) दोषसे प्रवृत्ति, (सकाम कर्मकी इच्छा) प्रवृत्ति, (सकाम की इच्छा प्रवृत्तिसे जन्म और जन्मसे दुःख उत्पन्न होते हैं। इस लिए मिथ्याज्ञानका उच्छेद करना चाहिए, मिथ्याज्ञानका नाश तत्त्वज्ञानसे होता है इसलिए न्यायाचार्य जीवको तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी शिक्षा देते हैं। वह तत्त्वज्ञान इन १६ पदार्थोंके ध्यार्थ ज्ञानसे प्राप्त होता है:—

(१) प्रमाण, प्रमाणके साधनका नाम प्रमाण है, वह ४

प्रकारका है:—(१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) उपमान और शब्द (आलोपदेश)

(२) प्रमेय, प्रमाणका विषय, प्रमेय १० तरहके हैं:—

(१) आत्मा (२) शरीर (३) इन्द्रिय (४) अर्थ (पंचभूत और उनके गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) (५) बुद्धि (६) मन (७) प्रवृत्ति (८) दोष (९) प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म) (१०) फल (कर्मफल) (११) दुःख (१२) अपवर्ग (मुक्ति)

(३) संशय ।

(४) प्रयोजन ।

(५) दृष्टान्त ।

(६) सिद्धान्त (विषयका निश्चय) ।

(७) अवयव न्यायका एक देश ।

(८) तर्क ।

(९) निर्णय—परपक्षदूषण और स्वपक्षस्थापन-द्वारा विषय का निश्चय ।

(१०) वाद ।

(११) जल्प ।

(१२) वितण्डा ।

(१३) हेत्वाभास ।

(१४) छल ।

(१५) जाति ।

(१६) निग्रहस्थान—जिसमें विवादीकी प्रतिपत्ति या अप्रतिपत्ति प्रकाशित हो ।

इन पदार्थोंके तत्त्वज्ञानके लिए न्यायदर्शनमें जो कुछ कहा गया है उसे मूल रूपसे तीन भागोंमें विभक्त कर सकते हैं (१) न्यायांश, (२) तर्कांश, दर्शनांश । न्यायांशमें पञ्चावयव * न्यायकी गवेषणाभरी आलोचना दिखाई पड़ता है, तर्कांशमें जल्प, वितण्डा और छल आदिका विचार किया गया है, दर्शनांशमें आत्मा, परमात्मा, शरीर, मन और इन्द्रियोंकी आलोचनाकी गई है ।

* न्यायके जगद्गुरु गौतममुनिने न्यायके पांच अवयव उद्घरण थे । अरस्तूने इन्हीं पांच अवयवी अनुमान (Syllogism) को संक्षिप्तरूप देकर ५ की जगह ३ कर दिया है । दोनोंकी तुलना इस प्रकारकी जा सकती है: —

गौतम	अरस्तू
१ प्रतिज्ञा यह पर्वत बन्दिमान् है ।	...
२ हेतु क्योंकि यह धूम्रवान् है ।	...
३ उदाहरण जो धूम्रवान् है वह बन्दिमान् होता है } जैसे चूल्हा ।	सब धूम्रवान् पदार्थ बन्दिमान् होते हैं ।
४ उपनय यह भी धूम्रवान् है ।	यह पर्वत धूम्रवान् है ।
५ निगमन इसलिए वह पर्वत भी बन्दिमान् है ।	इस लिए यह पर्वत बन्दिमान् है ।

अतः स्पष्ट है कि एक समय अरस्तूने न्यायका पाठ गौतमके न्यायदर्शनसे ग्रहण करके यथामति फेरफारके

निदान इन साधनोंसे तत्त्वज्ञान, और उससे मुक्ति प्राप्त होती है।

कणाद वैशेषिक दर्शनके रचयिता कणादमुनि ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनोंकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हुए अनेक दर्शनमें उन विधियोंको बतलाते हैं जिनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करके मनुष्य अभ्युदय (लोकोन्नति) और निःश्रेयस, (मोक्ष) प्राप्त करता है। वह तत्त्वज्ञान द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष, और समवाय इन पदार्थोंके साधर्म्य और वैधर्म्यके ज्ञानसे उत्पन्न होता है।

(१) द्रव्य नौ प्रकारका है:—(१) पृथ्वी (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) आकाश (६) काल (७) दिशा (८) आत्मा (९) और मन।

(२) गुण १७ प्रकार के हैं:—(१) रूप (२) रस (३) गन्ध (४) स्पर्श (५) संख्या (६) परिमाण (नाप तोल आदि) (७) पृथक्त्व (८) संयोग (९) वियोग (१०)

साथ उसे यूनानमें प्रचलित किया था। अरस्तूमें बहुत पहले न्यायदर्शनका रचा जाना, पाइथागोरस और सिकन्दरका हिन्दुस्तानमें आना, और यहाँसे बहुतसे पुस्तकों और विद्वानोंका ले जाना, आदि घटनाएँ उपर्युक्त परिणाम पर पहुँचनेके लिए पर्याप्त हैं। इस विषयमें पं० गंगाप्रसाद एम. ए. लिखित “तर्क शास्त्र निगमन” की भूमिका पढ़ने के योग्य है।

परत्व (११) अपरत्व (१२) बुद्धि (१३) सुख (१४) दुःख (१५) इच्छा (१६) द्वेष (१७) प्रयत्न ।

(३) कर्म ४ प्रकारके हैं—(१) उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना) (२) अवक्षेपण (नीचे फेंकना) (३) आकुञ्चन (४) प्रसारण (५) गमन ।

(४) सामान दो प्रकारका है—(१) पर (२) अपर । गाय, बैल, घोड़ा आदि (अपर) की अपेक्षा पशु (पर) हैं ।

(५) विशेष—जिस असाधारण धर्मसे निरवयव पदार्थके परस्पर भेदकी सिद्धि हो वही विशेष है ।

(६) समवाय—नित्यसम्बन्ध । इन्हीं ६ पदार्थोंके तत्त्वज्ञान से म्वतंत्र जीवकी मुक्ति हो सकती है यह वैशेषिककारका प्रदर्शित मुक्तिपथ है ।

कपिलका मत

कपिलमुनिने अपने रचें सांख्यदर्शन-द्वारा जीवकी स्वतंत्र-सत्ता स्वीकार करते हुए, उसका परम कर्तव्य—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकारके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति, ठहराया है । यह कर्तव्य प्रकृति और पुरुषकी सत्ता

✽ प्रशस्तपाद तथा अन्य टीकाकारोंने इन १७ गुणोंमें सूत्रमें आए 'च' शब्दके आधारपर ७ गुण और मिलाकर गुणोंकी संख्या २४ बतलाई है । वे ७ गुण ये हैं:—(१) गुरुत्व (२) द्रव्य (३) स्नेह (चिकनापन) (४) संस्कार (५) धर्म (६) अधर्म (७) शब्द ।

का यथार्थ ज्ञान होनेपर जीवको पुरुष और प्रकृतिकी सत्ताओं का पार्थक्यज्ञान प्राप्त और दृढ़ हो जाता है। इस ज्ञानके दृढ़ होने से वह प्राकृतिक बन्धनोंमें छुट कर मोक्ष प्राप्त करता है। उपर्युक्त यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिए २५ तत्वका ज्ञान जीव को प्राप्त करना चाहिए। उन २५ तत्वोंमें २४ (विकार-सहित) प्रकृति और पञ्चीसवाँ पुरुष है।

१ - मन, रज और तमकी साम्यावस्था रूप	
मूल प्रकृति	...
२-महत्तत्त्व	
३-अहंकार	२४ विकृति
४-पञ्चतन्मात्रा और मन सहित १० इन्द्रियाँ	-----
५-पञ्चस्थूलभूत	योग २४

२५ वाँ पुरुष न प्रकृतिमें है न विकृतिमें, किन्तु दोनोंमें पृथक् अप्राकृतिक सत्तावाला है* दोनों पुरुष और प्रकृति नित्य हैं। प्रकृति चेतन और अचेतन समस्त जगतका उपादान कारण नहीं है। किन्तु केवल अचेतन जगतका उपादान कारण है।

* सांख्यके गन्धिनाभों विशेष गीतिमें प्रकृति और उसके विकारोंकाही वर्णन करना था इसलिए उसने ईश्वर और जीव दोनोंको, जिनका विशेष वर्णन करना नहीं था, एक कौटिमें रख कर पुरुष नाम दिया है।

परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ॥ सांख्य सूत्र १७६ ॥

प्रकृतेराद्योपादानता ॥ सांख्य ६ ॥ ३२ ॥

प्रकृतिको अव्यक्त भी कहते हैं इसलिए कि यह प्रलय अवस्थामें व्यक्ति नहीं होती, किन्तु अप्रकट अवस्थामें रहती है। जब सृष्टि उत्पन्न होती है तब वह व्यक्त (प्रकट) अवस्थामें होती है। प्रलय होने पर फिर अप्रकट अवस्थामें हो जाती है। यह चक्र भी (जगत्की उत्पत्ति और फिर प्रलय होनेका) प्रवाहसे अनादि है। प्रकृति परिणामवाली है। यह परिणाम उससे नित्य सम्बन्धित रहता है। फिर प्रलयमें क्यों परिणाम दिखाई नहीं देता, इसका उत्तर वाचस्पति मिश्रने सांख्यतत्त्व कौमुदीमें इस प्रकार दिया है (देखो १६ वीं कारिका का भाष्य) कि प्रकृतिके परिणाम दो तरहके होते हैं (१) सदृश परिणाम, (२) विसदृश परिणाम। प्रलयकालमें सदृश परिणाम रहता है अर्थात् सत्त्व सत् रूपमें, रजस् रजस्के रूपमें और तम तमोरूपमें परिणत हो जाता है।

पतंजलिका मत।

पतंजलिमुनिने ईश्वर जीव और प्रकृति तीनोंकी नित्य और स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की है। और अपने रचे हुए योगदर्शन-द्वारा उन उपायोंको बतलाया है जिससे जीव ईश्वरको प्राप्त करके मुक्ति लाभ कर सकता। पतंजलिने सांख्यके २५ तत्त्वों को स्वीकार करते हुए अपने दर्शनकी रचना की है इसलिए योगदर्शनका दूसरा नाम “सांख्यप्रवचन” भी है।

ईश्वरके सम्बन्धमें पतंजलिने लिखा है कि क्लेश, कर्म, विपाक (कर्मफल) आशय (वासना) के सम्बन्धसे रहित है।

वह सर्वत्र है और कालकृत सीमासे बद्ध नहीं है और पूर्व आभासों का भी ज्ञानदाता है ।

क्रोश पाँच तरहके होते हैं (१) अविद्या (मिथ्याज्ञान) (२) अस्मिता (अन्तःकरण और अत्नमामें अभेदकी प्रतीति) (३) राग (मोह, अनुराग) (४) द्वेष (घृणा, विराग) (५) अभिनिवेश (मृत्यु आदिका भय) ।

कर्म—दो प्रकारका है (१) शुभ (२) अशुभ ।

विपाक—कर्मफल तीन प्रकारके हैं (जन्म, आयु और भाग)

आशय—कर्मफलके अनुरूप वासना ।

ईश्वर नित्यमुक्त और आनन्दस्वरूप होनेसे इन क्रोशोंसे रहित है, परन्तु जीव इनमें अन्त रहता है । पतंजलिने मुख्यतया यही बतलाया है कि जीव किस प्रकार इन क्रोशोंसे छुटकर मुक्त हो सकता है । उसी प्रकारका नाम योग है । योग चित्तकी वृत्तियोंके निरोधको कहते हैं । चित्तकी ५ अवस्थाएँ हैं । (१) “क्षिप्त” जिसमें चित्तकी वृत्तियाँ अनेक सांसारिक विषयोंमें गमन करती हैं । (२) “भूढ़” जिसमें चित्त कृत्याकृत्यको भूलकर पूर्ववत् हो जाता है । (३) “विक्षिप्त” जिसमें चित्त व्याकुल और अशान्त रहता है । (४) “एकाग्र” जिसमें चित्तकी वृत्तियाँ अनेक ओरसे खिंचकर एक ओर लग जाती हैं (५) “निरुद्ध” जिसमें चित्तकी वृत्तियाँ चेष्टारहित हो जाती हैं । प्रथम तीन अवस्थाओंमें योग नहीं हो सकता, अन्तिम दो अवस्थाओंमें योग हो सकता है । चित्तकी वृत्तियोंके एकाग्र होने से जो योग होता है उसे सम्प्रज्ञात और निरुद्ध होनेसे हुए योग को असम्प्रज्ञात योग कहते हैं ।

चित्तकी वृत्ति ५ प्रकारकी होती हैं—(१) प्रमाण, (२) विपर्यय (३) विकल्प (४) निद्रा, (५) स्मृति । इनमेंसे प्रमाण तीन प्रकारका है प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (शब्द प्रमाण) । “विपर्यय” मिथ्याज्ञानको कहते हैं । विपर्ययके न होने पर शब्द ज्ञानके प्रभावसे जो वृत्ति उत्पन्न होती है उसका नाम विकल्प है । (जैसे आकाश कुस्म इत्यादि) निद्रा सुषुप्ति को कहते हैं । अनुभूत विषयका स्मरण स्मृति है ।

चित्तके साथ जीवात्माका संयोग होनेसे वृत्तियोंका उदय होता है । पुरुष (जीव) स्वच्छ और निर्मल है । जिस प्रकार स्फटिक स्वच्छ होता है । परन्तु समीपवर्ती वस्तुके रूपको ग्रहण करके तदाकार हो जाता है । इसी प्रकार निर्मल जीवमें जब चित्त वृत्तियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं तब उनके साथ सारूप्य लाभ करके अपनेको दुःखी-सुखी मान लेता है । वास्तव में जीव दुःख—सुखादि द्वन्द्वोंमें राहत है । दुःखी-सुखी होना वृत्तिको उपरग मात्र है । योग-द्वारा जब इन वृत्तियोंका निरोध हो जाता है, तो फिर जीव अपने स्वच्छ स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है । चित्तकी वृत्तियोंका निरोधः—

(१) अभ्यास और वैराग्यसे होता है । इनके द्वारा योगी को श्रद्धा, उत्साह, स्मृति, एकाग्रता और विवेककी सहायतासे प्रथम सम्प्रज्ञात समाधिकी सिद्धि होती है । और बादको चित्त के पूर्णतया निरुद्ध हो जानेपर असम्प्रज्ञात योगकी सिद्धि होती है ।

(२) ईश्वरकी भक्तिसं भी समाधिकी सिद्धि होती है ।

सुखी-दुःखी पुण्यात्मा और पापीके विषयमें क्रम पूर्वक मैत्री करुणा, मुदिता और उपेक्षाकी भावनासे भी चित्त शान्त

होता है। और इसप्रकार चित्तमें एकाग्रता होकर स्थैर्यकी प्राप्ति होती है।

(३) प्राणायामसे भी चित्त स्थिर होता है।

(४) अथवा इन्द्रिय विशेषमें धारणा करनेसे भी चित्त स्थिर होता है। अर्थात् नासिकाके अग्रभाग, जिह्वामूल, नेत्रादि में धारणा करनेसे अलौकिक गन्ध, रस और रूपादिका अनुभव होता है, और यही दिव्य विषयज्ञान योगीकि चित्तको स्थिर कर देता है।

(५) हृदयपुण्डरीकमें धारणा करनेसे एक अपूर्व ज्योतिका प्रकाश होता है उससे भी चित्त स्थिर हो जाता है।

(६) अथवा वीतराग (विषयविरक्त=निष्काम) महात्माका ध्यान भी चित्त स्थैर्यका एक उपाय है।

(७) अथवा स्वप्न ज्ञान वा निद्राका अवलम्बन करनेसे भी चित्त स्थिर हो जाता है।

(८) अथवा अभिमत विषयका ध्यान करनेसे भी चित्त ठहर जाता है। साधनावस्थामें अभ्यास करनेसे योगीको कई अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, उन्हींको विभूति (सिद्धि) कहते हैं। तृतीय पादमें इन सिद्धियोंका वर्णन है, परन्तु समाधिरहित योगीके लिए यह सब विभूतियाँ ज्ञात होती हैं, परन्तु समाधियुक्त योगीके लिए यह केवल बाधक हैं। योगके ८ अंग

(१) यम=(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह (लोभ रहित)

(२) नियम=(१) शौच, (२) सन्तोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर प्रणिधान ।

(३) आसन—सुखमें बैठनेका नाम आसन है ।

(४) प्राणायाम—प्राणोंका संयम प्राणायाम है ।

(५) प्रत्याहार—इन्द्रिय निरोध करके फँसी हुई शक्तिके एकत्र करनेका नाम है ।

(६) धारणा—एक देशमें चित्तके ठहरानेको कहते हैं ।

(७) ध्यान—चित्तवृत्तिका एकाग्र प्रवाह ध्यान है ।

(८) समाधि—ध्यान परिपक्व होकर जब ध्येयाकारमें परिणत हो जाता है, और चित्तवृत्ति होंते हुए भी जब न होनेकी तरह भासमान होती है, तब उस अवस्थाको समाधि कहते हैं ।

समाधि दो प्रकारकी होती है, (१) सवीज (२) और निर्वीज ।

(१) सवीज समाधिमें चित्तका आलम्ब रहता है, उस अवस्थामें चित्तकी सूक्ष्म सात्विक वृत्तिका तिरोभाव नहीं होता है इसीलिए इस समाधिको “सम्प्रज्ञात” कहते हैं ।

(२) निर्वीज समाधिमें चित्तकी सम्पूर्ण वृत्तियोंका तिरोभाव होता है । केवल संस्कार शेष रह जाता है इसीलिए इस समाधि को “असम्प्रज्ञात” कहते हैं ।

सवीज समाधि ४ प्रकारकी होती है (१) सवितर्क (२) निर्वितर्क (३) सविचार (४) और निर्विचार । इन सबके निरुद्ध हो जानेमें निर्जीव समाधिकी सिद्धि होता है । इसीको कैवल्य सिद्धि कहते हैं यही मोक्ष कहलाती है । यही पातञ्जल-दर्शनका चरमलक्ष्य है, और यही जीवात्माकी अन्तिम गति है ।

जैमिनिका मत ।

जैमिनिने अपने रचने पूर्व मीमांसा-दर्शनमें अपना मत इस प्रकार दिया है:—“वेद नित्य निर्भान्त और अपौरुषेय ईश्वरीय ज्ञान हैं । वेदको किसी गनुष्यने नहीं रचा, कृषि केवल मन्त्र द्रष्टा हैं । वेद नित्य और स्वतः सिद्ध प्रमाण हैं । वेद जीवके लिए धर्म प्रतिपादन करते हैं वह धर्म यज्ञ है, यज्ञ ही से जीव अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त करता है ।”

“वेदमें पांच प्रकारके वाक्य हैं” (१) विभिन्न वाक्य जिनमें कर्तव्यरूप अज्ञात विषय ज्ञात हों (२) मन्त्र जिनमें यज्ञके उद्दिष्ट देवताओंके भाग देने आदिका विधान है और जो यज्ञ में उच्चारण किए जाते हैं ।*

* कुछेक व्यक्ति भ्रमवशान् पूर्व मीमांसासे ईश्वर विषय विवरण न हानेसे मीमांसाकार जैमिनिको निरीश्वरवादी समझ लेते हैं जेमें “विद्वन्मोद तरङ्गिणी” के रचयिताने मीमांसकोंका यह गिनाही होना लिख डाला है अथवा स० म० महेशचन्द्र न्यायरत्न अपने सम्पादित मीमांसा-दर्शनकी भूमिकामें लिखते हैं:—
“But, though so largely with the sacred scriptures of the Hindus and thus commanding a large share of their respect, oddly enough, it propounds a godless system of religion. The main drift of its arguments is to show that, if bliss be the fruit of good works, the

(३) नामधेय=प्रतीकोंके द्वारा विधेय विषयका संकोच करना ।

(४) निषेध अर्थात् अकर्तव्य विधायक वाक्य ।

(५) अर्थवाद अर्थात् विधिके प्रशंसक अथवा निषेधके निन्दक वाक्य ।

वेदके देवता स्वतन्त्र सत्तावाले व्यक्ति नहीं किन्तु मन्त्रात्मक हैं अर्थात् मन्त्रमें शब्दोंका जो क्रम, विषयकी दृष्टिमें रक्खा गया है वेही देवता हैं । मन्त्रमें शब्दोंके बदलने अथवा फेरफार करने और अशुद्ध उच्चारण आदिसे मन्त्र निष्फल हो जाते हैं” ।

मीमांसाकार इसप्रकार जीवके कर्तव्योंका वेदकी व्याख्या पूर्ण वर्णनके द्वारा विधान करते हुए उसकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते हैं ।

व्यासका मत ।

व्यासका मत उनके एवं वेदान्त-दर्शन, योग-दर्शन भाष्य और गतात्मनमें मिलता है । वेदान्त-दर्शन ही को उत्तर मीमांसा interposition of a Deity is simply superfluous.” परन्तु ये इन लोगोंके विचार, मीमांसाके नवीन ग्रन्थोंके आधार पर निर्मित हैं । जब जैमिनि वेदको अपौरुषेय कहता है तो किस प्रकार उसको अनीश्वरवादी कह सकते हैं । अपौरुषयका अर्थ ईश्वर-कृत ही समझा जा सकता है ।

: सूत्र कहते हैं † वेदान्त-दर्शनमें प्रधानतः पांच विषयोंका वर्णन है:—

- (१) जगत सत्य है या मिथ्या ?
- (२) जीव ब्रह्म से भिन्न है या नहीं ?
- (३) ब्रह्मका स्वरूप क्या है ?
- (४) ब्रह्म प्राप्तिका उपाय क्या है ?
- (५) ब्रह्म प्राप्तिके फल क्या हैं ?

वेदान्त दर्शनके टीकाकार मुख्यतः दो भागोंमें विभक्त किए जा सकते हैं:—(१) अद्वैतवादी (२) द्वैतवादी। विशिष्टाद्वैत-वादियोंको द्वैतवादके ही अन्तर्गत समझना चाहिए। इन टीका-कारोंने अपने-अपने विचारानुसूल वेदान्त सूत्रोंकी टीकाएँ की हैं। उन्हीं सूत्रोंको एकने द्वैत और दूसरेने अद्वैत परक समझा है। उपर्युक्त पांचों प्रश्नोंके उत्तर दोनों पक्षोंके टीकाकारों के, की हुई टीकाओंके अनुसार दिए जाते हैं:—

[१] वेदान्तसूत्र १।१।२ तथा अन्य भी सूत्रोंके आधार पर शंकर जगतका अभिन्न निमित्तावादान कारण ब्रह्मको प्रदर्शित करते हुए, जगत [प्रकृति] की स्वतन्त्ररूपतासे इनकार ही नहीं करते किन्तु उसे असत्य, काल्पनिक, भायासा विवृम्भणामात्र और मिथ्या बतलाते हैं और कहते हैं कि सत्त्वमें सांस्की तरह मीपमें चाँदीके सदृश, सूर्य किण्वमें जलकी अन्तिवत जगत

* देखो पाणिनिकृत आष्टाध्यायी ॥ ४ ॥ ६ ॥ १० ॥

† पश्चिमी विद्वान् वेदान्तदर्शनके रचयिता वादगायण को पराशर पुत्र कृष्ण द्वैपायन से भिन्न मानते हैं।

मिथ्या है उसका सत्य समझना भ्रम मात्र है। परन्तु इन्हीं सूत्रों के आधार पर द्वैतवादी अपनी गीताश्रोंमें जगत्का उपादान, कारण प्रकृति और निमित्त कारण ब्रह्मको बतलाते हुए प्रकृतिको नित्य भिन्न करते हैं और इसप्रकार जगत् मिथ्या कल्पित और अभ्यत्य नहीं किन्तु सत्य है।

(२) इसीप्रकार प्रकृतिकी तरह जीवकी स्वतन्त्र सत्तासे भी अद्वैतवादी इन्कारी हैं। उनका कहना है कि “जीवा ब्रह्मैव नापरः”। जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। “तत्त्वमसि” “अयमात्मा ब्रह्म” “अहम्ब्रह्मास्मि” इत्यादि उपनिषद् वाक्योंको अपने पक्षका पोषक बतलाने हैं। अनेक वेदान्त सूत्रोंके भाष्यमें इसी प्रकारके विचार शंकरसे प्रदर्शित किए हैं।

परन्तु द्वैतवादी जीवकी स्वतन्त्र सत्ता मानते और उसे न ब्रह्म और न ब्रह्मका अंग समझते हैं। उनका कहना है कि “तत्त्वमसि” (तू तत्त्व है) का वाच्यार्थ यह है कि ब्रह्मकी सत्ता से ही जीव प्रकट होता है। अद्वैतवाक्य “अयमात्मा ब्रह्म” (यह आत्मा ब्रह्म है) में आत्मा और ब्रह्म दोनों शब्द ब्रह्मके ही लिए प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार तर्कको संकेत करके कोई कहे कि यह प्रकाश पुत्र शून्य है इसीप्रकार आत्मानं इस वाक्यमें

* “तत्त्वमसि” वाक्यके अनेक अर्थ किए जाते हैं “वह तू है” अथवा “तत्त्वम” (तत्व) है इत्यादि “तत्त्वमसि” का अर्थ ‘उत्तम तू है’ कह भी हो सकता है और ऐसा होनेसे यह वाक्य अज्ञान परक नहीं रहता।

ब्रह्मका संकेत करके उसे ब्रह्म बतलाया गया है, क्योंकि आत्मा, जीव और ब्रह्म दोनोंके लिए प्रयुक्त होता है । तीसरे वाक्य “अहम् ब्रह्मास्मि” (मैं ब्रह्म हूँ) को वे जीवहीका वचन बतलाने हैं । जब जीव समाधिरूप होकर ईश्वरके प्रेममें इतना लीन हो जाता है कि धर्म्यके सिवाय ध्याता और ध्यान दोनोंके विचार उस से जाते रहते हैं, तब वह ब्रह्मके सिवाय कहीं कुछ भी नहीं देखता, उसे प्रत्येक वस्तुमें ब्रह्म-ही-ब्रह्म दिखलाई देता है “जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है” उसी समय वह अपनेमें भी ब्रह्म देखता और अनायास उपर्युक्त तथा और भी इसी आशयके वाक्यका जिनका उपनिषद्में संकेत है, उच्चारण करने लगता है । भाष्यवाच्य, रामानुजाचार्य आदि विद्वानोंके वेदान्त भाष्यमें जगह जगह द्वैतवाद और विधिद्वैतवाद परन्तु अर्थ वेदान्त सूत्रोंका किया हुआ मिलता है ।

[७] ब्रह्मका स्वस्व अद्वैततत्त्वमें समस्त विशेषगुण रहित निष्कला, निर्व्याधि और निर्गुण बतलाया जाता है । वह वचन लक्षण और निर्देशमें अतीत है, बुद्धिपर अगोचर है, अज्ञेय है, अमेय है, और अचिन्त्य है परन्तु द्वैतवादमें ब्रह्मका सर्वशेषरहित और स्वगुण भी कहा जाता है, अर्थात् वह अजर, अमर, आविनाशी, निराकारादि गुणोंके न होनेसे निर्गुण और न्यायकारी दयालु, सर्वदानन्द, सर्वशक्तिसमान, सर्वव्यापकादि होनेमें स्वगुण भी हैं । द्वैतवाद कहते हैं कि ब्रह्मको केवल गुण और विशेषगुणोंका माननेसे उसकी कोई हस्ती ही बाकी नहीं रहता । दोनों पक्ष वेदांतके सूत्रों पर ही निर्भर किए जाते हैं ।

[४] ‘ब्रह्म-प्राप्तिका उपाय क्या है’—इस प्रश्नका उत्तर

अद्वैतवादकी ओरसे यह दिया जाता है कि जीव वास्तवमें ब्रह्म ही है परन्तु माया (अविद्या अथवा उपाधि) ग्रस्त होनेसे वह अपनेको ब्रह्मसे भिन्न समझने लगता है; वस इस अविद्याका दूर कर देनाही एकमात्र ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन है । दूसरी ओर द्वैतवादी योगदर्शन प्रदर्शित अष्टांग योगको ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन बतलाते हैं और उपनिषदोंमें भी उसका जगह-जगह संकेत पाए जानेके दावेदार हैं ।

[२] “ब्रह्म प्राप्तिके फल क्या हैं,—अद्वैतवादमें ब्रह्मके साथ परमसाम्यही मुक्तिका लक्षण है और ब्रह्मके साथ एक्यही मुक्तिका स्वरूप है क्योंकि इस वादके अनुसार “ब्रह्मवित् ब्रह्मैव-भवति” । और इसप्रकार जीवके ब्रह्म हो जानेसे उसके (निषेध परक) गुण भी उसे प्राप्त होते हैं । परन्तु द्वैतवादमें प्रकृतिको सत्, जीवको सन्चित् और प्राप्नको सच्चिदानन्द कहा गया है, अतः जीवको ब्रह्मकी प्राप्तिसे आनन्दकी प्राप्ति होती है इस प्रकार जीव बन्धनोंसे मुक्त होकर ब्रह्मको प्राप्त करके उसके आनन्दादि गुणोंका उपभोग करता है परन्तु फिर भी वह जीव ही रहता है ब्रह्म नहीं हो जाता ।

इस प्रकार वेदांतके सूत्रोंसे दो प्रकारके सिद्धांत निकाले हुए देखेजानेसे, स्वाभाविक रीतिसे प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि सूत्रोंके रचियता यादरायण (व्यास) मुनिका वास्तविक सिद्धांत क्या था । वे जीवको ईश्वरसे भिन्न अथवा अभिन्न मानते थे । इस प्रश्न का उत्तर, विवादार्थपद वेदांत सूत्रोंको छोड़कर, व्यासमुनिवृत्त अन्य ग्रन्थोंके आधार पर सुगमतासे दिया जा सकता है । ऊपर कहा जा चुका है कि व्यासमुनिने योग-

दर्शनका भाष्य भी किया है । योगदर्शनके रचयिता पतंजलि मुनिका मत दिखलाते हुए प्रकट किया गया है कि योगदर्शनमें जीव और ईश्वर दोनोंको भिन्न-भिन्न माना गया है । उसी योगका भाष्य करते हुए प्रारम्भसे अन्त तक व्यास मुनि इसी सिद्धांत [द्वैतवाद] का समर्थन करते हैं । यदि व्यास अद्वैतवादी होते तो योगके भाष्यमें भी वे उसी प्रकारकी खीचातानी करते जैसी उन [वेदांत] के सूत्रोंके भाष्यमें शंकराचार्यजीने की है । परन्तु उन्होंने योगके २६ द्रव्यों [२४ प्राकृतिक+१ जीव+१ ईश्वर] के सिद्धांतकी पुष्टिकी है और इस प्रकार प्रकृति जीव और ईश्वर तीनोंकी स्वतन्त्र और नित्य सत्ता स्वीकारकी है । इस लिए यह स्पष्ट है कि वेदांत दर्शनमें भी उनका सिद्धांत द्वैत परक ही माना जा सकता है ।

दूसरा परिच्छेद

(१) चारवाक का मत ।

जड़वादका आविष्कार चारवाकसे भी कदाचित् पहले हो चुका था । चारवाकका मत है कि जो जो स्वाभाविक गुण हैं उन उनसे द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं, कोई जगत्का कर्त्ता [ईश्वर] नहीं है । जीवकी भी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । देह की उत्पत्तिके साथ वह भी उत्पन्न हो जाता है और देहके नाशके साथ ही उस [जीव] का भी नाश हो जाता है । न कोई स्वर्ग है न कोई नरक और न कोई परलोकमें जानेवाला आत्मा है और न वर्णाश्रमकी क्रिया फलदायक है । इस लिए जब तक जीवे तब तक सुखसे जीवे (जो घरमें पदार्थ न हो

तो) ऋण लेकर चेत करे । (यह ऋण देना न पड़ेगा क्योंकि) भस्मी भूत हुए देह का पुनरागमन (पुनर्जन्म) न होगा । फिर किससे कौन मांगेगा और कौन देगा) जो लोग कहते हैं कि मृत्यु समय जीव निकल कर परलोकका जाता है, यह मिथ्या है क्योंकि जो ऐसा होता तो कुटुम्बके मोहसे बद्ध होकर पुनः घरमें क्यों नहीं आ जाता * ।

(२) गौतम बुद्ध

बौद्ध धर्मके प्रवर्तक गौतमकी शिक्षा आत्मा सस्यन्धमें यद्यपि स्पष्ट नहीं तथापि उनके जीवन चरित्रमें ऐसी घटनाओंका उल्लेख मिलता है जिससे प्रकट होता है कि जीवात्माकी सत्ता और उसका अमरत्व उन्हें स्वीकृत था, उन घटनाओंमेंसे कुछका उल्लेख यहां किया जाता है:—

* अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथाऽनिलः ।

केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितः ॥ १ ॥

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।

नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥ २ ॥

यावज्जीवेसुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिवेत् ।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ ३ ॥

यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेयं विनिर्गतः ।

काश्मान्भूयो न चायाति बन्धुस्नेहं समाकुलः ॥ ४ ॥

(चारवका)

[१] बुद्धके अभिसम्बोधन की बात उठाते हुए उनके जीवन चरित्र में वर्णित है कि सम्प्रज्ञात और सजीव समाधिकी प्राप्ति-द्वारा उन्होंने सदवृत्तिका ग्रहण और अमृत का त्याग किया और निर्जीव समाधिमें स्थित गौतमका बोध प्राप्त हुआ जिसमें वे “जानि एमर” होगए, और सद्वृत्तों जन्मोंकी बात उन्हें स्मरण हुई कि मैं अमुक जन्ममें अमुक योनिमें पड़ा था, वहाँ मैंने अमुरु कर्म किया जिसमें फिर मैं अमुक योनिको प्राप्त हुआ इत्यादि” । “ये (बुद्ध) अपने मनमें कहने लगे कि संसारमें लोग उत्पन्न होते हैं, जीते हैं, मरते हैं फिर ऊँच नीच गतिको प्राप्त होते हैं”... “अब वे [बुद्ध] इन दुःखोंका निदान सोचने लगे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि जगमरण दुःखादिका कारण जन्म है जन्मका कारण धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप है जिसे “भव” कहते हैं “भवकी” उत्पत्ति उपादान अर्थात् कर्म से होती है उपादानका हेतु तृष्णा है वेदना ही इस तृष्णाका कारण है वेदनाकी उत्पत्तिका हेतु उन्हें अन्वेपण करनेमें स्पर्श (बौद्ध दर्शनोंमें इन्द्रियोंके विषयको स्पर्श कहते हैं) ही प्रतीत हुआ स्पर्शादिका कारण पडाय-तन अर्थात् स्पर्शादिके प्रधान अर्थात् भूत श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा घ्राण और मन ही हैं । इस पडायतनका कारण विचारपूर्वक नामरूप फिर नामरूपका कारण विज्ञान, विज्ञानका कारण संस्कार और संस्कारका कारण अविद्या, उन्होंने उत्तरोत्तर निर्धारित किया” ।*

* नागरी प्रचारणी सभा काशी प्रकाशित बौद्धका जीवन चरित्र पृष्ठ ९२, ९३ ।

[२] काशीको प्रस्थान करते हुए “अजपाल” वृक्षके नीचे बैठकर सांचने लगे कि “मैंने अनेक जन्म तपश्चर्या करके इस अपूर्व विशुद्ध बोधिज्ञानको प्राप्त किया है* ।

[३] बुद्ध काशीमें उल्लूकेलाकी ओर चले और एक जंगल [कापाम्यवन] में ठहरे । यहां ३० भद्रवर्गीय कुमार एक वेश्या को, जो उन्हें शराबके नशेमें छोड़ और उनका जो कुछ सामान हाथ लगा लेकर चलती बनी थी, ढूंढ़ते हुए बुद्धके पास गए और उनसे पूछने लगे कि भगवन् आपने किमी स्त्रीको जाते देखा है ? उत्तरमें बुद्धने पूछा कि तुम स्त्रीको तो ढूंढ़ रहे हो “क्या तुमने कभी अपनी आत्माको भी ढूंढ़नेका प्रयत्न किया है, तुम स्त्री जिज्ञासाको अच्छा समझते हो वा आत्मजिज्ञासा को ? ... उन्होंने उत्तर दिया कि आत्मजिज्ञासाको । इसपर गौतम ने कहा कि “यदि आत्माकी जिज्ञासा करना चाहते हो तो आओ मैं तुम्हें बताऊंगा” ।

“गौतमने उनसे दान और शीलकी महिमा वर्णन कर स्वर्ग की कथा कही फिर उन्होंने कामोंकी अनित्यताका वर्णन किया और सुकृतिकी ‘प्रशंसा की फिर निष्काम कर्मका वर्णन करते हुए दुःख समुदाय, निरांध और मार्गका उपदेश किया” †

[४] बुद्धने अपने भिक्षुओंको अपने ३७ मन्तव्योंका उपदेश करते हुये कहा कि “मैंने अपने आपको अपना शरण

* नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रकाशित बौद्धका जीवन चरित्र पृष्ठ १०१ ।

† बुद्धका जीवनचरित्र पृष्ठ १२१

बनाया है अर्थात् में अपनी आत्माके वास्तविक रूपमें स्थिर हो गया हूँ* यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणोंसे प्रतीत होता है कि बुद्धिको आत्माकी सत्ता स्वीकृत थी और उसका अमरत्व भी। अन्यथा उनके अनेक जन्मोंकी सम्भावना किस प्रकार हो सकती थी ? परन्तु बौद्धधर्मके पुस्तकोंके † अवगाहनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे जीवको केवल ज्ञानधारा मानते थे और निर्वाण हो जानेपर उसे नाशवान मानते थे। अवश्य उनकी मृत्युके कुछ वर्ष बाद ही यह प्रश्न उठने पर कि तथागत (बुद्ध) का आत्मा अवशेष है या नष्ट हो गया, बौद्धोंमें एक फ़िर्का ऐसा हो गया कि जो यह मानने लगा कि बुद्धका आत्मा नष्ट नहीं हुआ किन्तु अविशिष्ट है, दूसरे शब्दोंमें उस मतके लोगोंने आत्मा की सत्ता (अमरत्वके साथ) स्वीकार करली।

(३) जैनमत और आत्मा

मात तत्त्वोंमेंसे एक जीव ‡ हे और चेतनालक्षण वाला है। जीव ज्ञानादिके भेदसे अनेक प्रकारका है यथा ज्ञान-चेतना, कर्मचेतना, कर्मफल चेतना।

* बुद्धका जीवनचरित्र पृष्ठ २१९, २२०।

† बौद्धोंका, जीवकी सत्ताका ज्ञानधारारूपमें होनेका विश्वास, ह्यूमकी ज्ञानधारा (Stream of consciousness) का पूर्वरूप था उसका उत्तररूप ह्यूमके विचारके रूपमें है।

‡ सर्वार्थमिद्धि (तत्त्वार्थ वृत्ति) अध्याय १ सूत्र ४

निम्नांकित पांच भाव जीवके † निज तत्त्व हैं:—

[१] औपशमिक—अर्थात् कर्मकी निज शक्तिका, कारण वशात् उदय न होना उपशम है। जिस प्रकार निर्मली (औपधि विशेष) में जलके मैलका उपशम होना।

[२] क्षायिक—जलमें पंक (मैलपन) का अत्यन्ताभाव क्षय है।

[३] मिश्र—उपशय और क्षय दोनोंका होना मिश्र है।

[४] औदयिक—द्रव्यादि निमित्तमें कर्मफलका उदय।

[५] पारिणामिक—द्रव्यका आत्मलाभ अर्थात् निज स्वस्वकी प्राप्ति जिसमें हो वह परिणाम है जैसे स्वर्णके पीतादि गुण, कंकड कूडलादि पर्याय हैं, इसी प्रकार परिणामको जानो।

तीसरा परिच्छेद

(१) गौड़पादाचार्य ।

माण्डूक्यां उपनिषद् पर जो कारिका लिखी है उसमें गौड़पादजी ने अपना मत प्रकट करनेके लिए उसके ४ विभाग किए हैं। पहलेमें जिसका शीर्षक उन्होंने “आगमार्थाविष्करण” दिया है, उक्त उपनिषद्का भाव दिखलाया है।

इसमें (वैतथ्य नामक) में जगतके मिथ्या होनेका प्रकरण है अर्थात् समस्त दृश्य पदार्थ स्वप्नवत् मिथ्या है। हेतु उनका (स्वप्न दृष्टान्तके सिवाय) यह है कि जो पहले नहीं था और न पीछे रहेगा वह जलके बुलबुलके समान है उसकी वर्तमान सत्ता भी मिथ्या है।

† सर्वार्थ मिद्धि (तत्त्वार्थ वृत्ति) अध्याय २ सूत्र १

तीसरा प्रकरण जीवके मिथ्या होनेका है। वे कहते हैं जैसे रज्जुका निश्चय हो जाने पर सर्पका भ्रम दृष्ट जाता है उम्मी प्रकार परमात्माके जान लेने पर जीवात्मा होनेका भ्रम दृष्ट जाता है। मनुष्यादि प्राणियोंमें यदि वास्तवमें जीव नहीं हैं तो कौन देखता, सुनता, करता, धरता है। इसका समाधान आचार्य इस प्रकार करते हैं कि ब्रह्मके दो भेद हैं, एक जन्म लेकर संसारमें आनेवाला ब्रह्म, और दूसरा अजन्मा अर्थात् जन्म मरणसे रहित। उनका कथन है कि उत्पन्न होनेवाला ब्रह्म न उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मकी उपासना करता है, होनेवाले ब्रह्म ही की संज्ञा जीव है। और यह कि उत्पन्न होनेवाला ब्रह्म निम्न श्रेणीका है। जिसप्रकार घटाकाश, मठाकाश आदि भेद कल्पित हैं वास्तवमें आकाश एक ही है। इसी प्रकारके भेद भी कल्पित हैं।

चौथे प्रकरणका नाम “अलात शान्ति” है। इस विभागमें गौड़पादजीने न्याय, सांख्य आदि दर्शनोंमें विरोध दिखला कर उनका खण्डन किया है और अपना सिद्धान्त यह दिखलाया है कि न किसी वस्तु वा संसारकी उत्पत्ति होती है न प्रलय होती है न कोई बद्ध, न कोई दुखी, न दुखमें बचनेका कोई उपाय तथा न कोई मुक्त है न कोई मुक्तिका चाहनेवाला और न कोई चाहता है। कर्म, धर्म सब व्यर्थ है। सबका अभाव समझ लेना ही परमार्थकी सिद्धि है। गौड़पादके मतमें संसार में जो कुछ मरना, जीना, हंसना, गीना आदि दिखलाई देता है वह सब इन्द्रजाली (बाजीगर) के तमाशेके सदृश है, इनकी वास्तविकता कुछ नहीं। गौड़पादाचार्यके एक शिष्यके जगत

प्रसिद्ध शिष्य शंकराचार्यने उनके मतका गृह विस्तार किया था।

(२) शङ्कराचार्यका मत ।

अद्वैतवादके पापक श्री शंकराचार्य जी जीवकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते । उनका मत है कि “जीवाब्रह्मैवनापरः” अर्थात् जीव ब्रह्मसे पृथक् नहीं है किन्तु ब्रह्मका ही अंश है, जिस प्रकार अग्निसे चिनगारियां निकलती हैं उसी प्रकार ब्रह्मसे जीव निकला है।

ब्रह्म वाक्य और मनसे अतीत, विषयका विरोधा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ही जीव रूपमें अवस्थित है, “तत्त्वमसि” “अयमात्मा ब्रह्म” “सोऽहम्” “अहंब्रह्मास्मि” अर्थात् “तू वह है” “यह आत्मा ब्रह्म है” “मैं वह हूँ” “मैं ब्रह्म हूँ” इत्यादि वाक्य उपनिषदोंके वाक्योंके, जो भिन्न-भिन्न प्रकरणोंमें प्रयुक्त हुए हैं, छोटे-छोटे टुकड़े हैं। पूर्ण वाक्योंके साथ मिलकर ये वाक्य वे अर्थ देते हैं या नहीं जिन अर्थोंमें शंकर अथवा उनके अनुयायियोंने समझा है, इस विषयमें मतभेद है । अद्वैतवादके विपक्षियोंका मत यह है कि ये वाक्य अपनी असली जगह पर प्रकरणके अनुकूल अद्वैतवादका प्रतिपादन नहीं करते, परन्तु शंकरको यही अर्थ अभिमत हैं।

संसारमें हम जीवोंको सुखी देखते हैं दुःखी देखते हैं अनेक आपत्तियोंमें ग्रस्त पाते हैं, यदि जीव ब्रह्मांश और शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है तो फिर ये क्लेश क्यों ? इसका उत्तर शंकराचार्य यह देते हैं, कि शुद्धबुद्ध, मुक्त होने पर भी जीव, अविद्याके कारण देह आदि उपाधि के धर्म से संक्रामित हो जाता है। सुख

दुःख, काम, क्रोध, रोग, शोक यह सब देह और मनके धर्म हैं, जीवके नहीं; किन्तु जीव देहके संयोगके कारण अपनेको दुखी सुखी रोगी और शोकी समझता है, अनादि माया (अविद्या) के कारण सोया हुआ जीव जब जागता है तब वह जानता है कि वह स्वयं ही जन्महीन, निद्राहीन, स्वप्नहीन अद्वैत ब्रह्म है * ।

अच्छा तो वह (जीव) बन्धनका अनुभव क्यों करता है, गौड़पादाचार्यके शब्दोंमें शंकरका उत्तर यह है कि यह बन्धन, जीवकी कल्पना मात्र है वास्तविक बन्धन नहीं †

शंकरके मतमें जीवके लिए (क्योंकि वह ब्रह्मका अंश है) मुक्ति साध्य वस्तु नहीं, किन्तु सिद्ध वस्तु है । जबतक अज्ञान रहता है जीव अपनेको मुक्त नहीं समझता, अज्ञान दूर होने पर वह अपनेको मुक्त समझने लगता है । इसी विषयको समझनेके लिए एक उदाहरण बालक और उसके गले के हार से सम्बन्धित (“कण्ठचामीकरवत”) देते हैं कि बालकने भ्रमसे अपने हारको खोया हुआ समझ लिया था और उसे ढूँढ़ता फिरता था, परन्तु जब लोगोंने बताया कि हार तो तेरे गलेमें पड़ा है तब उसका भ्रम दूर हुआ । इसी प्रकार जीव भी अविद्याग्रस्त अपनेको बद्ध समझता है ज्ञान हो जाने पर मुक्त समझने लगता है ।

* अनादि मायया यदाजीवः प्रबुध्यते ।

अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥ (माडूक्य कारिका)

† न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च साधकः ।

न मुमुक्षुर्न वैमुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

शंकरको न केवल जीवोंका स्वतन्त्र सत्ता स्वीकृत नहीं है किन्तु वह प्रकृतिकी सत्तामें भी इनकारी है, इस विषयमें कि यह प्राकृतिक जगत जो प्रति सस्य हमारे सम्मुख है और हमें स्पष्ट रीतिसे उसमें स्थित प्रत्येक वस्तु दिखलाई देती है, शंकर का कहना है कि यह जगत मिथ्या है वास्तवमें इसकी कोई सत्ता नहीं है। इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए एक उदाहरण दिया जाता है कि जिस प्रकार रम्मीमें साँप और मीपमें चाँदीका भ्रम हो जाता है अथवा जिस तरह सूर्यकी किरणोंमें मरीचिका भ्रम होता है उसी तरह ब्रह्ममें जगतका भ्रम होता है। यह जो कुछ दिखलाई देता है सूर्य हो या चन्द्रमा पृथ्वी हो या अन्य नक्षत्र, पहाड़ हों या नदी मनुष्यके शरीर हों अथवा पशु पक्षियों के, ये सब कुछ भ्रम-ही-भ्रम हैं। इनमें वास्तविकता कुछ नहीं है। इस सब भ्रमको दूर करने और एकमात्र ब्रह्मको प्राणी और अप्राणी सभी का, “गणिशगिनेपादानकर्ता” माननेसे जीव ब्रह्म हो जाता है और फिर कलेश बाकी नहीं रहता।

(३) श्रीरामानुजाचार्यका मत।

श्री रामानुजाचार्य विशिष्टार्द्रतवादके पोषक हैं। वे ब्रह्मको “निखिल-हेय-प्रत्यनीक” (सब दोषों से रहित) और “कल्याण गुणगणाकार” (कल्याण गुणोंका आकर) मानते हैं। उनका मत है कि ब्रह्म ही जगतका उपादान, कर्ता और अन्तर्यामी रूप में जीवोंका नियामक है *। रामानुजके मतमें ईश्वर, जीव

* वासुदेवः परंब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः। भुवनानामुपादानं कर्त्ता जीवनियामकः॥

और जड़ ये तीन पदार्थ हैं। “द्रव्यं द्वे वा विभक्तं जड़मजड़मिति तत्र जीवेश भेदान्” अर्थात् द्रव्य दो प्रकारका है, जड़ और अजड़ (चेतन)। अजड़ (चेतन) में भी दो भेद हैं, जीव और ईश्वर। इनका कार्य विभाग इस प्रकार है:—चित (जीव) भोक्ता, आर्त्तन (प्रकृति) भोग्य और ईश्वर नियामकः ‘पुरुष प्रकृति और परमेश्वर ब्रह्म ही के ये तीन भाव हैं’ + प्रकृति और जीव स्वयन्त्र पदार्थ होने पर भी रामानुजके मतानुसार वे विल्कुल ईश्वरार्थीन हैं इसलिए वह उन्हें (जीव और प्रकृतिदोनों को) ब्रह्मका शरीर बनलाते हैं। ब्रह्मको जो “एकमेवाद्वितीयम्” उपनिषद्में कहा गया है रामानुजके मतानुसार इसका तात्पर्य यह है कि प्रलयकालमें जब प्रकृति और पुरुष (जीव) नाम रूप के भेद रहित होकर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं उस समय अव्याकृत अवस्थामें वह ब्रह्म “एकमेवाद्वितीयम्” है इसी बाद को सृष्टि करनेके लिए रामानुज ब्रह्मकी दो अवस्थायें बनलाते हैं, (१) कारणवस्था और (२) कार्यावस्था। प्रलय कालमें जब जीव और जड़ जगत ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं जिस समय उस सूक्ष्म दशामें उनके नाम रूपका विभाग मिट जाता है वही ब्रह्मकी कारणवस्था है। और सृष्टिमें जिस समय वे चित (जीव) और जड़ (प्रकृति) रूपमें विभक्त होकर व्यक्त स्थूल

ईश्वरः चिदचिन्नेति पदार्थत्रितयं हरिः । ईशरश्चित्त इत्युक्तो जीवा द्रश्यमचित पुनर्गति ॥

+ “भोक्ता जीवः भोग्यमितरं सर्वग्रेरिता अन्तर्यामी परमेश्वर एतन् त्रिविधप्रोक्तं ब्रह्मैव इति” ।

अवस्था में हाँते हैं वही ब्रह्मकी कार्यावस्था है। जगतका ब्रह्म में लीन हो जाना ही प्रलय कहलाता है। ब्रह्म जीव और प्रकृति का करण बतलाने पर भी रामानुजको जीव ब्रह्मकी अभिन्नता अभिमत नहीं है। उनका कहना है “देह और जीव जिस तरह एक नहीं हो सकते, जीव और ब्रह्म भी उसी तरह एक नहीं हो सकते” * कारणावस्थामें जीव ब्रह्ममें लीन हो जाता है इससे रामानुज जीवको नष्ट हुआ नहीं समझते किन्तु उस (जीव) को नित्य बतलाते हैं। और उसे अणु (एक देशी) भी मानते हैं इसलिये उन्होंने जीवका बहुत संख्यामें होना भी म्वीकार किया है। जीवकी मुक्ति होती है और कर्म (अविद्या) और “भक्ति रूपावन्नध्यान” (विद्या) इन दोनोंके समुच्चयसे होती है। ब्रह्मोपासना मुक्तिका साधन है।

(४) श्री माधवाचार्यका मत

(जन्म सम्वत् १२५४ वि०)

इनका नाम श्री आनन्दतीर्थ था परन्तु प्रस्थानत्रयी (१) उपनिषद्+(२) वेदान्त (३) गीताके भाष्यमें इनका नाम माधवाचार्य दिया गया है। यह शुद्ध द्वैतवादी थे। इनका मत जो इनके उपर्युक्त भाष्योंसे पाया जाता है, यह है कि ईश्वर और जीवको कुछ अंशोंमें एक और कुछ अंशोंमें भिन्न मानना परस्पर विरुद्ध और असम्बद्ध बात है। इस लिए दोनों (ईश्वर

* देखो वेदान्त दर्शन १।१। १ पर श्री भाष्य (सर्व दर्शन संग्रह)

और जीव) को सदैव भिन्न मानना चाहिए । इनमें पूर्ण अथवा अपूर्ण रीतिसे भी एकता नहीं हो सकती । परिणाम यह है कि ईश्वर और जीव दोनों पृथक्, स्वतन्त्र और निन्य सत्ता रखते हैं ।

(५) श्री बल्लभाचार्यका मत ।

(जन्म सम्वत् १५२६ वि०)

जीव और ईश्वर सम्बन्धी इनका मत. द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत सबसे पृथक् है । इनका मत है कि मायारहित शुद्ध जीव और ईश्वर एक ही वस्तु है, दो नहीं । परन्तु फिर भी शंकराचार्य प्रचारित अद्वैतवाद इनके मतमें ठीक नहीं है । जीवको बल्लभाचार्य अग्निकी चिनगारीके समान ईश्वरका अंश मानते हैं, और जगतको मिथ्या नहीं किन्तु सत्य मानते हैं । यही इनका अन्तिम मत इस पन्थको अद्वैतवादसे पृथक् करना है । इनका सविस्तर मत गीता संबंधी तत्त्वदीपिका आदिमें मिलता है ।

[६] श्री निम्बार्काचार्यका मत ।

[सम्वत् १२१६ वि०]

श्री निम्बार्काचार्यका मत भी बदान्त और गीता पर आश्रित है और श्री केशवभट्टने गीताकी तत्त्वप्रकाशिका टीका लिख कर सिद्ध किया है कि श्री निम्बार्कका मत ही गीताका वास्तविक मत है । जीव, ईश्वर और जगतके सम्बन्धमें इनका मत यह था कि ये दोनों परस्पर भिन्न हैं परन्तु जीव और जगत का व्यापार और अस्तित्व ईश्वरकी इच्छा पर निर्भर है और

परमेश्वर ही में जीव और जगतके सूक्ष्मतत्त्व रहते हैं । यही इनके मतका सार इन [निम्बार्क] की बृह वैदान्तकी टीकासे भी प्रकट होता है ।

चौथा परिच्छेद ।

[वेद और प्राचीन ऋषियों का मत]

भारतीय ऋषियोंकी शिक्षा, जिसका आधार सांगोपांग चार वेद (ऋग, यजु, साम और अथर्व) हैं, इस प्रकार है: — ईश्वर, जीव और प्रकृति (जगत का कारण) तीनों नित्य हैं * । इनमेंसे ईश्वर अपने आधीन जीव और प्रकृतिके द्वारा जगत रचता है । नियत अवधि तक, जगत विकास और ह्रासके नियमोंसे नियमित होकर, स्थित रहता तत्पश्चात् प्रलयको प्राप्त हो जाता है । प्रलयान्तरा समाप्त होने पर पुनः जगत्की रचना और उपर्युक्त भान्ति अवधिके बाद वह जगत पुनः प्रलय को प्राप्त होता है । इसप्रकार जगत्की उत्पत्ति और प्रलयका क्रम भी दिन रातके सदृश, नित्य है और अनादिकालसे इसी प्रकार चला आ रहा है और इसी प्रकार भविष्यत्वमें अनन्त काल तक भी चला जाता रहेगा † जीवात्मा कर्म करनेमें स्वतन्त्र परन्तु फल भोगनेमें पबन्त्र है । कर्मकर्ता जीव है और फलदाता ईश्वर है । जीवात्मा सकाम कर्म करते हुए आवागमन के चक्रमें रहता है । निष्कर्मद्वारा आवागमनके चक्र

* ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १६४ मन्त्र २० ।

† ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १९० मन्त्र ३ ।

से छूट कर नियत अवधि * के लिए मोक्षको प्राप्त होता है । अवधिके समाप्त होने पर पुनः संसारमें जाता और अमैथुनी सृष्टिमें उत्पन्न होकर फिर यथा कर्म और यथा ज्ञान भिन्न-भिन्न योनियोंको प्राप्त होता है † ।

योनियां स्थिर हैं । विकास-द्वारा एक योनिसे दूसरी योनि उत्पन्न नहीं होती किन्तु पृथक्-पृथक् योनियोंके अन्तर्गत विकास और ह्रास सिद्धान्त लागू होते हैं । इसप्रकार ईश्वर और जीव दोनों अप्राकृतिक, जगतके कारण और कार्य दोनोंमें पृथक् हैं, और स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं । ईश्वर जगतका निमित्त और प्रकृति जगतका उपादान कारण है । जीवको जबतक प्राकृतिक शरीर नहीं दिया जाता उस समय तक किसी प्रकाशका कोई कर्म नहीं कर सकता ।

शरीर तीन हैं (१) काष्ण-शरीर (२) सूक्ष्म शरीरके तीन भेद शरीर (३) स्थूल-शरीर । इनमेंसे स्थूल शरीर पांच स्थूल भूतोंसे बना है और वह यह हाथ-पांववाला दृश्य शरीर । सूक्ष्म शरीर १७ द्रव्योंका समुदाय है वे १७ द्रव्य ये हैं:— ५ प्राण+ ज्ञानेन्द्रिय+५ सूक्ष्म भूत (तन्मात्र) + मन + और बुद्धि । तीसरा कारण-शरीर प्रकृति रूप होनेसे सूक्ष्म शरीरमें भी सूक्ष्म होता है । इनको एक चित्र-द्वारा, प्रदर्शित किया जाता है:—

* मोक्षकी अवधि ८ वर्ष ६४ क्रोड़ वर्ष अर्थात् एक बार सृष्टि और प्रलयकी स्थितिके दोनवो ३३००० में गुणा करने से प्राप्त हो सकती है ।

† कठोपनिषद् ५।७।

स्थूल शरीर अथवा अन्नमय कोष ।

सूक्ष्म शरीर अथवा प्राणमय, मनोमय
तथा विज्ञानमय कोष,

कारण शरीर या

आनन्दमय कोष ।

“गुहाशय”

जीवात्मा

सुषुप्ति

स्वप्न

इन्द्रियों-द्वारा

सम्बन्ध

जागृत

प्राण-द्वारा

सम्बन्ध

जीवात्मा शरीरके मध्य गुहाशय (हृदयाकाश) में रहता है और परिच्छिन्न (एक देगी) होते हुए भी समस्त शरीर पर अधिकार रखता है । मृत्यु होने पर केवल स्थूल शरीर नष्ट होता सूक्ष्म और कारण दोनों शरीर जीवके साथ, स्थूल शरीरसे निकल जाते हैं और जीवात्माके साथ दरादर उस समय तक बने रहते हैं जब तक वह मोक्षका प्राप्त होता ।

अवस्थाएँ तीन हैं जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति ।
 अवस्थाएँ तीन भेद
 जीवात्माके स्वाभाविक गुण ज्ञान और कर्म
 (प्रयत्न) हैं । जब जीव शारीरिक साधनोंके द्वारा बाह्यजगत
 में कार्य करता है तब वह बहिर्मुख वृत्तिवाला होता है और जब
 स्वयं अपने स्वरूपका चिन्तन करता है तब उसकी अन्तर्मुख वृत्ति
 होती है, बहिर्मुख वृत्ति होनेपर जीव बुद्धिके मध्यमसे मनको
 प्रेरित करता, मन इन्द्रियोंकी प्रेरित करता और तब इन्द्रियाँ
 सांसारिक विषयोंको ग्रहण करती हैं । इस प्रकार विषयोंकी
 ग्रहणावस्थाका नाम जागृतअवस्था है । परन्तु जब इस लड़ीकी
 एक लड़ी टूट जाती है अर्थात् मन इन्द्रियोंको प्रेरित न करके
 स्वयं संकल्प विकल्पमय होता है तब उस अवस्थाको स्वप्नावस्था
 कहते हैं; परन्तु जब एकलड़ी और भी टूट जाती है और मनका
 कार्य भी बन्द रहता है और स्थूल शरीरकी भांति मनके-द्वारा
 सूक्ष्म शरीर भी निष्क्रिय रहता है तब उस अवस्थाको सुषुप्ति
 अवस्था कहते हैं । इस सबका तात्पर्य यह है कि स्थूल और
 सूक्ष्म शरीरोंके सम्बन्ध टूटनेसे सुषुप्ति अवस्था प्राप्त होती है ।
 एक नियम जो इन अवस्थाओंके विच्छेद होनेसे निकलता है
 वह यह है कि ज्यों-ज्यों ये सम्बन्ध अधिकतासे टूटते जाते हैं
 प्राणीकी सुख वृद्धि होती जाती है, अर्थात् जब मनुष्य जागृत
 अवस्थामें रहता हुआ सांसारिक धन्धोंमें व्यग्र रहता है उसके
 हृदयको बहुत थोड़ी मात्रामें शान्ति प्राप्त होती है परन्तु जब
 स्थूल शरीरका सम्बन्ध टूट जाता और प्राणी स्वप्नावस्थामें
 होता है तब शान्तिकी मात्रा कुछ बढ़ जाती है और पूरी मात्रा
 में शान्ति उस समय प्राप्त होती जब सूक्ष्म और कारण शरीर

का भी सम्बन्ध टूट जाता और मनुष्य सुषुप्ति (गह्रनिद्रा) में होता है ।

सम्बन्ध विच्छेदके शान्ति प्राप्त होनेके निम्न मृत्यु क्या है और क्या यह दुःखप्रद है ? को लक्ष्य है रखते हुए प्राण-द्वारा जो स्थूल शरीरके साथ जीवात्माका (सूक्ष्म शरीर-द्वारा) सम्बन्ध है उसके विच्छेदसे दुःख प्राप्त होगा यह कल्पना भी नहीं की जा सकती । सूक्ष्म शरीरोंका प्राण-द्वारा स्थूल शरीर से जो सम्बन्ध है उसीको जीवन और इसी सम्बन्धके विच्छेदका नाम मृत्युहै फिर यह सम्बन्ध विच्छेद भयावना नहीं हो सकता इसी लिए मृत्युसे डरना अनुचित और बृथा है । मृत्यु मनुष्यको शान्ति देकर पुनः काम करनेके योग्य बना देती है जिस प्रकार दिनके बाद रात्रि प्राणियोंको, और सृष्टिके बाद प्रलय, परमाणुओंको आगम देनेके लिए आती है उसी प्रकार मृत्युभी जीवन संग्रामकी शकावट दूर करके आगम देनेके लिए आती है । फिर शरीरोंका एक दूसरे प्रकारसे विभाग किया गया, और उन विभागोंका नाम कोश है, वे कोश पांच हैं:—

- पंच कोष (१) अन्नमय जो त्वचामे लेकर अग्नि पर्यन्त,
 (२) प्राणमय—जो पांच प्राणोंका समुदाय है,
 (३) मनोमय—जिसमें मन और पांच कर्मेन्द्रिय होते हैं
 (४) विज्ञानमय जो बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियोंका समुदाय है
 और (५) आनन्दमय कोश जिसमें प्रेम, प्रसन्नता और सख होते हैं । पहले कोशका आधार स्थूल शरीर और दूसरेमें तौथ तकका आधार सूक्ष्म शरीर और पांचवें कोशका आधार कारण

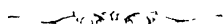
मय शरीर है । इन कोशोंसे प्राणी सभी प्रकारके लौकिक और पारलौकिक व्यवहार करता है । जीवात्मा यम और नियमादि अष्टांग योग * का सेवन करता है तो सांसारिक बन्धनों से छूट कर मोक्ष रूप परम स्वतन्त्रता का लाभ कर लेता है † यही मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य, यही संसार यात्रा की अन्तिम मंज़िल है ।



* देखो पतञ्जलि मुनि का मत ।

† इसी वेदोक्त शिक्षा का प्रचार श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया था और इसी शिक्षा का प्रचार उनका स्थानापन्न आचार्य समाज कर रहा है ।

पुस्तक में प्रयुक्त भाषा के अल्प प्रचालित शब्दों की अनुकमालिका अंग्रेज़ी शब्द सहित



अ

अक्षाग्र	Axle.
अंकुरवटक	Stem cell.
अंगारक	Carbon.
अचेतन अन्तःसंस्कार	Unconscious presentation.
अचेतनक्षोभ	Unconscious impulse.
अज्ञान स्मृतिवाद	Unconscious memory.
अनुमार रस	Albuminoid.
अदृश्यलोक	Hades.
अद्भुतशक्ति	Mysterious force.
अद्वैतवाद	New platonism.
अधिप्राकृत्य	Guidance.
अन्तःकरण	Conscience.
अन्तःकरणवृत्ति	Mental activity.
अन्तःकरणप्रवृत्तिवाद	Theory of Instinct.
अन्तःसंस्कार या भावना	Presentation or Idea.
अन्तःसंस्कार की शृंखला या	Concatenation of pre-

भावयोजना	sentations or association of Ideas.
अन्तःसाक्ष्य (स्वांतर्वृत्तिबोध)	Conscious perception.
अन्तर्दृष्टि	Internal perception.
अन्तर्मुख गति से	Centripetally.
अन्तर्मुख चेतना	Subjective or ego.
अपौरुषेय जीवन	Superhuman life
अभिसरण	Circulation.
अवशिष्टव्यक्ति जीवन का मूल्य	Survival value
अव्यक्त	Latent
असुर	Devil.
अस्थिराकृतिवाले अणुजीवों की सी गति	Amoeboid movement.
अहंकार (व्यक्तित्व)	Individuality.
आकर्षक आकुञ्चन	Gravitative shrinkage.
आकर्षण पार्थक्य	Gravitative separation.
आकाश	Ether.
आकुञ्चनगत	Phenomena of contraction.
आकुञ्चनशील पेशीघटक	Contractile muscular cell.

आंगिक आवेगशीलता	Organic irritability.
आण्विकशक्ति	Molecular force.
आदर्शवाद या प्राधान्यवाद	Idealism.
आत्मजगत्	Spiritual world.
आत्मरक्षा	Self preservation.
आत्मशक्ति	Soul Power.
आत्म स्वातन्त्र्य	Freedom.
आत्मिकाक्षेप	Psychical motive.
आनुरूप्य सम्बन्ध	Sympathetic link.
आनुषंगिक परिवर्तन	Concomitant variation.
	इ
इच्छा (राग)	Love.
इन्द्रियों के क्षोभ वा सम्वेदना	Sensation.
	उ
उत्कृष्ट चेतना	Subliminal consciousness.
उत्तर	Secondary.
उद्वेग	Emotion.
अन्नताणुजीव	Protists.
उपलब्धि	Perception.
	ए
एक तरल पदार्थ	Cosmic fluid.

कण	Millimetre.
कम्पन	Vibration.
कललरस	Protoplasm.
कललरस के सुतड़ों और विन्दियों के रूप	Form of protoplasmic- filaments and pig- ment spots.
कललाणु	Plastidules.
कीटवाद	Theory of Germ plasm.
कृति	Will.
कोष या घटक	Cell.
क्रियोत्पादक पेशीघटक	Motor muscular cell.
क्षुद्रजन्तु	Low animal.
	ग
गतिवाहक सूत्र	Motor nerves.
गतिशक्ति	Energy.
गत्यात्मकपेशी तन्तु	Motor muscular fibre.
गुण	Attribute.
ग्रहणक्षम	Perceptient.
ग्रहण सिद्धान्त	Natural selection.
घटक कोष	Cell.
घटकगत अन्तःसंस्कार	Cellular memory.

घटकगत स्मृति	Cellular presentation.
घटक जाल	Tissues.
घटकात्मा	Soul cell.
घ्राण से मिलती जुलती एक रासायनिक प्रवृत्ति	A chemical sense-acti- vity relating to smell.
चतुर्थ घटकात्मक करण	च Quadricellular reflex organ.
चित्त	Mind.
चित्त संस्कार	Impression.
चिन्तन	Reflection.
चेतना	Consciousness.
चैतन्याणु	Monad.
चैतन्याणुवाद	Monadology.
छाया	छ Phantasm.
जटिल चेतन अन्तःकरण	ज The intricate reflex mechanism.
अद्वैतवाद	Monism.
अलस्थचारी जन्तु	Amphibia.

जीवन	Life.
जीवनोष्णता	Animal heat.
जीव द्रव्य वाद	Mind-steef theory.
जीवात्मा	Soul.
जीवित अग्नि	Vital heat.
ज्ञानतन्तु (सम्बेदना सूत्र)	Nerves.
ज्ञानधारा	Stream of consciousness.
ज्ञान नियम	Catagories of understanding.
	त
तन्तुगतस्मृति	Histonic memory.
तन्तुजालगत अंतःसंस्कार	Histonic presentation.
तंतु प्रकृति	Neurotic temperament.
तर्क	Reason.
त्यागवाद	Stoicism.
	द
देव	Angel.
द्रव्य	Substance.
द्रव्य नियम	Law of Substance.
द्रव्यवैकृत्य धर्म	Metabolism.
द्विकल घटक	Gastrula.
द्वेष (निरक्ति)	Hatred.

धवलद्रव्य	Grey matter.
ध्वनि	Sound.
	न
निमित्त पुरुष	Automatist.
नियंत्रण	Control.
नियामक बुद्धि	Judgement.
निरपेक्ष	Absolute.
निर्देशक शक्ति	Directing agency.
निहित या अव्यक्त गतिशक्ति	Cell soul or the potential energy latent in both.
	प
परचित्तज्ञान	Telepathy.
परमात्मा	Super human volition.
पेशियां	Muscles.
पेशियों की गति	Muscular movement.
प्रकृति	Matter.
प्रकृति चेतनावद	Hylozoism.
प्रकृति स्थित नियम	Law of conservation of matter.
प्रतिक्रिया	Reflex, Reflective function or Reflex action

प्रति क्रिया का एक कण	Unicellular reflex organ.
प्रतिज्ञा	Thesis.
प्रति प्रतिज्ञा	Antithesis.
प्रतिवर्तक	Operator.
प्रसंगवाद	Occasionalism.
प्राजन्तु विज्ञान	Palaontology.
प्राणि वर्गोत्पत्ति विद्या	Phylogeny.
प्राण विद्या	Biology.
प्रासंगिक	Occasional.
	व
बहिर्मुख गति से	Centrifugally.
बहिर्मुख चेतना	Objective or non-ego.
बहुविधि	Multiform.
वाह्यकरण	Organ of sense.
वाह्यशून्यवाद	Idealism.
बीजकला	General layers.
बीजात्मा	Germ soul.
बुद्धि	Intellect.
बुद्धि स्वातंत्र्य वाद	Rationalism.
बोध स्रोत	Stream of feeling.
	भ
भाव	Emotion.

भूकम्पिक अधिगमन	Earthquake subsidence.
भेदाभेद विचार	Comparison.
भ्रमण	Rotation.
	म
मद्यसार	Alcohol.
मन या चित्त	Mind
मध्यवर्ती घटक	Central cell.
मध्यस्थ मनोघटक	Intermediate presenta- tive or psychic cell.
मध्यान्नत कांच	Lens.
मनोघटक या सम्बेदना ग्रन्थि- घटक	Soul cell or ganglionic cell.
मनोभाव	Idea.
मनोरस	Psychoplasmic filament.
मनोविकार	Emotion.
मनोवृत्ति	Psychical activity.
मनोवैज्ञानिक तत्व	Psychic factor.
मनोव्यापार	Psychic function.
मनोव्यापार केंद्र	Central nervous organ.
मर्मस्थल	Sensitive Spot.
मस्तिष्क	Brain.

मस्तिष्क का भूरा मज्जा त्वेन	Grey bed or cortex of the brain.
मस्तिष्क की त्वचा	Cortex.
मस्तिष्क घटकगत चेतन	Conscious presentation
अंतःसंस्कार	in the cerebral cells
मस्तिष्करूपी प्रधान करण	Special central organ
या सम्वेदना ग्रंथि	the brain or ganglion.
मस्तिष्क व्यापार	Cerebral function.
मात्रा	Amount.
मानसिक यंत्र	Psychic apparatus in
	psychic mechanism.
मूल	Primary.
मौलिक द्रव्य	Elements
	य
यांत्रिकशक्ति	Mechanical force.
	य
रहस्यपूर्ण संगठन	Mystical Union
राग (इच्छा)	Love.
रासायनिक प्रेमाकर्षण	Erotic chemical tropism.
„ स्नेहाकर्षण	Chemical affinity.
रूप परिणामवाद	Law of metamorphosis.
गोई या सुतड़ेवाले अणु जीवों	“Vibratory motion (cili-

शुक्राणुओं की कुटिल गति	ary movement) in infusoria, Spermatozoa ciliated epithelial cells."
लचकदार आकर्षण	ल Elastic strain.
लसीला पदार्थ	Slimy substance.
लोथड़ा	Lobe.
वंशरक्षा	व Preservation of species.
वंशपरम्परा क्रम	Heredity.
विचार	Thought.
विरक्ति (द्वेष)	Hatred.
विवेक	Discernment.
विशेष रूप की सम्बेदना	Peculiar form of Sensation and movement.
वृत्ति	Mood.
व्यक्त	Known.
व्यक्ति	Individual.
व्यवच्छेदक	Anatomist.
व्यवसायात्मिका बुद्धि व्यवहारिकी बुद्धि	Practical reason.

व्यापक	Abstraction.
शक्तिव्यापार	श Energy traffic.
शक्तिस्थित नियम	Law of conservation of energy.
शरीर के अवयव	Morphological features.
शारीरिक वैकृत्य धर्म	Metabolism.
शीतोष्ण परिमाण	Temperature.
शुद्ध बुद्धि	Pure Reason.
शुद्ध बुद्धि की विवेचना	Criticism of pure reason.
सजीव द्रव्य	स Living matter or organized matter.
ममर्थाविशेष	Survival of the fittest.
सफेदी	Albumen.
समवाय	Intension.
समान	Uniform.
सामायोग	Adjustment.
सरीसृप	Reptilia.
सर्वजीवत्वाद	Theory of animism.
सहज बुद्धि	Instinct.
सहान्वेषक	Codisiovrer.
सामान्य	Genus.

सूक्ष्मकला चातुर्य	Artistic power.
सूक्ष्म शरीर	Miniature.
सूत्रग्रंथिघटक	Ganglionic cells or Psychic cells.
सोपाधिक अमरत्व	Conditional immortality
सौंदर्य विवेक, सौंदर्य विवे- चन शक्ति	Aesthetic faculty.
संकल्प	Will.
संकल्प के आदेश	Commands of the will.
संकलात्मक घटक	Will cell or psychic cell.
संगहीत विचार या सूक्ष्म विचार	Abstract ideas.
संदेशतंतु स्रोत	Stream of Nerve mess- age.
सम्पर्क	Composition.
संयोग	Synthesis.
सम्वेदना या सम्वेदन	Sensation.
सम्वेदनाग्रंथि	Ganglion.
सम्वेदनाग्राही घटक	Sensitive nerves.
सम्वेदना विधानोंका समाहार	Centralisation or integ- ration of the ner- vous system.

स्वेदना विशेष और गति	Peculiar form of sensation and movement.
विशेष	
स्वेदनामूत्र या ज्ञानतंतु	Nerves.
स्वेदनामूत्र ग्रन्थिगत अचे-	Unconscious presenta-
तन अन्तःसंस्कार	tion in the gangli- onic cells.
स्वेदना मूत्रजाल	Nervous system.
सशयवाद	Scepticism.
स्तन्य जंतु	Mammals.
प्रति सामञ्जस्य	Law of adaptation.
प्रति	Memory.
तः प्रवृत्तगति	(i) Faculty of spontane- ous movement (ii, Active vital movement.
भाव	Habit.
स्वमताभिमान	Dogmatism.
स्वयं चलद् यन्त्रों के लेख	Automatic writing.
स्वयं प्रस्ताव	Auto-suggestion.
वांतर्वृत्ति बोध या अन्तःसाक्ष्य	Conscious perception.
रीकृत तत्त्व	Data.





